उच्चतर माध्यमिक पाठ्यक्रम

संस्कृत साहित्य-348

पुस्तक-2

विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

ए-24-25, संस्थागत क्षेत्र, सेक्टर–62,

नोएडा - 201 309 (उत्तर प्रदेश)

वेबसाइट : www.nios.ac.in, निर्मूल्य दूरभाष- 18001809393

उच्चतर माध्यमिक स्तर

संस्कृत साहित्य-348

सलाहकार समिति

प्रो. सरोज शर्मा
अध्यक्ष
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, (उत्तर प्रदेश)-201309

डॉ. राजीव कुमार सिंह
निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, (उत्तर प्रदेश)-201309

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

समिति अध्यक्ष
डॉ. के. इ. देवनाथन्
कुलपति,
श्रीवेङ्कटेश्वर वैदिक विश्वविद्यालय
चन्द्रगिरि परिमार्ग अलिपिरि
तिरुपति - 517502 (आन्ध्रप्रदेश)

समिति उपाध्यक्ष
डॉ. दिलीप पण्डा
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
हिरालाल मजुमदार मेमोरियल कालेज
दक्षिणेश्वर:, कलिकाता - 700 035 (पश्चिम बंगाल)

डॉ. रामनाथ झा
आचार्य (संस्कृताध्यनविशेषकेन्द्र)
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नवदेहली

डॉ. सन्तोष कुमार शुक्ल
आचार्य (संस्कृताध्यनविशेषकेन्द्र)
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नवदेहली

श्री सन्तु कुमार पान
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
विजयनारायण महाविद्यालय
पत्रालय-इटाचुना, मण्डल-हुगली-712147 (प. बंगाल)

आचार्य प्रद्युम्न
वैदिक गुरुकुल, पतञ्जलि योगपीठ, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

आचार्य फूलचन्द
वैदिक गुरुकुल
पतञ्जलि योगपीठ, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

स्वामी वेदतत्त्वानन्द
प्राचार्य, रामकृष्ण मठ विवेकानन्द वेद विद्यालय
बेलुर मठ, मण्डल-हावडा-711202 (प. बंगाल)

डॉ. राम नारायण मीणा
सहायक निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा - 201309 (उत्तरप्रदेश)

पाठ्यक्रम-समन्वयक

डॉ. राम नारायण मीणा
सहायक निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा - 201309 (उत्तर प्रदेश)

पाठ्यविषय निर्माण समिति

संपादक मण्डल

डॉ. वेंकटरमण भट्ट
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विश्वविद्यालय,
बेलुर मठ, हावड़ा-711202 (प. बंगाल)

स्वामी वेदतत्त्वानन्द
प्राचार्य
रामकृष्ण मठ विवेकानंद वेद विद्यालय
बेलुर मठ, मण्डल-हावड़ा-711202 (प. बंगाल)

पाठ लेखक

(पाठ 1, 5, 6, 17-24)
श्री राहुल गाजि
अनुसन्धाता (संस्कृत विभाग)
जादवपुर विश्वविद्यालय
कलकत्ता - 700032 (प. बंगाल)

(पाठ: 8)
स्वामी वेदतत्त्वानन्द
प्राचार्य
रामकृष्ण मठ विवेकानन्द वेद विद्यालय
बेलुर मठ, मण्डल-हावड़ा-711202 (प. बंगाल)

(पाठ 2, 3, 4, 7, 9-15)
श्री विष्णुपदपाल
अनुसन्धाता (संस्कृताध्ययनविभाग)
रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विश्वविद्यालय
मण्डल हावड़ा-711202 (प.बंगाल)

(पाठ: 16)
डॉ. दिलीप पण्डा
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
हिरालाल मजुमदार मेमोरियल कॉलेज फॉर विमिन दक्षिणेश्वर
कलकत्ता-700035 (प. बंगाल)

अनुवादक मण्डल

डॉ. योगेश शर्मा
सहायक प्रोफेसर (संस्कृत)
संस्कृत, दर्शन और वैदिक अध्ययन विभाग
बनस्थली विद्यापीठ, टोंक-304022 (राजस्थान)

डॉ. मुकेश कुमार शर्मा
वरिष्ठ अध्यापक (संस्कृत)
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, उस्नोता,
महेन्द्रगढ़, हरियाणा

डॉ. राम नारायण मीणा
सहायक निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, (उत्तर प्रदेश)-201309

श्री पुनीत त्रिपाठी
वरिष्ठ कार्यकारी अधिकारी
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, (उत्तर प्रदेश)-201309

रेखाचित्राङ्कन और मुख पृष्ठ चित्रण एवं डीटीपी

स्वामी हररूपानन्द
रामकृष्ण मिशन, बेलुर मठ
मण्डल-हावड़ा-711202 (प. बंगाल)

मैसर्स शिवम ग्राफिक्स
431, ऋषि नगर,
रानी बाग, दिल्ली - 110034

आप से दो बातें ...

अध्यक्षीय सन्देश

प्रिय शिक्षार्थी,

'भारतीय ज्ञान परम्परा' पाठ्यक्रम के अध्ययन के लिए आपका हार्दिक स्वागत है। भारत अति प्राचीन और विशाल देश है। भारत का वैदिक वाङ्मय भी उतना ही प्राचीन, प्रशंसनीय और श्रेष्ठ है। सृष्टिकर्ता भगवान ही भारतीयों के सम्पूर्ण विद्याओं के प्रेरक हैं, ऐसा सिद्धान्त शास्त्रों में प्राप्त होता है। भारत के प्रसिद्ध विद्वान, सामान्य जनमानस तथा अन्य ज्ञानी लोगों के बीच प्राचीन काल में आदान-प्रदान का माध्यम संस्कृत भाषा ही थी ऐसा सभी को ज्ञात है। इतने लम्बे काल में भारत के इतिहास में जो शास्त्र लिखे गए, जो चिन्तन उत्पन्न हुए, जो भाव प्रकट हुए वे सभी संस्कृत भाषा के साहित्यरूपी भण्डार में निबद्ध हैं। इस भण्डार का आकार कितना है, भाव कितने गंभीर हैं, मूल्य कितना अधिक है, इसका निर्धारण करने में कोई भी समर्थ नहीं है। प्राचीन काल में भारतीय क्या-क्या पढ़ते थे, वह निम्न श्लोक के माध्यम से प्रकट करते है -

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः। पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश॥ (वायुपुराणम् 61.78)

इस श्लोक में चौदह प्रकार की विद्याएँ बताई गयी हैं। चार वेद (और चार उपवेद), छः वेदाङ्ग, मीमांसा (पूर्वोत्तरमीमांसा), न्याय (आन्वीक्षिकी), पुराण (अट्ठारह मुख्य पुराण और उपपुराण), धर्मशास्त्र (स्मृति) ये चौदह विद्या कहलाते हैं। इसके अलावा अनेक काव्य ग्रंथ और बहुत से शास्त्र हैं। इन सभी विद्याओं का प्रवाह ज्ञान प्रदान करने वाला, प्रगति करने वाला और वृद्धि करने वाला है जो प्राचीन समय से ही चल रहा है। समाज के कल्याण के लिए भारत में विद्या दान परम्परा के रूप में गुरुकुलों में आध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक, आयुर्वेद, राजनीति, दण्डनीति, काव्य, काव्य शास्त्र और अन्य बहुत से शास्त्रों का अध्ययन-अध्यापन होता रहा है।

विद्या के शिक्षण के लिए ब्रह्मचारी परिवार को छोड़कर गुरुकुल में ब्रह्मचर्याश्रम को धारण कर जीवन बिताते थे। और इन विद्याओं में पारंगत होते थे। इन विद्याओं में आज भी कुछ लोग पारंगत लोग हैं। प्राकृतिक परिवर्तनों, विदेशी आक्रमणों, स्वदेश में हो रही ऊठा-पटक इत्यादि अनेक कारणों से पहले जैसी अध्ययन-अध्यापन की परंपरा अब छूटती जा रही है। इन पाठ्यक्रमों की, परीक्षा प्रमाणपत्र इत्यादि आधुनिक शिक्षण पद्धति के द्वारा कुछ राज्यों/प्रदेशों में होता है, परन्तु बहुत से राज्यों/प्रदेशों में नहीं होता है। अतः इन प्राचीन शास्त्रों का अध्ययन, परीक्षण, और अधिक प्रमाणीकरण का होना आवश्यक है। इसे ध्यान में रखकर यह पाठ्यक्रम राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के द्वारा प्रारम्भ किया गया है। लोगों के कल्याण के लिए जितना ज्ञान आवश्यक है वैसा ज्ञान इन शास्त्रों में निहित है और मनुष्य के सामने प्रकट हो, ऐसा लक्ष्य है। जिसके द्वारा यहाँ पर सुखी हों, सभी निरोगी हों, सभी कल्याण दृष्टि से कल्याणकारी हों, किसी को कोई दुख प्राप्त नहीं हो, कोई किसी को दुःख नहीं दें, इस प्रकार अत्यन्त उदार उद्देश्य को ध्यान में रखकर 'भारतीय ज्ञान परम्परा' नामक इस पाठ्यक्रम की रचना की गई है। विज्ञान शरीरारोग्य का चिन्तन करता है। कला विषय मनोविज्ञान को तथा मनोविज्ञान आध्यात्मिक विज्ञान का पोषण करता है। विज्ञान साधनस्वरूप और सुखोपभोग साध्य है। अतः निःसन्देह रूप से कहा जा सकता है कि कला विषय शाखा विज्ञान से भी श्रेष्ठ है। कला को छोड़कर विज्ञान से सुख प्राप्त नहीं किया जा सकता है बल्कि विज्ञान को छोड़कर कला से सुख को प्राप्त कर सकते हैं।

यह संस्कृत साहित्य का पाठ्यक्रम छात्रानुकूल, ज्ञानवर्धक, लक्ष्य साधक और पुरुषार्थ साधक है, ऐसा मेरा मानना है। इस पाठ्यक्रम के निर्माण में जिन हिताभिलाषी, विद्वान, उपदेष्टा, पाठ लेखक, त्रुटि संशोधक और मुद्रणकर्ता ने परोक्ष या अपरोक्ष रूप से सहायता की है। उनके प्रति संस्थान की तरफ से मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं। रामकृष्ण मिशन-विवेकानन्द विश्वविद्यालय के कुलपति श्रीमान् स्वामी आत्मप्रियानन्द जी का विशेष रूप से धन्यवाद जिनकी अनुकूलता और प्रेरणा के बिना इस कार्य की परिसमाप्ति दुष्कर थी। इस पाठ्यक्रम के अध्येताओं का विद्या से कल्याण हो, जीवन में सफल हो, विद्वान बने, देशभक्त हो, और समाज सेवक हो, ऐसी हमारी हार्दिक इच्छा है।

अध्यक्ष

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

आप से दो बातें ...

निदेशकीय वाक्

प्रिय पाठक,

'भारतीय ज्ञान परम्परा' पाठ्यक्रम को पढ़ने की इच्छा से उत्साहित भारतीय ज्ञान परम्परा के अनुरागी और उपासकों का हार्दिक स्वागत करता हूँ। यह अत्यधिक हर्ष का विषय है की जो गुरुकुलों में पढ़ाये जाने वाला पाठ्यक्रम हमारे राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के पाठ्यक्रम में भी सम्मिलित किया गया है। आशा है की लम्बे समय से हमारी प्राचीन संस्कृति से जो दूरी थी वह अब समाप्त हो जाएगी। हिन्दु, जैन और बौद्ध धर्म के धार्मिक, आध्यात्मिक और काव्यादि वाङ्गमय प्रायः संस्कृत में लिखे हुये हैं। सैकड़ों, करोड़ों मनुष्यों के प्रिय विषयों की भूमिका के माध्यम से प्रस्तुत् प्रवेश योग्यता के द्वारा और मन को प्रसन्न करने के लिए माध्यमिक स्तर और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर कुछ विषय सम्मिलित किये गए हैं। जैसे आंग्ल, हिन्दी आदि। भाषा ज्ञान के बिना उस भाषा के लिखे गए उच्चतर माध्यमिक स्तरीय ग्रन्थ पढ़ने में और समझ में सक्षम नहीं हो सकते हैं, वैसे ही यहाँ पर प्रारम्भिक संस्कृत तथा हिन्दी भाषा को नहीं जानते तो, इस पाठ्यक्रम को जानने में समर्थ नहीं हो सकते हैं। अतः प्रारम्भिक संस्कृत के जानकार छात्र यहाँ इस पाठ्यक्रम के अध्ययन के अधिकारी है ऐसा जानना आवश्यक है।

गुरुकुलों में अध्ययन करने वाले छात्र आठवीं कक्षा तक जितना संभव हो अपनी परंपरा से अध्ययन करें। नौंवीं दसवीं कक्षा और ग्याहरवीं तथा बारहवीं कक्षा तक भारतीय ज्ञान परम्परा के इस पाठ्यक्रम का निष्ठा से नियमित अध्ययन करें। इस पाठ्यक्रम से विद्यार्थी उच्च शिक्षा के लिए योग्य होंगे।

संस्कृत के विभिन्न शास्त्रों में किया गया कठिन परिश्रम विद्वान्, प्राध्यापक, शिक्षक और शिक्षाविद इस पाठ्यक्रम का प्रारूप रचना में, विषय निर्धारण के लिए, विषय परिमाण निर्धारण में, विषय प्रकट करने का, भाषा स्तर निर्णय में और विषय पाठ लिखने में संलग्न हैं। अतः इस पाठ्यक्रम का स्तर उन्नत होना है।

संस्कृत साहित्य की यह स्वाध्याय सामग्री आपके लिए पर्याप्त, सुबोध, रुचिकर, आनन्दरस को प्रदान करने वाली, सौभाग्य प्रदान करने वाली, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि पुरूषार्थो के लिए उपयोगी रहेगी, ऐसी हम आशा करते हैं। इस पाठ्यक्रम का प्रधान लक्ष्य है की भारतीय ज्ञान परम्परा का शैक्षणिक क्षेत्रों में विशिष्ट और योग्य स्थान स्वीकृत होना चाहिए। यह लक्ष्य इस पाठ्यक्रम के माध्यम से पूर्ण होगा, ऐसा हमारा दृढ विश्वास है। पाठक अध्ययनकाल में यदि मानते है की इस अध्ययन सामग्री में, पाठ के सार में, जहाँ संशोधन, परिवर्तन और परिवर्धन संस्कार चाहते हैं, उन सभी के प्रस्ताव का हम स्वागत करते हैं। इस पाठ्यक्रम को फिर भी और अधिक प्रभावी, उपयोगी और सरल बनाने में आपके साथ हम हमेशा तत्पर हैं।

सभी अध्येताओं के अध्ययन में सफलता और जीवन में सफलता के लिए और कृतकृत्य के लिए हमारे आशीर्वचन हैं–

किं बाहुना विस्तरेण।

अस्माकं गौरववाणीं जगति विरलाम् सर्वविद्याया लक्ष्यभूताम् एव उद्धरामिद्य

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्॥

दुर्जनः सज्जनो भूयात् सज्जनः शान्तिमाप्नुयात्।

शान्तो मुच्येत बन्धेभ्यो मुक्तश्चान्यान् विमोचयेत्॥

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।

मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी॥

निदेशक (शैक्षिक)

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

आप से दो बातें ...

समन्वयक वचन

प्रिय जिज्ञासु,

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

परम्परा को आधार मानकर यह प्रार्थना है कि हमारा अध्ययन विघ्नों से रहित हो। अज्ञान का नाश करने वाला तेजस्वी हो। द्वेष भावना का नाश करने वाला हो। विद्या लाभ के द्वारा सभी कष्टों का निवारण करने वाला हो।

'भारतीय ज्ञान परम्परा' इस पाठ्यक्रम के अङ्गभूत यह पाठ्यक्रम उच्चतर माध्यमिक कक्षा के लिए निर्धारित किया गया है। इस पाठयक्रम की अध्ययन सामग्री आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए मैं परम हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ। सरल संस्कृत तथा हिन्दी भाषा को जो जानता है, वह इसके अध्ययन में समर्थ है।

विद्वानों का अभिप्राय और अनुभवों के आधार पर काव्यशास्त्र का फल रस ही है। आनंद रस स्वरूप ही है। सभी प्राणियों का सभी कार्य आनंद और सुखपूर्वक संपन्न हों, यही प्रबल इच्छा है। काव्य के सभी विषय रस में ही स्थित हैं। काव्यों के अनेक प्रकार हैं और काव्य प्रपंच सबसे महान हैं। काव्य बहुत हैं। उनमें से विविध काव्याशों का चयन करके इस पाठ्य सामग्री में सम्मिलित किया गया है। इसी प्रकार साहित्य का सामान्य स्वरूप, काव्य का स्वरूप, भेद आदि प्रारंभिक ज्ञान यहाँ दिया गया है। पारंपरिक गुरुकुलों में जिस शिक्षण पद्धति से पाठ दिए जाते थे, उसी पद्धति का अनुसरण कर यह पाठ्यक्रम प्रतिपादित किया गया है।

उच्चतर माध्यमिक कक्षा हेतू निर्धारित साहित्य विषय का यह पाठ्यक्रम अत्यंत उपकारक है। शिक्षार्थी इसके अध्ययन से ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ होंगे। इसके अध्ययन से छात्र अन्य काव्यों में प्रवेश के योग्य होंगे। ये पाठ्य सामग्री काव्य और काव्यशास्त्र का श्रद्धा सहित अध्ययन में प्रवेश के लिए और मन को शांति देने वाली है। इस पाठ्य सामग्री के आकार पर नहीं जाना चाहिए और न इससे भय होना चाहिए। परंतु गंभीर रूप से अध्ययन करना चाहिए।

सम्पूर्ण पाठ्य पुस्तक तीन भागों में विभक्त है। पाठक पाठों को अच्छी प्रकार से पढ़कर पाठ में आये प्रश्नों के उत्तरों पर स्वयं विचार कर अन्त में दिए हुए प्रश्नों के उत्तरों को देखें, और उन उत्तरों को अपने उत्तरों से मिलाएँ। प्रत्येक पत्र में दिए हुए रिक्त स्थान पर टिप्पणीं करनी चाहिए। पाठ के अन्त में दिए प्रश्नों के उत्तरों का निर्माण करके परीक्षा के लिए तैयार हो जाएँ।

शिक्षार्थी अध्ययन काल में किसी भी कठिनता का अनुभव करते हैं, तो अध्ययन केन्द्र में किसी भी समय जाकर समस्या के समाधान के लिए आचार्य के समीप जाएँ या राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के साथ ई-पत्रद्वारा सम्पर्क करें। वेबसाइट पर भी संपर्क व्यवस्था है। वेबसाइट www.nios.ac.in इस प्रकार से है।

ये पाठ्यविषय आपके ज्ञान को बढाएं, परीक्षा में सफलता को प्राप्त करवाए, आपकी विषय में रुचि बढ़ाए, आपका मनोरथ पूर्ण करे, ऐसी कामना करता हूँ।

अज्ञानान्धकारस्य नाशाय ज्ञानज्योतिषः दर्शनाय च इयं मे हार्दिकी प्रार्थना
ॐ असतो मा सद् गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मामृतं गमय॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

भवत्कल्याणकामी,
पाठयक्रम समन्वयक
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

अपने पाठ कैसे पढ़ें!

संस्कृत साहित्य, उच्चतर माध्यमिक की इस पाठ्य सामग्री को विशेष रूप से आपकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए निर्मित किया गया है। आप स्वतंत्र रूप से स्वयं पढ़ सकें इसलिए इसे एक प्रारूप में ढाला गया है। निम्नलिखित संकत आपको सामग्री का सर्वोत्तम उपयोग करने का तरीका बताएंगे। दिए गए पाठों को कैसे पढ़ना है आइए, जानें–

पाठ का शीर्षक : इसे पढ़ते ही आप अनुमान लगा सकते हैं कि पाठ में क्या दिया जा रहा है। इसे पढ़िए।

भूमिका : यह भाग आपको पूर्व जानकारी से जोड़ेगा और दिए गए पाठ की सामग्री से परिचित कराएगा। इसे ध्यानपूर्वक पढ़िए।

उद्देश्य : प्रस्तुत पाठ को पढ़ने के बाद आप इस पाठ से उद्देश्यों को प्राप्त करने में समर्थ हो जाएंगे। इन्हें याद कर लीजिए।

पाठगत प्रश्न : इसके एक शब्द अथवा एक वाक्य में पूछे गए प्रश्न हैं तथा कुछ वस्तुनिष्ठ प्रश्न हैं। ये प्रश्न पढ़ी हुई इकाई पर आधारित हैं इनका उत्तर आपको देते रहना है। इसी से आपकी प्रगति की जाँच होगी। ये सवाल हल करते समय आप हाथ में पेंसिल रखिए और जल्दी-जल्दी सवालों के समाधान ढूँढ़ते रहिए और अपने उत्तरों की जाँच पाठ के अंत में दी गई उत्तरमाला से मिलाइए। उत्तर ठीक न होने पर इकाई को पुनः पढ़िए।

आपने क्या सीखा : यह पूरे पाठ का संक्षिप्त रूप है–कहीं यह बिंदुओं के रूप में है, कहीं आरेख के रूप में तो कहीं प्रवाह चार्ट के रूप में। इन मुख्य बिंदुओं का स्मरण कीजिए। यदि आप कुछ अपने मतलब की मिलती-जुलती नई बातें जोड़ना चाहते हैं तो उन्हें भी वहीं बढ़ा सकते हैं।

पाठांत प्रश्न : पाठ के अंत में दिए गए लघु उत्तरीय तथा दीर्घ उत्तरीय प्रश्न हैं। इन्हें आप अलग पृष्ठों पर लिख कर अभ्यास कीजिए। यदि चाहें तो अध्ययन केंद्र पर अपने शिक्षक या किसी उचित व्यक्ति को दिखा भी कते हैं और उन पर नए विचार ले सकते हैं।

उत्तरमाला : आपको पहले ही बताया जा चुका है इसमें पाठगत प्रश्नों और क्रियाकलापों के उत्तर दिए जाते हैं। अपने उत्तरों की जाँच इस सूची से कीजिए।

पुस्तक-1

कवि परिचय

1. कवि परिचय-1
2. कवि परिचय-2
3. कवि परिचय-3

काव्य अध्ययन-1

रघुवंश (प्रथम सर्ग 1-48 श्लोक)

4. रघुवंश - रघुवंशीय राजाओं का गुणवर्णन
5. रघुवंश - राजा दिलीप का गुणवर्णन-1
6. रघुवंश - राजा दिलीप का गुणवर्णन-2
7. रघुवंश - वशिष्ठाश्रम गमन

स्तोत्र साहित्य

8. मोहमुद्गर और राम गुणकीर्तन

गद्यकाव्य

9. शिवराजविजय - बटुसंवाद
10. शिवराजविजय - योगीराज संवाद
11. शिवराजविजय - यवन दुराचार

पुस्तक-2

उत्तररामचरित (प्रथम अंङ्क)

12. उत्तररामचरित - प्रस्तावना
13. उत्तररामचरित - अष्टावक्र संवाद
14. उत्तररामचरित - चित्रदर्शन-1
15. उत्तररामचरित - चित्रदर्शन-2

शुकनासोपदेश

16. शुकनासोपदेश - यौवन स्वभाव
17. शुकनासोपदेश - लक्ष्मी का चापल्य
18. शुकनासोपदेश - लक्ष्मी का दुष्प्रभाव-1
19. शुकनासोपदेश - लक्ष्मी का दुष्प्रभाव-2

पुस्तक-3

काव्यदर्पण

20. अलंकारिक परिचय-1
21. अलंकारिक परिचय-2
22. वृत्ति
23. छन्दों की मात्रा, गण, यति, भेद
24. छन्द
25. अलंकार-1
26. अलंकार-2
27. रस

संस्कृत साहित्य

उच्चतर माध्यमिक पाठ्यक्रम

पुस्तक-2

क्र.सं.	विषय-सूची	पृष्ठ संख्या
	उत्तररामचरित (प्रथम अंङ्क)	
12.	उत्तररामचरित – प्रस्तावना	1
13.	उत्तररामचरित – अष्टावक्रसंवाद	22
14.	उत्तररामचरित – चित्रदर्शन-1	45
15.	उत्तररामचरित – चित्रदर्शन-2	64
	शुकनासोपदेश	
16.	शुकनासोपदेश – यौवनस्वभाव	82
17.	शुकनासोपदेश – लक्ष्मीकाचापल्य	101
18.	शुकनासोपदेश – लक्ष्मीकादुष्प्रभाव	118
19.	शुकनासोपदेश – लक्ष्मीकादुष्प्रभाव	131

12

उत्तररामचरित-प्रस्तावना

इस ग्रन्थ में हम नाटक के प्रथम अंक के कुछ अंगों को पढ़ेंगे। सर्वप्रथम सूत्रधार और नट मंच पर आकर नाटक की प्रस्तावना करते हैं। राम जनक के विरह से खिन्न सीता को सान्त्वना देने के लिए सिंहासन से उठकर अन्त:पुर में जाते हैं। उसके बाद अष्टावक्र आकर उनके कुशल समाचार को पूछते हैं और वशिष्ठादि गुरुजनों द्वारा राम के लिए जो उपदेश दिये गये थे, वे सब राम को सुनाते हैं। उसके बाद लक्ष्मण आकर कहते हैं कि रामचरितात्मकचित्र के लिए जैसा आदेश दिया था वैसा ही अंकन करके आए हैं। उसके बाद राम सीता के विनोद के लिए उस चित्रपट को सीता के लिए प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार चित्रदर्शन पर्व आरम्भ होता है। उसमें ताडकाराक्षसीवध से आरम्भ करके राम सीता के विवाह, वनवासगमन, शृंगवेरपुरम्, इस प्रकार के घटनाक्रम से विन्ध्यारण्य का चित्र आ जाता है। अन्त में राम के मुख से गोदावरी के तट पर उनके जीवन पद्धति के वर्णन से ग्रन्थ समाप्ति होती है।

इस पाठ में हम उत्तररामचरित नाटक की प्रस्तावना को पढ़ते हैं। यहाँ सात श्लोक और कुछ उक्तियां है। सर्वप्रथम सूत्रधार आकर कवि भवभूति का वर्णन करता है। वहीं पर सूत्रधार अयोध्यावासी रहे नट से मिलता है। उसके बाद नट और सूत्रधार के मध्य में अयोध्या के विषय में सुदीर्घ वार्तालाप चलता है। उस वार्तालाप के प्रसंग से ही नाटक का आरम्भ होता है। यह सब इस पाठ को पढ़कर ही जानेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढकर आप सक्षम होंगे :

- श्रीराम और सीता के चरित्र को जान पाने में;

टिप्पणी

- नाटक में सूत्रधार और नट के विषय में जान पाने में;
- नान्दीपाठ के विषय को जान पाने में;
- छन्दों के लक्ष्णों को जान पाने में;
- श्लोकों के अन्वय और प्रतिपदार्थ आदि को समझ पाने में और;
- दीर्घपदों के विग्रह वाक्य और समास को समझ पाने में।

12.1 मूलपाठ

इदं कविभ्यः पूर्वभ्यो नमोवाकं प्रशास्महे।
विन्देमहि च तां वाणीममृतामात्मनः कलाम्॥1॥
(नान्द्यन्ते)

सूत्रधारः- अलमतिविस्तरेण। अद्य खलु भगवतः कालप्रियानाथस्य यात्रायामार्यमिश्रान् विज्ञापयामि। एवमत्रभवन्तो विदांकुर्वन्तु। अस्ति खलु तत्रभवान् काश्यपः श्रीकण्ठपदलाञ्छनः पदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम जातूकर्णीपुत्रः।

यं ब्रह्माणमियं देवी वाग्वश्यैवान्ववर्तत।
उत्तरं रामचरितं तत्प्रणीतं प्रयोक्ष्यते॥2।

सूत्रधारः- एषोऽस्मि कावशादायोध्यकस्तदानींतनश्च संवृत्तः (समन्तादवलोक्य) भोः भोः!यदा तावदत्रभवतः पौलस्त्यकुलधूमकेतोः महाराजरामस्यायं पट्टाभिषेकसमयो रात्रिन्दिवमसंहृतानन्दनान्दीकः, त्किमिदानीं विश्रान्तचारणानि चत्वरस्थानानि?

(प्रविश्य)

नटः- भाव! प्रेषिता हि स्वगृहान्महाराजेन लङ्ढासमरसुहृदो महात्मानः प्लवङ्गमराक्षसाःसभाजनो पस्थायिनश्च नानादिगन्तपावना बह्मर्षयों राजर्षयश्च, यत्समाराधनायैतावतों दिवसान् प्रमोद आसीत्।

सूत्रधारः

आ, अस्त्येतन्निमित्तम्।

नटः

अन्यच्च

वसिष्ठाधिष्ठिता देव्यो गता रामस्य मातरः।
अरुन्धातीं पुरस्कृत्य यज्ञे जामातुराश्रमम्॥3॥

सूत्रधारः

वैदशिकोऽस्मीति पृच्छामि। कः पुनर्जामाता?

टिप्पणी

कन्यांदशरथोराजा शान्तां नाम व्यजीजनत्।
अपत्यकृतिकांराज्ञेरोमपादाय तां ददौ।।4।।

विभाण्डकसुतस्तामृष्यश्रृ उपयेमे। तेन द्वादशवार्षिकं सत्रमारब्धम्। तदनुरोधात्कठोरगर्भा - मपि जानकीं विमुच्य गुरुजनस्तत्र यातः।

सूत्रधारः

तत्किमनेन? एहि राजद्वारमेव स्वजातिसमयेनोपनिष्ठावः।

नटः

तेन हि निरूपयतु राज्ञः सुपरिशुद्धामुपस्थानस्तोपद्धतिं भावः।

सूत्रधारः

मारिष,

सर्वथा व्यवहर्तव्यं कुतो ह्यवचनीयता।
यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः।।5।।

नटः

अतिदुर्जन इति वक्तव्यम्।

देव्यामपि हि वैदेह्यां सापवादो यतो जनः।
रक्षोगृहस्थितिर्मूलमग्निशुद्धौ त्वनिश्चयः।।6।।

सूत्रधारः

यदि पुनरियं किंवदन्ती महाराज प्रतिस्यन्देत ततः कष्टं स्यात्।

नटः

सर्वथा ऋषयों देवाश्च श्रेयो विधास्यन्ति। (परिक्रम्य) भो भोः क्वेदानीं महाराजः?

(आकर्ण्य) एवं जनाः कथयन्ति -

स्नेहात्सभाजयितुमेत्य दिनान्यमूनि
नीत्वोत्सवेनजनकोऽद्य गतोविदेहान्।

देव्यास्ततो विमनसः परिसान्त्वनाय
धर्मासनाद्विशति वासगृहं नेरन्द्रः ।।7।।

टिप्पणी

(इति निष्क्रान्तौ)

(इति प्रस्तावना)

12.2 मूलपाठ

इदं कविभ्यः पूर्वेभ्यो नमोवाकं प्रशास्महे।
विन्देमहि तां वाचममृतामात्मनः कलाम्।।8।।

अन्वयः

पूर्वेभ्यः कविभ्यः इदं नमोवाकं प्रशास्महे, आत्मनः अमृतां कलां देवतां वाचं विन्देम।

अन्वयार्थः- पूर्वभ्यः- प्राचीन, कविभ्यः- व्यास, वाल्मीकि, कालिदास आदि कवियों के लिए, नमोवाकम्- नमस्कार, इदम्- यह मंगलाचरणात्मक, प्रशास्महे- निर्देश कराता हूँ। आत्मनः- परमात्मका की, अमृताम्- नित्य, कलाम्- अंशभूत, देवताम्- देवी, वाचम्- वाणी सरस्वती को, विन्देम - प्राप्ति के लिए प्रार्थना करता हूँ।

व्याख्या- रंग में विघ्नों के नाश के लिए रंग के आदि में मंगल आचारणीय होता है। उसे ही मंगल को नाट्यशास्त्र में 'नान्दी' नाम से कहा जाता है। अतः महाकवि भवभूति भी काव्य के आदि में प्रस्तुत श्लोक से नान्दी करते हैं। इस श्लोक में मंगलाचरण आशीर्वादात्मक है। यहाँ पूववर्ती व्यास-वाल्मीकि आदि कवियों को कवि भवभूति 'नमः' शब्द का उच्चारण करके स्तुति करते हैं। उनके प्रसाद से भगवान ब्रह्मा की अंशभूता वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती अभीष्ट होती है। इस प्रकार पूर्वकवि स्मरण किये गये वन्दन का फल वाग्देवी का लाभ है अर्थात् वाक् यथा समय यथार्थ को स्फुरत करें, यह कवि का आशय है।

विशेष टिप्पणी- यहां महाकवि भवभूति उत्तररामचरित रूप नाटक को रचना की इच्छा से प्रारम्भ में विघ्नों के नाश के लिए और ग्रन्थ की परिसमाप्ति के लिए शिष्टाचार की पालन में मंगलाचरण विधान करता है। इस श्लोक से विधान करता है कि शिष्ट आचरण अनुमित श्रुतिबोधित कर्तव्यता मंगलाचरण होता है। वह आशीर्वादात्मक, वस्तुनिर्देशात्मक, और नमस्कारात्मक होता है। यहां नमस्कारात्मक मंगलाचरण का विधान करते हैं।

यहां मंगल श्लोक नान्दी है। नन्दयति आनन्दयति जनान् इति नान्दी। अर्थात् जो लोगों को आनन्दित करता है। वह नान्दी है। नाटक में मंगल के लिए पहले श्लोक या पद्य को नान्दी कहते हैं। विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण में उसका लक्षण दिया है।-

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता।।

टिप्पणी

माङ्गल्यशङ्खचन्द्राब्जकोककैरवशंसिनी।
पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पर्दरुत।।

अर्थात् देवब्राह्मण और राजाओं के आशीर्वचन युक्त स्तुति जहां होती है। वह नान्दी कही जाती है। वह नान्दी बारहपद या आठपद वाली होती है। यहाँ बारह पद वाली नान्दी है।

व्याकरणविमर्श:-

1. **नमोवाकम्**- वच्धातो: क्विप्प्रत्यये वाक् इति रूपम्। तस्य वचनम् इत्यर्थ:। नम: वाक: यस्मिन् स इति नमोवाक् इति बहुव्रीहिसमास:, तं नमोवाकम्।
2. **प्रशास्महे**- प्रपूर्वकात् इच्छार्थकात् शारूधाातो: उत्तमपुरुषैकवचने रूपम्। प्रशास्महे इत्यस्य निर्दिशाम: इत्यर्थ:।
3. **विन्देम** - तौदादिकात् विद्-धातो: विधिलिङ्- उत्तमपुरूषैकवचे विन्देम इति रूपम्।
4. **अमृताम्** - अविद्यमानं मृतं मरणं यस्या: सा अमृता इति बहुव्रीहिसमास:, ताम् अमृताम्

छन्द:- इस श्लोक में अनुष्टुप्-छन्द: है।

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पचंमम्।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययो:।।

एक श्लोक में चार पाद होते हैं। अनुष्टुप छन्द में प्रत्येक पाद का षष्ठ अक्षर गुरु होता है। पंचम अक्षर लघु होता है। दूसरे और चौथे पाद में सप्तम अक्षर ह्रस्व होता है। पहले और तीसरे पाद में दीर्घ होता है।

पाठगत प्रश्न-12.1

1. कवि की क्या इच्छा है?
2. अनुष्टुपछन्द का लक्षण लिखिए।
3. 'नमोवाकम्' को सिद्ध कीजिए।

12.3 मूलपाठ

सूत्रधार:-

अलमतिविस्तरेण। अद्य खलु भगवत: कालप्रियानाथस्य यात्रायामार्यमिश्रान् विज्ञापयामि। एवम=भवन्तो विदांकुर्वन्तु। अस्ति खलु तत्रभवान् काश्यप: श्रीकण्ठपदलाञ्छन: पदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम जातूकर्णीपुत्र:।

अन्वयार्थ:- मंगलाचरणस्यान्ते - मंगलाचरण के अन्त में, अलं - पर्याप्त, अतिविस्तारेण -

अधिक विस्तार से, अद्य - इस दिन में, खलु - निश्चय ही, भगवत - सर्वेश्वर्यविभूषित की, कालप्रिय नाथस्य - दुर्गावल्लभ शिव की, यात्रायाम् -महोत्सव में, आर्य मिश्रान् - आर्यो को आदरणीयों को, मिश्रान् - बहुशास्त्र पठितों अर्थात् गौरवितों को, विज्ञापयामि - सविनय निवेदन करता हूँ। एवम् - इस प्रकार यहां आपको यहां उपस्थित पूज्य आपको, विदांकुर्वन्तु - जाने। तत्रभवान् - यहां उपस्थित पूज्य श्रीमान्, काश्यप - काश्यप गोत्रोत्पन्नः, श्रीकण्ठपदलांछनः - श्रीकण्ठ नाम वाले, पदवाक्य प्रमाणज्ञः - व्याकरण मीमांसा न्याय शास्त्रज्ञ, भवभूतिर्नाम - भवभूति नाम वाले, जातूकर्णीपुत्र - जतुकर्णी गोत्र में पैदा हुई स्त्री के पुत्र हैं।

व्याख्याः- नान्दी के अन्त में सूत्रधार बोला है कि अधिक विस्तार मत करो। उसके बाद भगवान् शिव के उत्सव के उपलक्ष्य में उपस्थित सभ्य कवि भवभूति के विषय में सविनय निवेदन करते हैं। वे कहते है। कि कवि भवभूति काश्यपगोत्र उत्पन्न हैं। श्रीकण्ठ इनका दूसरा नाम है। व्याकरण न्याय और मीमांसा में वे अत्यन्त निष्णात है। वे जातुकर्णी के पुत्र भवभूति है।

विशेष टिप्पणी -''नान्द्यन्ते प्रविशति सूत्रधारः'' अर्थात् नान्दीपाठ के बाद में ही सूत्रधार का प्रवेश होता है। सूत्रं अर्थात् नाटक प्रयोग के अनुष्ठान को धारण करता है। अतः वह सूत्रधार है। साहित्यदर्पण में सूत्रधार का लक्षण कहा गया है।

नाटयोपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते॥

व्याकरणविमर्श

1. **विदांकुर्वन्तु** - ज्ञानार्थकात् विद्धातोः लोटि कृधातोः अनुप्रयोग प्रथमपुरुषबहुवचने रूपम्। जानन्तु इति तदर्थः।
2. **श्रीकण्ठपदलांछनः**-श्रीकण्ठ इति पदं लांछनं यस्य स इति श्रीकण्ठपदलांछनः श्रीकण्ठपदनामकः इत्यर्थः।
3. **पदवाक्यप्रमाणज्ञः** -जानाति इति ज्ञः। पदं (व्याकरणम्) च वाक्यं (न्यायः) प्रमाणं (मीमांसा) च इति पदवाक्यप्रमाणानि, तेषां ज्ञः इति पदवाक्यप्रमाणज्ञः।
4. **कालप्रियानाथस्य** -कालस्य प्रिया कालप्रिया इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः। दुर्गा इत्यर्थः। तस्याः नाथः कालप्रियानाथः इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः, तस्य।
5. **आर्यमिश्रान्** -आर्याः च अमी मिश्राः च आर्यमिश्राः इति कर्मधारयसमासः, तान् आर्यमिश्रान्।
6. **जातूकर्णीपु**=:- जतूकर्णस्य गोत्रापत्यं स्त्री जातूकर्णी। तस्याः पुत्रः जातूकर्णीपु=: इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः।

पाठगत प्रश्न 12.2

4. सूत्रधार आर्यो को कब निवेदन करते हैं?

टिप्पणी

5. भवभूति कैसे थे?

6. पदवाक्यप्रमाणज्ञः की व्युत्पत्ति लिखें?

12.4 मूलपाठ

यं ब्रह्माणमियं देवी वाग्ववश्यैवानुवर्तते।
उत्तरं रामचरितं तत्प्रणीतं प्रयोक्ष्यते॥

अन्वय- यं ब्रह्माणम् इयं देवी वाक् वश्या इव अनुवर्तते। तत्प्रणीतम् उत्तररामचरितं प्रयोक्ष्यते।

अन्वयार्थः- यम् -भवभूति को, ब्रह्मणम् - यज्ञनादि षट् कर्म में लगे हुए ब्राह्मण को, इयम् देवी - यह देवी भगवती, वाक् - वाणी सरस्वती, वश्या इव अधीन स्त्री के समान, अनुवर्तते - अनुसरण करती हैं। तत्प्रणीतम् - भवभूती शरा रचित, उत्तररामचरितम् - उत्तररामचरित नामक नाटक को, प्रयोक्ष्यते - अभिनीत किया जायेगा।

व्याख्या- यहां सूत्रधार के मुख से कवि सुन्दर वर्णन करता है। जैसे एक पुरुष के वशीभूत स्त्री उस पुरुष का निरन्तर अनुसरण करती है। उस पुरुष द्वारा जो कुछ कहा जाए वह सब वह नारी सम्पादित करती है। इसी प्रकार वाक् देवी हंसवाहिनी सरस्वती भी कवि भवभूति का सतत अनुसरण करती है। अतः कवि जैसी इच्छा करते है। वैसा ही वाक्य द्वारा मनोगत भाव प्रकट करने में समर्थ होते है। इससे इस नाटक की असाधारणता प्रकाशित होती है। यहां कवि द्वारा नाटक का नाम उत्तररामचरित का उल्लेख किया गया है। उत्तर नाम राज्याभिषेक के बाद का और रामचरित पुरुषोत्तम श्रीराम का चरित्र है। रावणवध के बाद वनवास समाप्त करके जब राम वापस लौट आये तब राम का राज्याभिषेक हुआ। उसके बाद के श्रीराम के चरित अर्थात् जीवन वृतान्त इस नाटक में वर्णित है। उसी का इस नाटक में अभिनय प्रस्तुत किया जा रहा है। यह उद्घोष सूत्रधार ने किया।

विशेष टिप्पणी

यहां प्ररोचना प्रस्तुत है। उसका लक्षण है-

''निवेदन प्रयोज्यस्य निर्देशो देशकालयोः।
कविकाव्यादीनां प्रशंसा तु प्ररोचना॥

यहां संस्कृत में भाषण करने के कारण भारतीवृत्ति है। जिसका लक्षण है -

''भारती संस्कृतप्रायो वाग्व्यापारो नटाश्रयः।''

व्याकाणविमर्शः-

1. वश्या- वश्धातोः यति टापि वश्या इति रूपम्। वशंगता इत्यर्थः।

2. प्रणीतम्- प्रपूर्वकात् नीधातोः क्तप्रत्यये नपुंसकलिङगे प्रथमैकवचने रूपम्।

3. प्रयोक्ष्यते- प्रपूर्वकात् युज्धातोः लृटि प्रथमपुरुषैकवचने रूपम्

4. रामचरितम्- रामस्य चरितं राचरितम् इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः।

5. तत्प्रणीतम्- तेन प्रणीतं तत्प्रणीतम् इति तृतीयातत्पुरुषसमासः।

सन्धिविच्छेद

वाग्वश्येवानुवर्तते- वाक् + वश्या + इव + अनुवर्तते।

अलंकरविमर्श- वश्येव से यहां क्रियोत्प्रेक्षण होने से उत्प्रेक्षालंकार है। उसका लक्षण है -'' भवेत्सम्भावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना।'' इति।

छन्दः- इस श्लोक में अनुष्टुप छन्द है।

पाठगत प्रश्न 12.3

7. इस नाटक का नाम क्या है?

8. वाग्वश्येवानुवर्तते'' सन्धि विच्छेद कीजिए।

9. इस नाटक की रचना किसने की।?

10. ग्रन्थकर्ता का वैशिष्ट्य कैसा है?

12.5 मूलपाठ

सूत्रधारः -एषोऽस्मि कविवशादायोध्यकस्तदानींतनश्च संवृत्तः (समन्तादवलोक्य) भो भो ! यदा तावदत्रभवतः पौलस्त्यकुलधूमकेतोः महाराजरामस्यायं पट्टाभिषेकसमयो रात्रिन्दिवमसेहतानन्दनान्दीकः, तत्किमिदानीं विश्रान्तचारणानि चत्वरस्थानानि?

(प्रविश्य)

नटः- भाव! प्रेषिता हि स्वगृहान्महाराजेन लंकासमरसुहृदो महात्मानः प्लवंगामराक्षसाः सभाजनोपस्थायिनश्च नानादिगन्तपावना ब्रह्मार्षयो राजर्षयश्च, यत्समाराध्नायैतावता दिवसान् प्रमोद आसीत्।

सूत्रधारः- आ, आस्त्येतन्निमित्तम्।

अन्वयार्थ

सूत्रधारः- एषः- मैं सूत्रधार, कार्यवशात् - अभिनयदि कार्य के कारण से, अयोध्यकः -अयोध्या वासी, तदानीन्तनः - रामकालीन, सवृतः - हो गया, अस्मि - हूं। (समन्तात् -लगातार, परितः चारो ओर, अवलोक्य - देखकर) भो भो - हे नट, अत्र भवतः - पूज्य के, पौलस्त्य कुल धूमकेतोः - रावण के वंश को नष्ट करने वाले राम के, पट्टाभिषेक समयः

-राज्याभिषेक के समय, रात्रिन्दिवम् -रातदिन, असंहृतानन्दनान्दीकः -निरन्तर आन्दन देने वाली नान्दी है जिसमें, तत्किम् - वह कैसे, इदानीम् - इस समय, विश्रान्तचारणानि - विश्रान्त हो गये है चारण या नट जिसके उसमें, चत्वरस्थानानि-चौराहे,

प्रविश्य-प्रवेश करके।

नटः- भाव हे विद्वन् सूत्रधार, स्वग्रहात् - अपने घर से, महाराजेन - श्रीराम महाराज द्वारा, प्रेषिता - प्रस्थापित किये गये, लंका समरसुहृदः - राम रावण का लंका में घटित जो युद्ध हुआ वहां जो मित्र थे वे लंका समर सुहृद कहलाये, महात्मानः -महान लोग, प्लवंगमराक्षसाः - सुग्रीव आदि वानर व विभीषण आदि राक्षस, नानादिगन्तपावना - नानादिशाओं को पवित्रीकृत, ब्रह्मर्षयः - ब्रह्मकुलोत्पन्न गौतम आदि ऋषि, राजर्षयः - क्षत्रियकुलोत्पन्न जनक आदि ऋषि, सभा जनोपस्थायिनः - राम के अभिनन्दन करने के लिए आये हुए जन, यत्समाराधनाय - जिनके सत्कार के लिए, एतावतः -इतने, दिवसान् - दिनों को व्यतीत करके, प्रमोदः - आनन्दोत्सव, आसीत् - था।

सूत्रधारः - आ, ठीक है, तो, एतत् - यह, निःशब्दता का, निमित्तम्-कारण, अस्ति -है।

व्याख्या- अब सूत्रधार नाट्य के प्रसंग में एक अयोध्यावासी से मिलता है। उसके बाद वह लगातार देखकर प्रसंग का निर्देश करता है- अरे यह तो अयोध्यापति श्रीमान् रामचन्द्र के राज्याभिषेक का समय है। तो रंगशाला के प्रांगण में स्तावक स्तुतिपाठ से कैसे रुक गये। उसके बाद नट सूत्रधार को सम्बोधन करके निःशब्दता के कारण को जानकर कहते हैं कि उत्सव समाप्त हो गया। अतः रावण के साथ युद्ध में वानर अपने पराक्रम को प्रदर्शित करके युद्ध किया वे राम सुहृदवानर उत्सव के लिए उपस्थित हुए थे। इस समय उत्सव समाप्त हो गया। अतः वे अपने देश को गये। अनेक देशों से आये वशिष्ठादि ब्रह्मार्षि, जनकादि राजर्षि भी अपने देश को गये। इस प्रकार सूत्रधार नीरव के कारण को जानता है।

व्याकरणविमर्शः

1. **संवृत्तः** - समित्युपसर्गपूर्वकात् वृद्धातोः क्तप्रत्यये रूपम्।
2. **पौलस्त्यकुलधूमकेतोः** - पौलस्त्यस्य कुलं पौलस्त्यकुलम् इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः। तस्य धूमकेतुः इव इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः, तस्य।
3. **पट्टाभिषेकस्य समयः** पट्टाभिषेकसमयः इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः।
4. **रात्रिन्दिवम्**- रात्रो च दिवा च रात्रिन्दिवम् इति समाहारद्वन्द्वसमासः।
5. **विश्रान्तचारणानि**- विश्रान्ताः चारणाः येभ्यः येषु वा तानि विश्रान्तचारणानि इति बहुव्रीहिसमासः।
6. **लंकासमारसुहृदः**- लंकायां वृत्तः समरः लंकासमरः। तस्मिन् सुहृदः लंकासमरसुहृदः।
7. **नानादिगन्तपावनाः** - नाना दिशः नानादिशः इति कर्मधारयसमासः। नानादिशाम् अन्ताः नानादिगन्ताः इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः। तान् पावयन्ति इति नानादिगन्तपावनाः।

पाठगत प्रश्न 12.4

11. रामराज्याभिषेक के लिए कौन-कौन आये?

12. वे कैसे अयोध्या में आये?

13. अयोध्या में निःशब्दता का क्या कारण है?

14. पट्टाभिषेकसमय में समास बताएँ?

15. कौन आयोध्यकः हो गये?

12.6 मूलपाठ

अन्यच्च-

वसिष्ठाधिष्ठिता देव्यो गता रामस्य मातरः।
अरुन्धतीं पुरस्कृत्य यज्ञे जामातुराश्रमम्॥3

अन्वयः-अन्यच्च, विसिष्ठाधिष्ठिता देव्यः रामस्य मातरः अरुन्धतीं पुरस्कृत्य यज्ञे जामातुः आश्रमं गताः।

अन्वयार्थः

नटः - नट-अन्यत् -दूसरा भी, च -और कारण है।

वशिष्ठाधिष्ठिताः -कुलगुरु वशिष्ठ द्वारा संरक्षित, देव्यः - दशरथ की रानियां कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा, रामस्य - रामचन्द्र की, मातरः -जननी ,अरुन्धतीम् - गुरु पत्नी को, पुरस्कृत्य -आगे करके, यज्ञे - यज्ञ के लिए, जामातुः -कन्यापति ऋष्यशृंग के, आश्रमम् -तपःस्थल को, गताः -प्राप्त हुए।

व्याख्या- इस श्लोक में अयोध्या में गीतवाद्य आदि के अभाव को दूसरा कारण नट कहता है। महाराज दशरथ की एक कन्या थी। उस का नाम शान्ता था। शान्ता महामुनि ऋष्यशृंग को परिणीत हुई। उस जामाता ऋष्यशृंग के आश्रम में कोई यज्ञ चल रहा था। अतः यज्ञदर्शन के लिए दशरथ की रानियां श्रीराम की माताएं - कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा, वहां गई। अतः वे अयोध्या में नहीं है इस कारण भी गीतवाद्य आदि नहीं हो रहा है।

व्याकरणविमर्श

1. **वसिष्ठाधिष्ठिताः** - अधिपर्वकात् स्थाधातोः क्तप्रत्यये टापि अधिष्ठाता इति रूपम्। वसिष्ठेन अधिष्ठिता वसिष्ठाधिष्ठिता इति तृतीयातत्पुरुषसमासः।

2. **पुरस्कृत्य**- पुरस् इति पूर्वकात् कृधातोः क्त्वाप्रत्यये क्त्वाप्रत्ययस्य स्थाने ल्यपि पुरस्कृत्य इति रूपम्।

टिप्पणी

सन्धिविच्छेद 1. देव्यो गता रामस्य - देव्यः +गताः+रामस्य।

2. जामातुराश्रमम् - जामातुः+ आश्रमम्।

छन्दः- इस श्लोक में अनुष्टुप छन्द है।

पाठगत प्रश्न 12.5

16. राम की माताएं कहां और किस लिए गई?

17. किस को आगे करके राम की माताएं गई?

12.7 मूलपाठ

सूत्रधार

वैदेशिकोऽस्मीति पृच्छामि। कः पुनर्जामाता?

कन्यां दशरथो राजा शान्तां नाम व्यजीजनत्।
अपत्यकृतिकां राज्ञे रोमपादाय तां ददौ।।4।।

विभाण्डकसुतस्तामृष्यशृंग उपयेमे। तेन द्वादशवार्षिकं सत्रमारब्धम्। तदनुरोधात्कठोरगर्भामपि जानकीं विमुच्य गुरुजनस्तत्र यातः।

अन्वय

सूत्रधारः- वैदेशिकः अस्मि इति पृच्छामि। कः पुनः जामाता।

नटः- राजा दशरथः शान्तां नाम कन्यां व्यजीजनत् राज्ञे रोमपादाय अपत्यकृतिकां तां ददौ।

विभाण्डकसुतः ऋष्यशृङ्गः ताम् उपयेमे। तेन द्वादशवार्षिकं सत्रम् आरब्धम्। तदनुरोधात्। कठोरगर्भाम् अपि जानकीं विमुच्य गुरजनः तत्र यातः।

अन्वयार्थ

सूत्रधारः - वैदशिकः - विदेशवासी, अस्मि - हूँ, इति - अतः, पृच्छामि - जिज्ञासा करता हूँ।, कः - कौन, पुनः - फिर से, जायाता - कन्या शान्ता के पति।

नटः - राजा - महाराज, दशरथः - दशरथ, शान्तां नाम कन्यां - शान्ता नाम की कुमारी को, व्यजीजनत् - उत्पन्न किया, राज्ञे - महाराज के लिए, रोमपादाय - रोमपाद लिए, अपत्यकृतिकां - कृतिम कन्या रुप को, ताम् - उसको, शान्ताम् - शान्ता को, ददौ - दे दिया।

विभाण्ड सुतः - विभाण्डक मुनि के पुत्र, ऋष्यशृंग - इस नाम का एक ऋषि, ताम् - उसको, शान्ताम् - शान्ता को, उपयेमे - विवाह किया। तेन - उस ऋष्यशृंग मुनि द्वारा, द्वादशवार्षिकम् - बारह वर्षो को व्याप्त वाले, सत्रम् - यज्ञ, आरब्धम् - आरम्भ किया। तदनुरोधात् - उस मुनि के आग्रह के कारण, कठोर गर्भीम् - अपनी वधू जनकसुता पूर्ण गर्भा जानकी सीता को, विमुच्च - छोड़कर, गुरुजनः - पूज्यजन वशिष्ठ कौशल्यादि, तत्र - वहां श्रृंग के आश्रम में, गता -गये।

व्याख्या- सूत्रधार कहता है कि वह वैदेशिक है अर्थात् वह अयोध्यावासी नहीं है। अतः अयोध्या के विषये में उसका ज्ञान समीचीन नहीं हैं यह वह स्वीकार करता है। सूत्रधार जानता है। कि दशरथ की कोई भी पुत्री ही नहीं थी। अतः वह पूछता है- कौन महाराज दशरथ के जामाता है।

यहां नट राजा दशरथ की कन्या का परिचय देता है। वह कहता है कि राजा दशरथ के शान्ता नाम की एक कन्या थी। किन्तु जन्म के बाद ही राजा ने उस कन्या को अंगराज रोमपाद को दत्तक रुप में दे दिया। विभाण्डक मुनि के पुत्र महामुनि ऋष्यशृंग ने उसके साथ विवाह किया। उस मुनि ऋष्यशृंग ने बारह वर्षो तक चलने वाला एक यज्ञ का आरम्भ किया। अतः उस ऋषि के अनुरोध से गर्भिणी सीता को अयोध्या में स्थापित करके वसिष्ठ कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा आदि उस यज्ञ में गई।

व्याकरण विमर्श

1. **व्यजीजनत्** - विपूर्वकात् जन्-धातोः णिचि लुड्-लकारे प्रथमपुरुषैकवचने व्यजीजनत् इति रूपम्।
2. **अपत्यकृतिकाम्** - कृता एव कृतिका अपत्यं च सा कृतिका इति अपत्यकृतिका इति कर्मधारयसमासः, ताम् अपत्यकृतिकाम। विहितककृत्रिमकन्याम् इत्यर्थः।
3. **उपयेमे** - उपपूर्वकात् यम्धातोः लिटि प्रथमपुरुषैकवचने रूपम्।
4. **कठोरगर्भाम्** - कठोरः पूर्णः गर्भः यस्याः सा कठोरगर्भा, तां कठोरगर्भाम् इति बहुव्रीहिसमासः।

छन्दः- कन्यामिति श्लोक में अनुष्टुप् छनद है।

पाठगत प्रश्न 12.6

18. राजा दशरथ की कन्या का नाम क्या था?
19. राजा दशरथ ने कन्या किसे दे दी?
20. अपत्यकृतिकाम् का अर्थ क्या है?
21. किसने शान्ता से विवाह किया?
22. ऋष्यशृंग ने कैसा यज्ञ आरम्भ किया?

टिप्पणी

12.8 मूलपाठ

सूत्रधारः- तत्किमनेन? एहि राजद्वारमेव स्वजातिसमयेनोपनिष्ठावः।

नटः- तेन हि निरूपयतु राज्ञः सुपरिशुद्धामुपस्थानस्तोत्रपद्धतिं भावः।

सूत्रधारः - मारिष,

सर्वथा व्यवहर्तव्यं कुतोह्यवचनीयता।
यथा स्वीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः।।

अन्वयः

सूत्रधारः - तत् अनेन किम्। एहि स्वजातिसमयेन राजद्वारम् एवं उपतिष्ठावः।

नटः- तेन राज्ञः सुपरिशुद्धाम् उपस्थानस्तोत्रपद्धतिं निरूप्यतु।

सूत्रधारः - मारिष, सर्वथा व्यवहर्तव्यम् अवचनीयता कुतः? हि जनो यथा स्वीणां साधुत्वे दुर्जनः तथा वाचाम् (अति दुर्जनः)।

अन्वयार्थः

सूत्रधारः - तत् - तो, अनेन - उत्स्व के विराम के कारण के चिन्तन से, किम् - क्या सिद्ध होता है।, स्वजातिसमयेन - अपनी जाति चारण जाति के, स्वभाव से - आचरण से, राजद्वारम् - राजा के प्रतीहार के, उपतिष्ठावः - समीप जाते है।

नटः- तेन - राजद्वार पर स्तुति के पठनीयता से, निरुपयतु - चिन्तन कर, सुपरिशुद्धाम् - सदैव दोष शून्य को, उपस्थानस्तोत्र पद्धतिम् - राजा के समीप जाने के लिए स्तुतिपरिपाटी को, भावः - आप जाने।

सूत्रधारः - मारिष - आर्य, सर्वथा - सभी प्रकार से, व्यवहर्तव्यम् - व्यवहार करना चाहिए, अवचनीयता - निर्दोषता, कुतः - किस करणा से, हि - क्योकि, जनः - लोक, यथा - जिस प्रकार से, स्त्रीणाम - नारियों का, तथा - वैसे ही, तेनैव - उस प्रकार से, वाचाम् - वाणी का, साधुत्वे - सत्यता में, दुर्जनः - दोषदर्शी।

व्याख्याः -उसके बाद सूत्रधार नट से अपने कार्य को सम्पादित करने के लिए राजद्वार के प्रति प्रस्थापित किया। तब नट सूत्रधार को उद्देश्य करके कहता है कि राजद्वार में स्तुतिपाठ की आवश्यकता से दोष रहितों का राजोचित राजस्तुति पद्धति का आप विचार करो। तब सूत्रधार नट को उद्देश्य करके कहता है यह सर्वथा है। यहां सूत्रधार द्वारा लोक की निन्दा को कहा गया है। लोक में जन दोष रहित वस्तु में भी आयास से दोष की संभावना करते हैं। इस प्रकार वे जैसे साध्वी स्त्रियों के सतीत्व में सन्देह को प्रकट करते हैं। वैसे ही किसी कवि द्वारा लिखित काव्य में करते हैं। इस प्रकार दोषदर्शन उनके स्वभाव सिद्ध है। अतः उनके विषय में चिन्तन करके व्यवहार को नहीं त्यागना चाहिए। अतः सूत्रधार भी उन सब की चिन्ता किये बिना ही स्तुति करने के लिए राजद्वार में जायेंगे, ऐसा उसका आशय है। इस पद्य से कवि ने सीता

विषयक अपवाद की अवतारणा विहित की है।

विशेष टिप्पणी

इस श्लोक में सीता अपवाद की संभावना कही है। वह मुखसन्धि का समाधानाख्यभंग होता है। उसका लक्षण है-''बीजस्यागमन यत्तु तत्समाधानमुच्यते।''

व्याकरण विमर्श-

1. सर्वथा- सर्वशब्दात् थाल्प्रत्यये सर्वथा इति रूपम्। सर्वेण प्रकारेण इति तदर्थः।
2. व्यवहर्तव्यम्- वि-अव इत्युपसर्गद्वयपूर्वकात् हृधातोः तव्यत्प्रत्यये प्रथमैकवचने रूपम्।
3. अवचनीयता- वचनीयं दोषः। तस्य भावः इति तल्प्रत्यये वचनीयता। न वचनीयता अवचनीयता इति नंतत्पुरुषसमासः।

सन्धिविच्छेद-

1. कुतो ह्यवचनीयता - कुतः+हि+अवचनीयता।
2. दुर्जनो जनः - दुर्जनः+जनः

अलंकार विमर्श-

1. श्लोक कुतो ह्यावचनीयता' वाक्य को प्रति उत्तरार्ध वाक्यार्थ का हेतु होने के कारण से काव्यलिंग अलंकार है। उसका लक्षण है। ''हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिंग निगद्यते।''
2. यथा स्त्रीणाम् तथा वाचाम् यहां उपमालंकार है। उसका लक्षण संहित्यदर्पण में -''

   साम्यं वाच्यमवैधर्मं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः।''
3. यहां उपमा का और काव्यलिंग अलंकार को अंग अंगीभाव होने से शंकरालंकार है।

   छन्द :- इस श्लोक में अनुष्टुप छन्द है।

पाठगत प्रश्न 12.7

23. अवचनीयता कहां नहीं है?
24. लोक कैसा होता है?

12.9 मूलपाठ

नट- अतिदुर्जन इति वक्तव्यम्।

टिप्पणी

देव्यामपि हि वैदेह्यां सापवादो यतो जनः।
रक्षोगृस्थितिर्मूलमग्रिशुद्धौ त्वनिश्यचः।।6।।

सूत्रधार - यदि पुनरियं किंवदन्ती महाराजं प्रति स्यन्देत ततः कष्टं स्यात्।

अन्वय

नटः -अतिदुर्जन इति वक्तव्यम्।

यतो हि जनः देव्यां वैदेह्याम् अमि सापवादः (वर्तते) रक्षोग्रहस्थितिः (तस्य) मूलम् (अस्ति)। अग्रिशुद्धौ तु (जनस्य) अलश्चयः।

सूत्रधारः - यदि पुनःइयं किंवदन्ती महाराजं प्रति राजानं स्यन्देत ततः तदा कष्टं स्यात्।

अन्वयार्थः-

नट- अतिदर्जन- सदैव दोष देखने वाले, वक्तव्यम् - कहना चाहिए। यतः - क्योंकि या जिस कारण से, जनः - लोक, देव्याम् - परम् पूज्य वैदेही जनकतनया सीता में, अपि - भी, सापवाद - दूसरों द्वारा निन्दा है। रक्षोगृहस्थितिः - रावण के द्वार में निवास करना मूल कारण है, अग्निशुद्धा - अग्नि परीक्षा में शुद्धि को तो लोगों का, अनिश्चयः - निर्णय अभाव में संशय है।

सूत्रधारः- यदि पुनः- चेत, इयम् - यह, किंवदन्ती - जनश्रुति, महाराज प्रति - राजा रामचन्द्र के प्रति, स्यन्देत् - प्रस्रव होती है तो, ततः- इसके बाद, कष्टः - कष्ट होगा।

व्याख्या- पूर्व में सूत्रधार ने लोक की निन्दा की। यहां नट भी लोक की दुष्टता अथवा अतिदुर्जनता को प्रकाशित करते हैं। देवी तथा वैदेही ये दोनों पद सीता के चरित्र के अलौकिक उत्कर्ष को ध्वनित करते हैं। सीता आत्मज्ञानी मनुष्य के गर्भ से अनुत्पन्न है और फिर भी वह वैदेही अर्थात् आत्मज्ञानी विदेहराज जनक की पुत्री है। वैसे ही राक्षस रावण के गृह में उसकी अवस्था के कारण से लोग उसके चरित्र में दोष देखते हैं। अग्नि परीक्षा होने पर भी उनका विश्वास नहीं है। अतः वे अतीव दुर्जन हैं, यह वक्तव्य है। कवि भवभूति ने लोग सीता चरित्र के निन्दक है, इस कथन से राम का सीता परित्याग करना उचित प्रस्तुत किया है। लोग सीता का रावण राज्य लंका में रहने के कारण से उसके दोष को प्रदर्शित करते हैं। सूत्रधार आशंका को प्रकट करता है कि यह जनश्रुति महाराज रामचन्द्र को पता चलेगी तब उन्हें महान कष्ट होगा।

व्याकरण विमर्श

1. **वैदेह्याम्**- विदेहस्य अपत्यं स्त्री इत्यर्थें विदेहशब्दात् अंप्रत्यये स्त्रियां डीपि सप्तम्याः एकवचने रूपम्।
2. **सापवादः**- अपवादेन लांछनेन सहितः सापवादः।
3. **रक्षोगृहस्थितिः** - रक्षसःगृहं रक्षोगृहम् इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः। रक्षोगृहे स्थितिः रक्षोगृहस्थितिः इति सप्तमीतत्पुरुषसमासः।

4. **अग्निशुद्धौ** - अग्नौ शुद्धिः अग्निशुद्धिः इति सप्तमीतत्पुरुषसमासः।

5. **अनिश्चयः** - न निश्चयः अनिश्चयः इति नंतत्पुरुषसमासः।

अलंकार विमर्श

1. 'देव्यामपि' इस श्लोक में दोषभाव होने पर भी दोष कथन से विभावनालंकार है। उसका लक्षण

   ''विभावना विना हेतु कार्योत्पत्तिर्यदुच्यते।''

2. अशुद्धि सत्य में भी अविश्वास के कारण विशेषोक्ति अलंकार है। उसका लक्षण''

   सति हेतौ फलाभावो विशेषोक्ति''

3. 'अतिदुर्जन' इस वक्तव्यम् इस काव्य के प्रति पूर्ववाक्य का हेतु होने से काव्यलिंग अलंकार है।

   छन्द- देव्यामपि इस श्लोक में अनुष्टुप छन्द है।

पाठगतप्रश्न 12.8

25. सीता के अपवाद का क्या कारण है?

26. रक्षोगृहस्थितिर्मूलमग्निशुद्धौ' का सन्धिविच्छेद कीजिए?

27. लोक कहां विश्वास नहीं करते?

12.10 मूलपाठ

नटः- सर्वथा ऋषयो देवाश्च श्रेयो विधास्यन्ति। (परिक्रम्य) भो भो क्वेदानीं महाराजः?

(आकर्ण्य) एवं जनाः कथयन्ति -

स्नेहात्सभाजयितुमेत्य दिनान्यमूनि नीत्वोत्सवेन जनकोऽद्य गतो विदेहान्।
देव्यास्ततो विमनसः परिसान्त्वनाय धर्मासनाद्विशति वासगृहं नरेन्द्रः ।।7।।

अन्वय

नटः- सर्वथा ऋषयः देवाः च श्रेयः विधास्यन्ति। परिक्रम्य भो भो क्व इदानीं महाराजः? आकर्ण्य जनाः कथयन्ति - स्नेहात् सभाजयितुम् एत्य अमूनि दिनानि उत्सवेन नीत्वा जनकोऽद्य विदेहान् गतः। ततः विमनसः देव्याः परिसान्त्वनाय नरेन्द्रः धर्मासनात् वासगृहं विशति।

टिप्पणी

अन्वयार्थ

नटः- सर्वथा - सब प्रकार से, ऋषयः - वशिष्ठ वाल्मीकि प्रमुख ऋषि, देवाः -गंगा पृथिवी आदि देवता, च - और, श्रेयः - कल्याण को, विधास्यन्ति - करेंगे। (परिक्रम्य - भ्रमण करके) भो भो - अरे अरे, क्व इदानीम् महाराजः - इस समय कहां है। आकर्ण्यम् - सुनकर, एवम् - इस प्रकार, जना - लोग, कथयन्ति - कहति है।, स्नेहात् - अति प्रेम से, सभाजवितुम् - रामचन्द्र का अभिनन्दन करने के लिए, एत्य - अयोध्या आकर, अमुनि दिनानि - इन दिनों, उत्सवेन - महल के राज्याभिषेक उत्सव से, नीत्वा - विताकर (व्यतीत करके) जनकः - विदेहपति, अद्यः - आज, विदेहन् - अपने जनपद जनकपुरी को, गतः - चले गये। ततः - उस कारण पिता के गमन करने से, विमनसः - खिन्नता से, देव्याः - सीता को, परिसान्त्वनाय - मनोविनोद के लिए, नरेन्द्रः - महाराजरामचन्द्र, धर्मासनात् - धर्मसिंहासन से उठकर, वासगृहम् - सीतानिवासस्थान को, विशति - प्रवेश करता है।

व्याख्या- इसके बाद नट सूत्रधार को कहता है कि देवता और ऋषि सदैव मंगल ही करते हैं। अतः चिन्ता नहीं करनी चाहिए। इसके बाद नट लगातार चारों ओर देखकर महाराज श्रीरामचन्द्र इस समय कहां है। यह पूछता है उसके बाद वह कहता है कि दशरथ के पुत्र श्रीरामचन्द्र के राज्याभिषेक के उपलक्ष्य में न केवल ऋषि अपितु राजर्षि भी आये थे। अतः राजर्षि जनक भी उत्सव में यहां आये थे। वे श्रीराम के श्वसुर भी हैं। उत्सव की समाप्ति के बाद वे आज अपने राज्य विदेह लौट गये हैं। उनके जाने के बाद जनक पुत्री राम की पत्नी सीता खिन्न हो गई। अतः उसकी खिन्नता दूर करने के लिए राम धर्मसिंहासन से उठकर वासगृह की ओर गये। यहाँ धर्मासनात् और नरेन्द्र में दो पद राम के चरित्र की विशिष्टता प्रदर्शित करते हैं। राम धर्मपालन में स्थिर मति वाले थे। अतः वे पहले नरेन्द्र और बाद में सीतापति थे। भविष्य की घटना चक्र का इन दोनों पदों से बोधित हो रहा है। इस प्रकार नाटक की प्रस्तावना समाप्त होती है।

विशेष टिप्पणी- इस प्रकार उत्तररामचरित की प्रस्तावना प्रस्तुत की गई। प्रस्तावना का लक्षण साहित्यदर्पण में:-

''नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते।।
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि वा।''

यहाँ प्रयोगातिशय प्रस्तावना है-उसका लक्षण साहित्यदर्पण में

यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्य प्रयुज्यते।
तेन पात्रप्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशय स्तदा।।''

व्याकरणविर्मश

1. एत्य - आङ्-पूर्वकात् इण्धातोः क्त्वाप्रत्यये तस्य ल्यबादेशे एत्य इति रूपम्।
2. विमनसः - विगतं मनः यस्याः सा विमनाः तस्याः विमनसः इति प्रादिसमासः।

सन्धिविच्छेद,

1. दिनान्यमूनि - दिनानि+अमूनि।
2. नीत्वोत्सवेन - नीत्वा+उत्सवेन।
3. जनकोऽद्य - जनकः+अद्य।
4. गतो विदेहान् - गतः+विदेहान्।
5. देव्यास्ततो विमनसः - देव्याः+ततः+विमनसः।
6. धर्मासनाद्विशति - धर्मासनात्+विशति।

छन्द- स्नेहादिति - 'वसन्ततिलका वृत्तम' छन्द है इसका लक्षण वृत्तरत्नाकर में -

''ज्ञेया वसन्ततिलका तभजा जगौ गः''

पाठगत प्रश्न 12.9

28. सीता की खिन्नता का क्या कारण था?
29. राम सिंहासन से उठकर कैसे वासगृह जाते हैं?
30. वसन्ततिलका छन्द का लक्षण लिखिए?

पाठसार

ग्रन्थ की समाप्ति की कामना से मंगलाचरण करना चाहिए। इस श्रुति को मन में करके कवि ने नाटक के आदि में पूर्व आचार्यों व्यास वाल्मीकि आदि को स्मरण किया है। उनके स्मरण से वाक्देवी सरस्वती का लाभ, कवि को इष्ट है। नाट्यशास्त्र में इस को नान्दी कहा जाता है। नान्दीपाठ के बाद में सूत्रधार नाट्यकार कवि भवभूति की संज्ञा वंश आदि का परिचय देता है। तब यह भी सूचित करता है कि राज्याभिषेक के उपलक्ष में अयोध्या में आये अतिथि सभी अपने प्रदेश को लौट गये है। महाराज दशरथ के शान्ता नाम की एक कन्या थी जिसको जन्म के समय में एक दत्तकरुप से अंगराजा रोमपाद को दे दिया। उसके पति महर्षि ऋष्यश्रृंग ने बारह वर्ष तक चलने वाले एक महायज्ञ का आरम्भ किया। अतः उसके अनुरोध से राम की जननी कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा पूर्णगर्भा सीता को अयोध्या में छोड़कर वशिष्ठ की पत्नी अरुन्धती को आगे करके जामाता के आश्रम में गयी। इस प्रसंग में सूत्रधार सीता विषयक लोकापवाद को प्रकट करता है तथा नट भी सीता की अग्निशुद्धि में लोग विश्वास नहीं करते है, यह कहता है। सूत्रधार आशंका करता है कि यदि रामचन्द्र यह सब जानेंगे तो महान अनिष्ट होगा। उसको सुनकर नट विश्वास प्रकट करता है कि देवता सदैव लोगों के कल्याण ही सिद्ध करते है। इसके बाद पिता जनक के अयोध्या से जाने के कारण से सीता खिन्न हो जाती है। अतः उसको

टिप्पणी

सान्त्वना देने के लिए श्रीराम सिहांसन से उठकर वासगृह की ओर जाते हैं। इस प्रकार की प्रस्तावना समाप्त होती हैं।

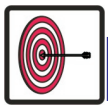

आपने क्या सीखा

- श्रीराम और सीता के चरित्र को जाना।
- नट, नाटक एवं सूत्रधार को जाना।
- नान्दी पाठ को जाना।
- छन्द एवं उनके लक्षणों को जाना।

पाठान्तरप्रश्न

1. नान्दी किसे कहते हैं- नान्दी का लक्षण उसकी समालोचना कीजिए।
2. सूत्रधार कौन होता है?
3. भवभूति कौन थे उनके विषय में लिखिए।
4. मंगल श्लोक की व्याख्या कीजिए।
5. अयोध्या में गीतावाद्य आदि के अभाव का क्या कारण था?
6. सम्पूर्ण उत्तररामचरित नाटक को रामायण के किस भाग से कहां तक कथा व्याप्त है। उसका वर्णन कीजिए।
7. एक श्लोक जिसमें अनुष्टुप छन्द है, उसका लक्षण से समन्वय कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

12.1

1. कवि भगवान् के अंशरूपा वाक्देवी सरस्वती की इच्छा करता है।
2. अनुष्टुप का लक्षण -श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पचंमम्।
   द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययो:।।
3. वच् धातु से क्विप् प्रत्यय से वाक् बनता है, उसका अर्थ वचन है। नम: वाक् यस्मिन् इति नमोवाक: बहुव्रीहिसमास: तं नमोवाकम्।

12.2

4. आर्यों के सर्वविभूतसमपन्न महादेव के उत्सव में सूत्रधार को ज्ञात होता है।

5. भवभूति काश्यप, श्रीकण्ठपदलांछन, पदवाक्य प्रमाणज्ञ, जातूकर्णी के पुत्र थे।

6. पदं च वाक्यं च प्रमाणं च पदवाक्यप्रमाणानि - इतरेत्तरद्वन्द्वसमास तेषां ज्ञः पदवाक्यप्रमाण ज्ञः।

12.3

7. उत्तररामचरित।

8. वाक्+वश्या+इव+अनुवर्तते।

9. यह नाटक भवभूति विरचित है।

10. ग्रन्थकर्ता को सरस्वती देवी वश्या स्त्री के समान अनुकरण करती है यह ग्रन्थकर्ता का वैशिष्ट्य है।

12.4

11. राम के सुहृद वानर राक्षस वशिष्ठादि ब्रह्मर्षि और जनकादि राजर्षि राम राज्याभिषेक में आये।

12. अभिषेक में राम का अभिनन्दन करने के लिए अयोध्या आये।

13. राज्याभिषेक के उत्सव की समाप्ति पर दशरथ की रानियाँ अयोध्या को छोड़कर यज्ञ के लिए ऋष्यश्रृंगमुनि के आश्रम को गई, इस कारण निःशब्दता थी।

14. अभिषेकस्य समय - षष्ठीतत्पुरुष।

15. सूत्रधार आयोध्यकः हो गये।

12.5

16. राम की माता ऋष्यश्रृंग मुनि के अनुरोध से यज्ञ देखने के लिए उसके आश्रम को गई।

17. वशिष्ठ पत्नी अरुंधती को आगे करके राम की माताएं गई।

12.6

18. दशरथ की कन्या का नाम शान्ता था।

19. दशरथ की कन्या को अंगराज रोमपाद को दे दी।

20. अपत्यकृतिकाम् का अर्थ विहितकृत्रिमकन्या है।

21. विभाण्डक सुत ऋष्यश्रृंग ने शान्ता से विवाह किया।

22. ऋष्यश्रृंग बारह वर्ष तक चलने वाले यज्ञ का आरम्भ किया।

टिप्पणी

12.7

23. सर्वथा व्यवहार करना चाहिए, अतः अवचनीयता नहीं होती है।

24. लोक स्त्रियों और वाणी की साधुता में भी दोष देखते है।

12.8

25. सीता के अपवाद का कारण राक्षण रावण के घर में निवास था।

26. रक्षोगृहस्थितिः + मूलम्।

27. लोक अग्निशुद्धि में विश्वास नहीं करते।

12.9

28. सीता की खिन्नता का अपने पिता जनकादि का विदेहराज्य में गमन ही कारण है।

29. राम सिंहासन से उठकर सीता के मनोरंजन के लिए वासगृह में गये।

30. वसन्ततिलका का लक्षण - उक्ता वसन्ततिलका तमजा जगौ गः।

13

उत्तररामचरित - अष्टावक्र संवादः

इस पाठ में प्रस्तावना के बाद नाटक आरम्भ होता है। यहाँ सर्वप्रथम सीता को सान्त्वना देने के लिए राम प्रवेश करते हैं। उसी समय महर्षि अष्टावक्र ऋष्यश्रृंग के आश्रम से आते हैं। वह आकर सीता और राम को गुरुजन वशिष्ठादि द्वारा प्रदान उपदेशों को सुनाते हैं। राम आदेशानुसार ही जीवन व्यतीत करेंगे, यह प्रतिज्ञा करते हैं। उसके बाद लक्ष्मण आकर चित्रकार द्वारा अंकित चित्र को देखने के लिए राम को कहते हैं। प्रसंग से राम सीता की पवित्रता का वर्णन करते है। ये सभी अंश हमें पाठ को पढ़ने से ज्ञात होंगे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- राम के गुणों को जान पाने में;
- देवी सीता के चरित्र को समझ पाने में;
- छन्दों के लक्षणों को जान पाने में;
- श्लोकों के अन्वय एवं प्रतिपदार्थ आदि को समझ पाने में और;
- दीर्घ पदों का विग्रह एवं समास को जान पाने में।

13.1 सम्पूर्ण मूलपाठ

(ततः प्रविशत्युपविष्टो रामः सीता च)

टिप्पणी

रामः- देवि! वैदेहि! विश्वसिहि ते हि गुरवो न शक्नुवन्ति विहातुमस्मान्।
किंत्वनुष्ठाननित्यत्वं स्वातन्त्र्यमपकर्षति।
सङ्कटा ह्याहिताग्नीनां प्रत्यवायैर्गृहस्थता।।8।।

सीताः- जाणामि अज्जउत्त! जाणामि। किंदु संदावआरिणो बन्धुजणविप्प-ओआ होन्ति।
(जानामि आर्यपुत्र! जानामि किन्तु संतापकारिणो बन्धुजनविप्रयोगा भवन्ति)।

रामः- एवमेतत्। एते हि दयमर्मच्छिद संसारभावा। येभ्यो बीभत्समानाः संत्यज्य सर्वान्कामानरण्ये विश्राम्यन्ति मनीषिणः।

(प्रविश्य)

कंचुकीः- रामभद्र! (इत्यर्धोक्ते साशङ्कम्) महाराज!-

रामः- (सस्मितम्) आर्य! ननु रामभद्र! इत्येव मां प्रत्युपचारः शोभते तातपरिजनस्य। तद्यथाभ्यस्तमभिधीयताम्।

कंचुकी- देव! ऋश्यशृंगाश्रमदष्टावक्रः सम्प्राप्तः।

सीता- अज्ज! तदो किं विलम्बीअदि (आर्य! ततः किं विलम्ब्यते)।

रामः- त्वरितं प्रवेशय।

(कंचुकी निष्क्रान्तः।)
(प्रविश्य)

अष्टावक्रः- स्वस्ति वाम्।

रामः- भगवन्! अभिवादये इत आस्यताम्।

सीता- भअव णमो दे। अवि कुसलं सजामातुअस्स गुरुअणस्स अज्जा, सन्ता, अ।
(भगवन्नमस्ते। अपि कुशलं सजामातृकस्य गुरुजनस्यार्यायाः शान्तायाश्च?)

रामः- निर्विघ्नः सोमपीथी आवुत्तो मे भगवानृष्यशृंगः, आर्या च शान्ताः?

सीता- अम्हे वि सुमरेदि (अस्मानपि स्मरति?)

अष्टावक्रः- (उपविश्य) अथ किम्। देवि! कुलगुरुर्भगवान् वसिष्ठस्त्वामिदमाह-
विश्वम्भरा भगवती भवतीमसूत राजा प्रजापतिसमो जनकः पिता ते।
तेषां वधूस्त्वमसि नन्दिनि! पार्थिवानां येषां कुलेषु सविता च गुरुर्वयं च ।।9।।
तत्किमन्यदाशास्महे। केवलं वीरप्रसवा भूयाः।

रामः- अनुगृहीता स्मः।
लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुवर्तति।।10।।

अष्टावक्रः - इदं च भगवत्याऽरुन्धत्या देवीभिः शान्तया च भूयो भूयः संदिष्टम्- 'यः कश्चिद्गर्भदोहदो भवत्यस्याः सोऽवश्यमचिरात्सम्पादयितव्य' इति।

राम- क्रियते यद्येषा कथयति।

अष्टावक्रः - ननान्दुः पत्या च देव्या संदिष्टम्- 'वत्से, कठोरगर्भेति नानीतासि। वत्सोऽपि रामभद्रस्त्वद्विनोदार्थमेव स्थापित। तत्पुत्रपूर्णोत्सङ्गामायुष्मतीं द्रक्ष्यामः इति।

रामः - (सहर्षलज्जास्मितम्) तथास्तु। भगवता वसिष्ठेन न किञ्चिदादिष्टोस्मि।

अष्टावक्र- श्रूयताम्।

जामातृयज्ञेन वयं निरुद्धास्त्वं बाल एवासि नवं च राज्यम्।
युक्तः प्रजानामनुरंजने स्यास्तस्माद्यशो यत्परमं धनं वः॥11॥

रामः- यथा समादिशति भगवान्मैत्रावरुणिः।

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुंचतो नास्ति मे व्यथा ॥12॥

सीता- अदो जेव्व राहवधुरन्धरो अज्जउत्तो। (अत एव राघवधुरन्धर आर्यपुत्रः।)

रामः- कः कोऽत्र भोः। विश्राम्यतामष्टावक्र।

अष्टावक्रः- (उत्थाय परिक्रम्य च) अये कुमारलक्ष्मणः प्राप्तः।

(इति निष्क्रान्तः)
(प्रविश्य)

लक्ष्मणः - जयति जयत्यार्यः। आर्य! अर्जुनेन चित्रकरेणास्मदुपदिष्टमार्यस्य चरितमस्यां वीथ्यामभिलिखतम्। तत्पश्यत्वार्य।

रामः- जानासि वत्स! दुर्मनायमानां देवीं विनोदयितुम्। तत्कियन्तमवधिं यावत्।

लक्ष्मणः- यावदार्याया हुताशनशुद्धिः।

रामः- शान्तं पापम् (ससान्त्ववचनम्।)
उत्पत्तिपरिपूतायाः किमस्याः पावनान्तरैः।
तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः॥13॥
देवि देवयजनसम्भवे! प्रसीद। एष ते जीवितावधिः प्रवादः।
क्लिष्टो जनः किल जनैरनुरंजनीय स्तन्नो यदुक्तमशुभं च
न तत्क्षमं ते।
नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा मूर्ध्नि स्थितिर्न
चरणैरवताडनानि॥14॥

टिप्पणी

13.2 मूलपाठ

(ततः प्रविशत्युपविष्टो रामः सीता च)

रामः- **देवि! वैदेहि! विश्वसिहि ते हि गुरवो न शक्नुवन्ति विहातुमस्मान्।**
कित्वंनुष्ठाननित्यत्वं स्वातन्त्र्यमपकर्षति।
सङ्कटा ह्याहिताग्रीनां प्रत्यवायैर्गृहस्थता॥8॥

सीताः- **जाणामि अज्जउत्त! जाणामि। किंदु संदावआरिणो बन्धुजणविप्प-ओआ होन्ति।**
(जानामि आर्यपुत्र! जानामि किन्तु संतापकारिणो बन्धुजनविप्रयोगा भवन्ति)।

रामः- **एवमेतत्। एते हि दयमर्मच्छिद संसारभावा। येभ्यो बीभत्समानाः संत्यज्य सर्वान्कामानरण्ये विश्राम्यन्ति मनीषिणः।**

अन्वयः-

(ततः प्रविशति उपविष्टः रामः सीता च)

रामः- दैवि वैदेहि, समाश्वसिहि, हि ते गुरवः अस्मान् विहातुं न शक्नुवन्ति। किन्तु अनुष्ठाननित्यत्वं स्वातन्त्र्यम् अपकर्षति। हि आहिताग्रीनां गृहस्थता प्रत्यवायैः सङ्कटा।

सीता- आर्यपुत्र, जानामि, बन्धुजनविप्रयोगाः सन्तापकारिणः भवन्ति।

रामः- एवम् एतत्। संसारभावाः हृदयमर्मच्छिदः येभ्यः बीभत्समानाः मनीषिणः सर्वान् कामान सन्त्यज्य अरण्ये विश्राम्यन्ति।

अन्वयार्थः- (ततः -उसके बाद, प्रविशति-मंच पर प्रकट होते हैं, उपविष्टः-बैठे हुए, राम सीता च,- राम और सीता)

रामः- हे देवि- अरे वैदेहि विदेहराजपुत्री सीता, समाश्वसिहि- विश्वस्त हों अथवा समाश्वस्त हो, हि- क्योंकि, ते- तुम्हारे, गुरवः- जनक महोदय, अस्मान्- हमारे, विहातुम्- छोड़ने के लिए, न-नहीं, शक्नुवन्ति- समर्थ हो हैं। किन्तु- परन्तु, अनुष्ठाननित्यत्वम्- नित्य नैमित्तिक आदि कर्मकलाप आदि की नित्यता के कारण, स्वातन्त्रयं- स्वच्छन्दता को, अपकर्षति- न सहन करते हैं। हि- क्योंकि, आहिताग्नीनाम्- जिनके द्वारा अग्नि स्थापित की जाती है उन अग्निहोत्रीयों का, गृहस्थता- ग्रहस्थियों के, प्रत्यवार्यैः- शास्त्र कहे गये आचार से उत्पन्न न होने के कारण, पातक के द्वारा, संकट- दुःख का कारण होता है।

सीता- आर्यपुत्र- स्वामी, जनामि- जानती हूँ, किन्तु- परन्तु, बन्धुजन विप्रयोगः- बन्धुजनों का बिछुड़ना, सन्तापकारिणः- सन्ताप का कारण, भवन्ति- होता है।

रामः- एवम् एतत् -आपके द्वारा कहा गया वह सत्य ही हैं, संसार भावाः- जीवन में लोक के धर्म, हृदयमर्माच्छिदः- हृदय के मर्म को छेदने वाले, येभ्यः- जिससे,

टिप्पणी

वीभत्समानाः- जुगुप्सा या घृणिततावाले, मनीषिणः- मनीषी ,तत्ववेताजन, सर्वान्- सभी, कामान्- कामों को, सन्त्यज्य- परित्याग करके, अरण्ये- वन में, विश्राम्यन्ति- शान्ति को प्राप्त करते हैं।

व्याख्याः- यहाँ श्री राम पितृगमन के कारण हुए वियोग से खिन्न पत्नी सीता को आश्वस्त करते हैं। जनक महोदय हमारे पूज्य गुरूजन है। अतः वे अधिक काल को व्यतीत करके हमको छोड़कर स्थापित रहने में असमर्थ हैं। अतः वे पुनः आयेंगे यह भाव है। इस प्रकार से जानकी सीता को राम सान्त्वना देते हैं।

नित्य, नैमित्तिक और काम्य ये तीन प्रकार के कर्म होते हैं। उनमें से नित्य कर्मों के अनुष्ठान से फल नहीं होता, किन्तु उनके न करने पर पाप की संभावना होती है। नैमित्तिक कर्मों के अनुष्ठान में फल होता है किन्तु अकारण करने पर विपरीत होता है। काम्य कर्मों के अनुष्ठान में फल कुछ भी नहीं है। अविधान होने पर दोष भी नहीं हैं। धार्मिक सन्त पुरुष इन कर्मों को नित्य करते हैं। अर्थात् वे वैवाहिक जीवन में नित्य अग्नि होत्र की उपासना करते हैं। वह ही उनका नित्य कर्म है। इस प्रकार विदेहराज जनक अग्निहोत्र करते थे। अतः अयोध्या में वे बहुत दिनों तक रहने में असमर्थ थे। इस कारण ही गये, न कि सीता के प्रति कम स्नेह होने के कारण। इस प्रकार राम ने सीता को सान्त्वना के वचन कहे।

राम के आश्वासन प्रदान के बाद सीता ने राम को उद्देश्य करके कहा कि वह सब कुछ समझती है, किन्तु स्वजनों का वियोग सदैव सन्तापदायी होता है। इस प्रकार सीता के वचनों को सुनकर सत्यता को स्वीकार करके राम ने कहा- यह संसार का धर्म हृदय का मर्म भेदक है। इससे विरक्त, आत्मज्ञ जन सभी विषयों का परित्याग करके वन में शान्ति को प्राप्त करते है। कामना ही दुखों का मूल है।

व्याकरण विमर्शः-

- **विहातुम्**:-विपूर्वकात् हाधातोः तुमुन्प्रत्यये विहतुम् इति रूपम्।
- **अनुष्ठानम्**-अनुपूर्वकात् स्थाधातोः ल्युटि तस्य अनादेशे अनुष्ठानम् इति रूपम्। अनुष्ठानस्य नित्यत्वम् अनुष्ठाननित्यत्वम् इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः।
- **प्रत्यवायः**-प्रति अव इत्युपसर्गद्वयपूर्वकात् इण्धातोः घञ्प्रत्यये इति रूपम्।
- **आहिताग्नीनाम्**-आहितः अग्निः यैः ते आहिताग्नयः, तेषाम् आहिताग्नीनाम् इति बहुव्रीहिसमासः। साग्निकानाम् इत्यर्थः।
- **बीभत्समानाः**-बध्धातोः सनप्रत्यये निष्पन्नाद् बीभत्सधातोः शनचि पुंसि प्रथमाबहुवचने बीभत्समानाः इति रूपम्।
- **बन्धुजनविप्रयोगः**-विपूर्वकात् प्रपूर्वकात् युज्धातोः घञा विप्रयोगशब्दो निष्पन्नः। बन्धुजनानां विप्रयोगः बन्धुजनविप्रयोगः इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः।

सन्धिविच्छेदः-

- **किन्त्वनुष्ठाननित्यत्वम्**-किन्तु+अनुष्ठाननित्यत्वम्।
- **ह्याहिताग्नीनाम्**- हि+आहिताग्नीनाम्।
- **प्रत्यवायैर्गृहस्थता**-प्रत्यवायैः+गृहस्थता।

छन्दः-इस श्लोक में अनुष्टुप्-छन्द है

अलंकार विमर्श

(1) इस श्लोक में पूर्वार्ध के प्रति उत्तरार्ध का हेतु होने के कारण काव्यलिंग अलंकार है।

(2) उत्तरार्ध से पूर्वार्ध का समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार है उसका लक्षण साहित्यदर्पण में:- **सामान्य वा विशेषस्तेन वा यदि।**

कार्यच कारणेनेदं कार्येण च समर्ध्यते।।
साधर्म्येणेतरेणार्थान्तरन्याससोऽष्टधा ततः।।

(3) यहाँ अर्थान्तरन्यास का और काव्यलिंग का अंगांगिभाव होने से संकरालंकार है।

पाठगतप्रश्न 13.1

(1) गृहस्थों की स्वतन्त्रता को कौन नियंत्रित करता है?

(2) "किन्त्वनुष्ठाननित्यत्वम्" सन्धिविच्छेद कीजिए?

(3) कर्म कितने प्रकार के है और कौन से हैं?

(4) आहिताग्नियों की गृहस्थता कैसे होती है?

(5) कौन सन्तापकारी होते है?

(6) संसारभावा कैसे होते हैं?

(7) कैसे मनीषी वन में शान्ति को प्राप्त करते है?

13.3 मूलपाठ

(प्रविश्य)

कंचुकी:- रामभद्र! (इत्यर्धोक्ते साशङ्कम्) महाराज!-

रामः- (सस्मितम्) आर्य! ननु रामभद्र! इत्येव मां प्रत्युपचारः: शोभते तातपरिजनस्य। तद्यथाभ्यस्तमभिधीयताम्।

कंचुकी– देव! ऋष्यशृंगाश्रमदष्टावक्रः सम्प्राप्तः।

सीता– अज्ज! तदो किं विलम्बीअदि (आर्य! ततः किं विलम्ब्यते)।

रामः– त्वरितं प्रवेशय।

(कंचुकी निष्क्रान्तः।)

अन्वयः– **(प्रविश्य)**

कुंचुकी– रामभद्र! (इत्यर्धोक्ते साशङ्कम्) महाराज!

रामः– (सस्मितम्) आर्य! ननु रामभद्र! इत्येव तातपरिजनस्य मां प्रति उपचार:शोभते। तद् यथा अभ्यस्तम् अभिधीयताम्।

कंचुकी– देव! ऋश्यशृंगाश्रमाद् अष्टावक्रः सम्प्राप्तः।

सीता– आर्य! ततः किं विलम्ब्यते।

रामः– त्वरितं प्रवेशय।

(कंचुकी निष्क्रान्तः)

अन्वयार्थः– (प्रविश्य– प्रवेश करके)

कंचुकी– रामभद्र– शोभन राम (इत्यर्धोक्ते साशंकम्–, भय के साथ)।महाराज!

रामः– (सस्मितम्– थोड़ी हंसी के साथ) आर्य– पिता के परिजन का या पितृचरण सेवक का, रामभदद्र! इत्यवे, मां– रामचन्द्र को (मुझको), प्रति उपचारः– व्यवहार, शोभते– उपयुक्त है। **तत्**– उस कारण से, यथाभ्यस्तम्– अभ्यास के अनुरूप से, अभिधीयताम्– उच्चारण करो।

कंचुकी– देव–हे प्रभु, ऋष्यशृंगाश्रमात्– मुनि ऋष्यशृंग के आश्रय से, अष्टावक्रः– अष्टावक्र नामक, महात्मा, सम्प्राप्तः– आया है।

सीता– आर्य, ततः– उससे, किम्– किस लिए, विलम्बयते– विलम्ब किया जा रहा है।

रामः– त्वरितम्– अतिशीघ्र, प्रवेशम्– प्रशेव कराओ।

(कंचुकी निष्क्रान्त– कंचुकी चला गया)

व्याख्याः– उसके बाद कंचुकी प्रवेश करके रामचन्द्र को पूर्वतन अभ्यास के अनुसार रामभद्र ऐसा ही पुकारा। किन्तु इस समय वह अयोध्या का अधिपति राजा हो गया। अतः शंका करता हुआ, वह अगले ही क्षण में राम को महाराज ऐसा पुकारा। इस सब को समझकर श्रीराम थोड़ा हंसकर–मुस्कराकर कंचुकी को उद्देश्य करके बोले कि रामभद्र ऐसा ही व्यवहार तुम्हारे लिए रूचिकर है। (अच्छा लगता है।) क्योंकि ये परिचारक पितृचरण सेवक हैं। यहाँ राम की उदारता प्रशंसनीय है। महाराज होते हुए भी सेवकों को भयरहित होने का सम्पादन करते हैं। उससे उसकी क्षमा कैसी थी इसका पता चलता है। इस प्रकार उसका धीरोदात्त नायकत्व उत्पन्न होता

टिप्पणी

है। उस कारण से पूर्वाभ्यास के अनुसार वक्तव्य है। कंचुकी ने सूचित किया कि ऋष्यशृंग मुनि के आश्रम से महर्षि अष्टावक्र आये हैं। तब राम और सीता महर्षि को शीघ्र ही अन्दर लाने के लिए आज्ञा दी। उसके बाद कंचुकी बाहर जाता है।

विशेष टिप्पणीः- कंचुकी अर्थात परिच्छेद इसकी है वह कंचुकी होता है- नाटयशास्त्र में कंचुकी का लक्षण-**अन्तः पुरचरो वृद्धो विप्रो रूपगुणान्वितः।**

सर्वकार्यार्थकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते।

साहित्य दर्पण में-**ईषद्विकासिनयनं स्मितं स्यात्स्पन्दिताधरम्** ।। इति।

व्याकरण विमर्शः-

तातपरिजनस्य - तातस्य परिजनः तातपरिजनः, तस्य तातपरिजनस्य इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः।

ऋष्य शृंगाश्रमात् - ऋष्यशृंगाश्रमः, तस्माद् ऋष्यशृंगाश्रमाद् इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः।

पाठगत प्रश्न 13.2

(8) रामभद्र यह व्यवहार किसको शोभा देता है?

(9) ऋष्यशृंगाश्रम से कौन आया?

(10) कौन राम को रामभद्र सम्बोधन करता है?

13.4 मूलपाठ

(प्रविश्य)

अष्टावक्रः- स्वस्ति वाम्।

रामः- भगवन्! अभिवादये इत आस्यताम्।

सीता- भअव णमो दे। अवि कुसलं सजामातुअस्स गुरुअणस्स अज्जा, सन्ता, अ। (भगवन्नमस्ते। अपि कुशलं सजामातृकस्य गुरुजनस्यार्यायाः शान्तायाश्च?)

रामः- निर्विघ्नः सोमपीथी आवुत्तो मे भगवानृष्यश्रृङ्गः, आर्या च शान्ताः?

सीता- अम्हे वि सुमरेदि (अस्मानपि स्मरति?)

अष्टावक्रः- (उपविश्य) अथ किम्। देवि! कुलुगरुर्भगवान् वसिष्ठस्त्वामिदमाह-

विश्वम्भरा भगवती भवतीमसूत राजा प्रजापतिसमो जनकः पिता ते।
तेषां वधूस्त्वमसि नन्दिनि! पार्थिवानां येषां कुलेषु सविता च गुरुर्वयं च ।।9।।
तत्किमन्यदाशास्महे। केवलं वीरप्रसवा भूयाः।

अन्वयः:- (प्रविश्य)

अष्टावक्रः:- वां स्वस्ति।

रामः:- भगवन्! अभिवादये इत आस्यताम्।

सीता- भगवन् ते नमः। अपि सजामातृकस्य गुरुजनस्य आर्यायाः शान्तायाः च कुशलम्?

रामः:- मे आवुत्तः सोमपीथी भगवान् ऋष्यश्रृङ्गः निर्विघ्नः, आर्या च शान्ताः?

सीता- अस्मान् अपि स्मरति?

अष्टावक्रः:- (उपविश्य) अथ किम्। देवी! कुलगुरुः भगवान् वसिष्ठः त्वाम् इदम् आहभगवती विश्वम्भरा भवतीम् असूत। प्रजापतिसमो राजा जनकः ते पिता। नन्दिनि तेषां पार्थिवानां त्वं वधूः असि, येषां कुलेषु सविता गुरुः वयं च (गुरवः)। तत् अन्यत् किम् आशास्महे। केवलं वीरप्रसवाः भूयाः।

अन्वयार्थः:- (प्रविश्य- प्रवेश करके)

अष्टावक्रः:- वां- तुम दोनों का, स्वस्ति- कल्याण हो।

रामः:- भगवन्- देव!, अभिवादये- प्रणाम करता हूँ। इतः- यहाँ, आस्यताम्- बैठो

सीता- भगवन्-षट् ऐश्वर्यशाली, ते- तुम्हे, नमः- नमस्कार। सजामातृकस्य- जामाता के साथ, गुरुजनस्य- कौशल्या कैकेयी, सुमित्रा आदि, आर्यायाः शान्तायाः- दशरथ कन्या शान्ता, अपि कुशलम्- सभी कुशलपूर्वक हैं।

रामः:- मे- मेरे, सोमपीथी- सोमपान करने वाले, आवुत्तः- बहिन के पति, भगवन् ऋष्य श्रृंग आर्याशान्ता च- ऋषि ऋष्यश्रृंग और शान्ता, निर्विघ्नः- विघ्नरहित है।

सीता- किं सा शान्ता- क्या वह शान्ता, अस्मान् अपि स्मरति- हम को भी स्मरण करती है।

अष्टावक्रः:- (उपविश्य- बैठकर) (स्मरन्ति सर्वे भवन्तीम्- आप सब को स्मरण करते हैं, कुशलिनः सर्वे- सभी कुशलपूर्वक हैं) अथ- अब, किम्- क्या!, देवि- हे राजरानी, कुलगुरु भगवान् वसिष्ठः-कुल के गुरू भगवान् ऋषि वशिष्ठ, त्वाम्- तुम सीता को, इदम्- यह, **आह**:- कहा है, भगवती- षाड् गुण्य परिपूर्णा, विश्वम्भरा- पृथिवी ने, भवतीम्- सीता को, असूत-पैदा किया। प्रजापति समः- ब्रह्मा के समान, राजा जनकः-नृपविदेहपति, ते- तुम्हार, पिता- जनक हैं। नन्दिनि- हे सौभाग्यवती, तेषां पार्थिवानाम्- उन प्रसिद्ध राजाओं की, त्वम्- सीता, वधूः- कुलस्त्री, असि- हो, येषां राज्ञाम्- जिन राजाओं के, कुलेषु- वंश में, सविता- सूर्य, गुरु पिता वंश प्रवर्तक, वयं च- और हम (गुरुजन) हितोपदेश देने वाले थे। तत्- उससे, अन्यत्- दूसरा, किम्- क्या, आशास्महे- आशा करे, केवलं वीर प्रसवा- वीर पुत्र वाली, भूयाः- होओ।

व्याख्याः:- उसके बाद भगवान अष्टावक्र प्रवेश करके उन दोनों राम और सीता को

टिप्पणी

'कल्याण हो' यह आशीर्वाद दिया। राम ने उसका अभिवादन करके आसन ग्रहण करने के लिए उनसे अनुरोध किया और सीता ने उनको नमस्कार करके जामाता ऋष्यश्रृंग तथा आर्या शान्ता की कुशल वार्ता पूछी। राम ने भी बहन के पति ऋष्यश्रृंग से बहन शान्ता की वार्ता को पूछा। उसके बाद सीता ने जिज्ञासा की, कि वे दोनों भी क्या राम और सीता को स्मरण करते हैं। उनके वचनों को सुनकर और आसन पर बैठकर महर्षि अष्टावक्र ने सीता से कहा कि वे कुशलपूर्वक हैं। उसके बाद उसने कुलगुरू वशिष्ठ ने सीता के प्रति जो कहा वह सब बताया।

भगवती पृथ्वी ने सीता को उत्पन्न किया। ब्रह्मा के समान व प्रजापति के तुल्य, राजा जनक सीता के पिता है और भी सीता जिस रघुवंश की कुलवधू है उस वंश के गुरू भगवान सूर्य और स्वयं ऋषि वशिष्ठ है। इस श्लोक में रघुवंश के प्रताप और उज्ज्वलता को कवि ने वसिष्ठ के मुख से प्रकाशित किया है। यहाँ सीता के प्रति भगवान वशिष्ठ के वचन में सीता का सदैव ही कल्याण होगा यह सार है। इस प्रकार इन महाचरितों के संयोग से सीता का कभी भी अशुभ नहीं होगा। अर्थात् सदैव मंगल ही होगा यह आशय है। अतः सीता वीर पुत्र की जननी होगी यह महर्षि वसिष्ठ का आशीर्वाद है।

विशेष टिप्पणी:-यहां ऋषिश्रेय विधानरूप वशिष्ठ के अनुग्रह कथावस्तु का बीज के बहुकरण होने से मुखसन्धि के 'परिकर' नामक अंग का वर्णन है उसका लक्षण है -''बीज स्य बहुकरणं परिकरः''।

अष्टावक्र के प्रति भगवन् यह राम का सम्बोधन है। भगवान का लक्षण है-

उत्पत्ति च स्थिति चैव लोका नामगतिं गतिम्।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति॥

व्याकरण विमर्शः-

सजामातृकस्य -जामात्रा सहितः सजामातृकः तस्य सजामातृकस्य इति बहुव्रीहिसमासः।

सोमपीथी-पीथं नाम पानम्। सोमस्य पीथं सोमपीथम् इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः। तद् अस्य अस्ति इति अर्थे सोमपीथशब्दात् अत इनिठनौ इति इनिप्रत्यये सोमोपीथी इति रूपम्।

विश्वम्भरा- विश्वोपपदपूर्वकात् भृधातोः खच्प्रत्यये मुमागमे टापि विश्वम्भरा इति रूपम्।

अलंकार विमर्शः-

(1) प्रजापति समः यहाँ उपमा अलंकार है। उसका लक्षण है -
''साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः।''

(2) इस श्लोक में ''येषां कुलेषु सविता गुरुर्वयं च'' से यहाँ शब्दोपादान से समुच्चय अलंकार है उसका लक्षण है-

टिप्पणी

समुच्चयोऽयमेकस्मिन् सति कार्यस्य साधके।
खले कपोतिकान्यायात्तत्करः स्यात्परोऽपि चेत्।।
गुणौ क्रिये च युगपत् स्यातां यद्वा गुणक्रिये।।

(3) 'जनकः पिता 'यहाँ पुनरूक्तवदाभास अलंकार है। उसका लक्षण है-

आपाततो यदर्थस्य पौनरूक्त्येन भासनम्।
पुनरुक्तवदाभासः स भिन्नाकार शब्दगः।।

'**छन्द**-विश्वम्भरा इस श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है उसका लक्षण है-

उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।

पाठगत प्रश्न 13.3

11. सीता की माता कौन थी?
12. सीता के पिता कौन थे?
13. सीता किस वंश की वधू है?
14. सीता के प्रति वशिष्ठ का क्या आशीर्वाद है?

13.5 मूलपाठ

रामः - **अनुगृहीता स्मः।**
लौकिकानां हि साधूनामर्थ वागनुवर्तते।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुवर्तते।।10।।

अष्टावक्रः **इदं च भगवत्याऽरुन्धत्या देवीभिः शान्तया च भूयो भूयः संदिष्टम्- 'यः कश्चिद्गर्भदोहदो भवत्यस्याः सोऽवश्यमचिरात्सम्पादयितव्य' इति।**

राम- **क्रियते यद्येषा कथयति।**

अष्टावक्रः- **ननान्दुः पत्या च देव्या संदिष्टम्- 'वत्से, कठोरगर्भेति नानीतासि। वत्सोऽपि रामभद्रस्त्वद्विनोदार्थमेव स्थापित। तत्पुत्रपूर्णोत्सङ्गामायुष्मतीं द्रक्ष्यामः इति।**

रामः- **(सहर्षलज्जास्मितम्) तथास्तु। भगवता वसिष्ठेन न किञ्चिदादिष्टोस्मि।**

अन्वर्य :

रामः- अनुगृहीताः स्मः। लौकिकानां साधूनां वाक् हि अर्थम् अनुवर्तते। पुनः आद्यानाम् ऋषीणां वाचम् अर्थः अनुधावति।।10।।

टिप्पणी

अष्टावक्रः- इदं च भगवत्या अरुन्धत्या देवीभिः शान्तया च भूयो भूयः सन्दिष्टम्- 'यः कश्चिद् अस्याः गर्भदोहदः भवति सः अवश्यम् अचिरात् सम्पादयितव्यः' इति।

रामः- एषा यत् कथयति क्रियते।

अष्टावक्रः- ननान्दुः पत्या ऋष्यश्रृङ्ग्येण च देव्याः सन्दिष्टम्- 'वत्से, कठोरगर्भा इति न आनीता असि। वत्सः अपि रामभद्रः त्वद्विनोदार्थम् एव स्थापितः। तत् पुत्रपूर्णोत्सङ्गाम् आयुष्मतीं द्रक्ष्यामः इति।

रामः- (सहर्षलज्जास्मितम्) तथा अस्तु। भगवता वसिष्ठेन न किञ्चिद् आदिष्टः अस्मि।

अन्वयार्थः-

रामः- अनुगृहीताः स्मः- कृतार्थ होता हूँ। हि- क्योंकि, लौकिकानाम्- सामान्यजनों, साधुनाम्- सज्जनों की, वाक्- वाणी, अर्थ- वस्तु, अनुवर्तते- अनुसरण करती है। पुनः- परन्तु, आद्यानाम् - वेद प्रधान, ऋषिणाम् - वशिष्ठादि ऋषियों की, वाचम्- वाणी, अर्थम्- वस्तु, अनुधावति- अनुसरण करती है।

अष्टावक्रः- इदम् च- और यह, भगवत्या- देवी, अरून्धत्या- अरून्धती ने देवीभिः- कौशल्या कैकेयी सुमित्रा रानीयों ने, शान्तया- श्रीराम की बहिन शान्ता ने, भूयः भूयः-बार-बार, सन्दिष्टम्- सन्देश दिया, यः कश्चित्- जो कोई भी, अस्याः- सीता की, गर्भदाहेदः- इच्छा, भवति- होती है, सः अश्वयम्- वह निश्चित ही, अचिरात्- अतिशीघ्र या बिना विलम्ब के, सम्पादयितव्य- पूर्ण की जानी चाहिए।

रामः- एषा- सीता, यत्- जो, कथयति- कहती है, तथा- वैसा ही, क्रियते- मेरा द्वारा सम्पादित की जाती है।

अष्टावक्रः- ननान्दुः- ननद या बहिन का, पत्या- स्वामी द्वारा, ऋष्टश्रृंगेण- ऋष्यश्रृंग के द्वारा, देव्याः-देवी सीता के प्रति, सान्दिष्टम्- संदेश कहा है वत्से- कल्याणि, कठोर गर्भा- पूर्णगर्भ वाली हो, अतः न आनीता- नहीं बुलाया गया। वत्सः- पुत्र, अपि रामचन्द्रः- राम चन्द्र भी, त्वद्विनोदार्थम्- तुम्हारे विनोद के लिए, एव स्थापितः- वहाँ पर स्थित रहे। तत्- उस कारण, पुत्र पूर्णोत्संगाम्- पुत्र से भरी गोद वाली, आयुष्मतीम्- सौभाग्यवती तुम को, द्रक्ष्यामः- देखेंगे।

रामः- (सहर्ष लज्जास्मितम्- हर्ष और लज्जा से साथ हंसते हुए) तथा- उसी प्रकार, अस्तु- होवे। भगवता- भगवान कुलगुरू, वशिष्ठेन- वशिष्ठ के द्वारा, न किञ्चित्- कुछ भी नहीं, कर्तुम्- करने के लिए, आदिष्टः- आदेश दिया।

व्याख्याः- सीता वीरपुत्र की जननी होगी ऐसे महर्षि वसिष्ठ के आशीर्वाद को सुनकर राम अपने आपको अनुगृहीत मानते हैं। वे तब महर्षियों की उत्कृष्टता का वर्णन करते हैं। लौकिक सामान्य जन अथवा साधु जो होता है वही सब वर्णन करते हैं अर्थात् प्रत्यक्षीकृत विषय का वर्णन किया जाता है, न कि किसी अप्रत्यक्ष का। किन्तु प्राचीन महर्षि विपरीत ही आचरण करते है। वे जो कहते है वह सब कुछ

ही आने वाले समय में होगा। इससे उनकी दूरदर्शिता ज्ञात होती है। अतः महर्षि वशिष्ठ ने सीता को वीर पुत्र का जन्म होगा, ऐसा कहा है तो वह अवश्य ही भविष्य में संभव होगा। यह श्रीराम का आशय है।

उसके बाद अष्टावक्र वसिष्ठ पत्नी अरुन्धती, राम की बहिन शान्ता और माताएँ कौशल्य कैकेयी व सुमित्रा सभी द्वारा प्रदत्त राम के प्रति सन्देश का वर्णन करता है। इस समय सीता गर्भवती है। अतः इस अवस्था में उसकी सर्वविध अभिलाषा अर्थात् इच्छाओं को राम द्वारा शीघ्र पालन किया जाना चाहिए। राम प्रसन्ता के साथ उनके आदेश को स्वीकार करते हैं।

महर्षि ऋष्यशृंग अष्टावक्र के मुख से यज्ञस्थल के प्रति सीता क्यों नहीं लाई गयी इसे सूचित करते हैं। वह कहता है कि सीता इस समय गर्भवती है। अतः इनके आगमन में कष्ट होगा, ऐसा विचार करके नहीं बुलवाई गयी। वत्स श्रीराचन्द्र भी सीता के मनोरंजन के लिए ही अयोध्या में रहे और ऋष्यशृंग पुत्र के साथ सौभाग्यवती सीता को देखने के लिए आयेंगे। ऐसा ऋष्यशृंग मुनि का आश्वासन है। राम वह सब कुछ सुनकर वसिष्ठ द्वारा उनके प्रति उपदेश दिया या नहीं, ऐसा पूछते हैं।

विशेष्ट टिप्पणी:- यहाँ लौकिकानाम श्लोक में ऋषिश्रेय का विस्तार रूप से कथावस्तु के बीजगुण का वर्णन होने से 'विलोभन' नामक सन्धि का अंग है। उसका लक्षण-''बीज गुणवर्णनं विलोभनम्''

व्याकरण विमर्शः-

लौकिकानाम्- लोके भवा लौकिकाः। अत्र लोकात् ठञ्प्रत्ययः। लौकिकशब्दस्य षष्ठीबहुवचने लौकिकानामिति रूपम्।

आद्यानाम्- आदौ भवाः आद्याः। आदिशब्दाद् यत्प्रत्यये आद्यशब्दो निष्पन्नः। तस्य षष्ठीबहुवचने आद्यानाम् इति रूपम्।

ऋषीणाम्- ऋष गताविति धातुः। ऋष्धातोः ''सर्वधातुभ्य इन्'' इति सूत्रेण इन्प्रत्यये, ''इगुपधात् कित्'' इति सूत्रेण किति च ऋषिशब्दो निष्पन्नः। तस्यैव षष्ठीबहुवचने ऋषीणामिति रूपम्।

सन्दिष्टम्- सम्-पूर्वकात् दिशधातोः क्तप्रत्यये नपुंसके सन्दिष्टम् इति रूपम्।

कठोरगर्भा-कठोरः गर्भः यस्याः सा कठोरगर्भा इति बहुव्रीहिसमासः।

पुत्रपूर्णोत्सङ्गा इति बहुव्रीहिसमासः, ताम्।

छन्दः- लौकिकानाम् इस श्लोक मे अनुष्टुप छन्द हैं।

अलंकार विमर्शः- लौकिकों व साधुओं की अपेक्षा आद्य ऋषियों के वचनों की अधिकता का कथन करने से व्यतिरेक अलंकार है -उसका लक्षण साहित्यदर्पण में -

''आधिक्यमुपयेयस्योपमाना न्यूनताऽयवा। व्यतिरेकः''

टिप्पणी

पाठगत प्रश्न 13.4

15. किन की वाणी का अर्थ अनुसरण करता है?
16. किनके अर्थ का वाणी अनुसरण करती है?
17. अरुन्धती राम की माताएँ और शान्ता ने राम के प्रति क्या आदेश दिया?
18. सीता कहा से यज्ञ के प्रति नहीं आयी?
19. राम क्यों अयोध्या में रहें?
20. ऋष्यशृंग सीता को कैसा देखना चाहते है?

13.6 मूलपाठ

अष्टावक्र : - श्रूयताम्।

जामातृयज्ञेन वयं निरुद्धा स्त्वं बाल एवासि नवं च राज्यम्।
युक्तः प्रजानामनुरञ्जने स्यास्तस्माद्यशो यत्परमं धनं वः॥11॥

रामः- यथा समादिशति भगवान्मैत्रावरुणिः।

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥12॥

सीता- **अदो जेव्व राहवधुरन्धरो अज्जउत्तो। (अत एव राघवधुरन्धर आर्यपुत्रः।)**

रामः- **कः कोऽत्र भोः। विश्राम्यतामष्टावक्र।**

अष्टावक्रः - **(उत्थाय परिक्रम्य च) अये कुमारलक्ष्मणः प्राप्तः।**

(इति निष्क्रान्तः)

अन्वयः-

अष्टावक्रः- श्रूयताम्। वयं जामातृयज्ञेन निरुद्धाः त्वं बाल एव असि च राज्यं नवम् (अत एव) प्रजानाम् अनुरञ्जते युद्धः स्याः तस्मात् यशः वः परमं धनम् (अस्ति)॥11॥

रामः- भगवान् मैत्रावरुणिः यथा समादिशति।
लोकस्य आराधनाय स्नेहं दयां सौख्यं च यदि वा जानकीम् अपि मुञ्चतो मे व्यथा न अस्ति॥12॥

सीता- अत एव आर्यपुत्रः राघवधुरन्धरः।

रामः- कः कः अत्र भोः। अष्टावक्रः विश्राम्यताम्।

अष्टावक्रः- (उत्थाय परिक्रम्य च) अये कुमारलक्ष्मणः प्राप्तः।

(इति निष्क्रान्तः)

अन्वयार्थ-

अष्टावक्रः- श्रूयताम् - सुनो। वयम्- हम सब को वसिष्ठादि, जामातृ यज्ञेन- ऋष्यश्रृंग के बारहवर्षीय यज्ञ ने, निरूद्धाः- रोका था। त्वं- तुम, राम, बालः- कुमारः, राज्यशासन में अप्रौढ हो। राज्य नवम्- राज्य नवीन है। अतः प्रजानाम्- लोगो का, अनुरंजने- अनुराग उत्पादन में, युक्तः स्याः- तत्पर होंवे। तस्मात्- अनुराग उत्पादन के कारण से, यषः- कीर्ति होगी, यद्-जो, यशः- यश, वः- हमारा, सर्वोत्कृष्टं धनम्- सर्वोत्कृष्टं सम्पत्ति होगी।

रामः- भगवान्- षडैश्वर्यसम्पन्न, मैत्रावरुणिः- महर्षि वशिष्ठ, यथा समादिशति- जैसे आज्ञा देते है, तथैव करिष्यामि- वैसे ही करूंगा। लोकस्य- लोगों के, आराधनाय- अराधना के लिए, स्नेहम्- अनुराग को, दयाम्- करूणा को, सौख्यम्- सुख को, च- और, यदि वा- अथवा, जानकीम् अपि-सीता को भी, मुंचतः- त्यागा तो, मे- मेरी, व्यधा- दुःख, न अस्ति- नहीं होता।

सीताः- अतएव -इस कारण से, आर्यपु=ः- मेरे स्वामी, राधवधुरन्धारः- रघुकुल शिरोमणि है।

रामः- कः कः अत्रभो-यहाँ कौन है। अष्टावक्रः विश्राभ्यतां- अष्टावक्र के विश्राम प्रबंधन का सम्पादन करो।

अष्टावक्रः- (उत्थाय परिक्रम्य च- उठकर और परिक्रमा करके)। अये- अरे, कुमार लक्ष्मणः **प्राप्तः**- कुमार लक्ष्मण आ गया।

(एव मुक्त्वा निर्गतः-ऐसा कहकर निकल गया)

व्याख्याः- यहाँ वसिष्ठ राम के लिए राज्य शासन विषयक उपदेश देते हैं। ऋष्यश्रृंग के यज्ञ को उपलक्ष्य करके राज्य के सभी प्रौढ़ जन और स्वयं कुलगुरू वशिष्ठ वहाँ उपस्थित थे। अतः यज्ञ से उनके आने में विलम्ब होगा और अभी राज्याभिषेक हुआ है। अतः राज्य शासन के विषय में वह राम अभी अनभिज्ञ है। रघुवंशीय राजाओं को यश ही परम अभीष्ट हैं। अतः कीर्ति प्राप्त करने के लिए निरन्तर प्रजाजनों के मन को प्रसन्न करने में तत्पर रहना चाहिए। प्रजा राजा में सन्तुष्ट हो, इस विषय में ध्यान देना चाहिए। इसी से राम यथार्थ प्रजापालक राजा हो सकते हैं, यह वशिष्ठ का अभिप्राय है। भविष्यकाल में प्रजा में अनुराग उत्पन्न करने के लिए राम के द्वारा सीता का परित्याग किया जायेगा। इस घटना का निर्देश भी यहाँ प्राप्त होता है।

राम ने, वशिष्ठ द्वारा दिये गये आदेशों की, पालना करने की प्रतिज्ञा की। प्रजापालन के लिए

टिप्पणी

वह सब कुछ करने में समर्थ है। उसके लिए वह स्नेह, दया, मित्र सब कुछ परित्याग करने के लिए प्रस्तुत है और भी प्रजा क आराधना के लिए यदि धर्मपत्नी जानकी सीता का भी त्याग करना हो तो भी किंचित दु:ख नहीं होगा। इस प्रकार श्रीराम की प्रजावात्सल्य और गुरुवचन में श्रद्धा भी प्रकाशित होती है और भविष्यकाल में प्रजा के लिए सीता का परित्याग परिलक्षित होता है।

प्रजापालन के विषय में राम की प्रतिज्ञा को सुनकर सीता अपने पति राम की प्रशंसा करती हुए कहती है कि इस कारण ही श्रीराम रघुकुल श्रेष्ठ है। उसके बाद राम ने अष्टावक्र की विश्राम व्यवस्था करने का आदेश दिया। तदनन्तर भगवान् अष्टावक्र विश्राम के लिए उठकर वहाँ परिक्रमा करते हैं। उसी समय वहां लक्ष्मण उपस्थित होते हैं। उसको देखकर अष्टावक्र कुमार लक्ष्मण आ गये ऐसा कहकर चले गये।

विशेष टिप्पणी:- यहाँ जामातृयज्ञेन इस श्लोक में प्रजा के अनुरंजन से प्राप्त यश परम धन है इसके लिए सीतानिर्वासन रूप 'बीजमुक्त' नामक संधि अंग है -जिसका लक्षण-'

'अल्पमात्रं समुद्दिष्टं बहुधा यद्विसर्पति।
फलस्य प्रथमों हतु बीजं तदाभिधीयते॥''

व्याकरण विमर्शः-

- **जामातृयज्ञेन**-जामातुः यज्ञः जामातृयज्ञः इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः, तेन जामातृयज्ञेन।
- **अनुरञ्जने**- अनुपूर्वकात् रञ्ज्धातोः ल्युटि सप्तम्येकवचने अनुरञ्जने इति रूपम्।
- **सौख्याम्**-सुखस्य भावः इत्यर्थे ष्यञ्प्रत्यये सौख्यम् इति रूपम्।
- **मुंचतः**- मुच्-धातोः शतरि षष्ठयेकवचने मुंचतः इति रूपम्।
- **मैत्रावरुणिः**- मित्रश्च वरुणश्च मित्रावरुणौ इति इतरेतरद्वन्द्वसमासः। मित्रावरुणयोः अपत्यं पुमान् इति विग्रहे ''बाह्वादिभ्यश्च'' इति इञ्प्रत्यये मैत्रावरुणिः इति रूपम्।

(1) **जामातृयज्ञेन**-श्लोक में इन्द्रवज्रा छन्द है, जिसका लक्षण है-
स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः।

(2) **स्नेहामिति**-श्लोक में अनुष्टुप छन्द है।

पाठगत प्रश्न 13.5

21. वसिष्ठादि किस कारण से रूके हुए है?
22. रघुवंशीयों का परम धन क्या है?
23. 'जामातृ यज्ञेन' इस श्लोक में कौनसा छन्द है, लक्षण लिखिए?
24. 'मैत्रावरूणि' रूप सिद्ध कीजिए?

टिप्पणी

25. लोक की आराधना के लिए राम क्या-क्या त्यागने को प्रस्तुत हैं?

26. राजा का प्रधान धर्म क्या है?

13.7 मूलपाठ

(प्रविश्य)

लक्ष्मणः- जयति जयत्यार्यः। आर्य! अर्जुनेन चित्रकरेणास्मदुपदिष्टमार्यस्य चरितमस्यां वीथ्यामभिलिखतम्। तत्पश्यत्वार्यः।

रामः- जानासि वत्स! दुर्मनायमानां देवीं विनोदयितुम्। तत्कियन्तमवधिं यावत्।

लक्ष्मणः- यावदार्याया हुताशनशुद्धिः।

रामः- **शान्तं पापम् (ससान्त्ववचनम्।)**
उत्पत्तिपरिपूतायाः किमस्याः पावनान्तरैः।
तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः॥13॥
देवि देवयजनसम्भवे! प्रसीद। एष ते जीवितावधिः प्रवादः।
क्लिष्टो जनः किल जनैरनुरञ्जनीयस्तन्नो यदुक्तमशुभं च न तत्क्षमं ते।
नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि॥14॥

अन्वयः- (प्रविश्य)

लक्ष्मणः- आर्यः जयति जयति। आर्य! अर्जुनेन चित्रकरेण अस्मदुपदिष्टम् आर्यस्य चरितम् अस्यां वीथ्याम् अभिलिखितम्। तत् आर्यः पश्चतु।

रामः- वत्स! दुर्मनायमानां देवीं विनोदयितुं जानासि। तत् कियन्तम् अवधिं यावत्।

लक्ष्मणः- आर्याया हुताशनशुद्धिः यावत्।

रामः- शान्तं पापम् (ससान्त्ववचनम्।) उत्पत्तिपरिपूतायाः अस्याः पावनान्तरैः किम्। तीर्थोदकं च वह्निश्च अन्यतः न शुद्धिम् अर्हतः॥13॥

देवयजनसम्भवे देवि, प्रसीद। एष प्रवादः ते जीवितावधिः।

क्लिष्टः जनः जनैः अनुरञ्जनीयः किल, तत् ते नः यद् अशुभम् उक्तं तत् न क्षमम्। सुरभिणः कुसुमस्य मूर्ध्नि स्थितिः नैसर्गिकी सिद्धा, चरणैः अवताडनानि न ॥14॥

अन्वयार्थः- (प्रविश्य- प्रवेश करके)

लक्ष्मणः- आर्यः जयति जयति- महाराज आप की सदा विजय हो। आर्य- महाराज!

टिप्पणी

अर्जुनेनचि=करेण- अर्जुन नामक चित्रकार द्वारा, अस्मदृपदिष्टम्- हमारे द्वारा उपवर्णित को, आर्यस्य श्रीरामस्य- आर्यश्रीराम के, चरितम्- चरित्र को, अस्याम् वीश्याम्- इस चित्रमयीश्रेणी को, अभिलिखितम्- अंकित किया है। तत्- उस चित्र को, आर्य- श्रीराम, पश्यन्तु- देखें।

रामः- वत्स- प्रिय लक्ष्मण। दुर्मनायमानाम् देवीम्- दुःखित मानसवाली सीता को, विनोदयितुम्- सन्तुष्ट करने के लिए, जानसि- समर्थ हो। तत्- वह चित्रवीथि, कियन्तम् अवधिम् यावत्- कितनी अवधि तक का है अर्थात् इसमें कहां तक के चरित्र का वर्णन है।

लक्ष्मणः- आर्यायाः- सीता की, हुताशन शुद्धिः- अग्निशुद्धि या अग्नि परीक्षा तक की कथा है।

रामः- शान्तम् पापम्- आपके द्वारा पुनः ऐसा नहीं कहना चाहिए। (ससान्त्वचनम्- अत्यन्त मधुर वचन के साथ) उत्पत्ति परिपूतायाः- जन्म से ही अयोनिज होने के कारण पवित्र, अस्याः- इस देवी सीता का, पावनान्तरैः -अग्नि आदि पवित्रता के साधनों से, किम्-क्या प्रयोजनम्-प्रयोजन है। तीर्थोदकम्- तीर्थ का जल गंगा जल, वह्निश्च- और अग्नि, अन्यतः- अन्यसाधन से, शुद्धिम्- पवित्रता के, न अर्हतः- सम्पादन करने के योग्य नहीं हैं। देवयजन सम्भवते- देव यज्ञ से उत्पन्न, देवि- भगवती, सीता, प्रसीद- प्रसन्न होंवे। एषः-यह, ते- तुम्हारे, जीवितावधिः- आजीवन, प्रवादः- लोकापवाद है।

क्लिष्टः- दुःखित, जनः- लोग, जनैः- अन्यलोगों के द्वारा, अनुरंजनीयः- आराधना करनी चाहिए, किल- निश्चय से। तत्- उस कारण से, ते- तुम्हारे, नः- हमारे, विषये- विषय में, **यत्**- जो, अशुभम्- अमंगल, तत् कथनम्- वह कथन, न क्षमम्- उचित नहीं है। सुरभिणः- सुगन्धित, कुसुमस्य- पुष्प को, मूर्ध्निः- मस्तक पर, स्थितिः- स्थित होंवे। नैसर्गिकी- स्वाभाविक, सिद्धा- लोक में प्रसिद्ध है परन्तु, चरणैः- पैरों में, अवताडनानि- पैरों से कुचलना या प्रहार करना, न नैसर्गिकाणि- वह स्वाभाविक सिद्ध नहीं है।

व्याख्याः- लक्ष्मण आकर राम की विजयप्रशस्ति कह कर उनसे निवेदन करते हैं कि जैसा आदेश था वैसा राम के जीवन के वृतान्त का चित्रांकन अर्जुन नामक चित्रकार के द्वारा सम्पन्न किया गया। अतः आप राम इस चित्र को देखें, ऐसा लक्ष्मण राम से प्रार्थना करते हैं। उसके बाद राम लक्ष्मण को कहते हैं कि सीता पिता के विरह में खिन्नचित है इसलिए दुखित उस सीता के विनोद करने में तुम समर्थ हो। उसके बाद वे लक्ष्मण से पूछते हैं कि इस चित्र में कहाँ तक चित्र वर्णित है। तब लक्ष्मण उत्तर देते हैं कि देवी सीता की अग्नि परीक्षा तक के चित्र इसमें व्याप्त हैं। लक्ष्मण के वचन को सुनकर अप्रसन्न राम सुमधुर भाषा में बोलते हैं कि इस प्रकार के वाक्य नहीं कहना चाहिए।

आजन्म शुद्ध सीता की शुद्धता की परीक्षा के लिए अन्य किसी द्रव्य का कोई प्रयोजन नहीं है। जैसे तीर्थ के जल और अग्नि दोनों या अन्य द्रव्यों से शुद्धिकरण का प्रयोजन नहीं होता है। उन

दोनों से शुरू होने का कारण वैसे ही आजन्मशुद्ध सीता को अग्नि से शुद्धि की अपेक्षा नहीं है। स्वतः शुद्ध होने के कारण अन्य से शुद्धि सम्पादन की आवश्यकता नहीं है।

उसके बाद सीता के प्रति राम कहते हैं कि आप प्रसन्न हो, यह लोकापवाद उसके आजीवन ही है। उसके बाद राम कहते हैं कि ये लोग अपने रघुकुल की रक्षा करते हैं। उनसे दु:खित जन तिरस्कार करने योग्य नहीं है अपितु अवश्य अनुरंजन योग्य है। अतः दुःखत सीता के लिए जो अशुभ वाक्य प्रयुक्त हुए, उन्हें प्रयुक्त नहीं किया जाना चाहिए।

प्रसंग को स्पष्ट करने के लिए दृष्टान्त देते हैं। सुगन्धित पुष्पों को पैरों से मर्दन नहीं करना चाहिए। क्योंकि उनको मस्तक पर धारण करना स्वभाविक होता है।

व्याकरण विमर्शः-

दुर्मनायमानाम्-दु:स्थितं मनः यस्याः सा दुर्मनाः इति बहुव्रीहिसमासः। अदुर्मनाः दुर्मनाः भवति इत्यर्थे क्यङ्प्रत्यये निष्पन्नाद् दुर्मनायधातोः शानच्प्रत्यये टापि दुर्मनायमाना इति भवति। ततः द्वितीयैकवचने दुर्मनायमानाम् इति रूपम्।

उत्पत्तिपरिपूतायाः- उत्पत्त्या परिपूता उत्पत्तिपरिपूता इति तृतीयातत्पुरुषसमासः, तस्याः उत्पत्तिपरिपूतायाः।

पावनान्तरैः- पावयन्ति इति पावनानि। अन्यानि पावनानि पावनान्तराणि तैः इति पावनान्तरैः इति मयूरव्यंसकादिवत्समासः।

तीर्थोदकम्-तीर्थस्य उदकं तीर्थोदकम् इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः।

अनुरंजनीयः- अनुपूर्वकात् रञ्ज्धातोः णिच्प्रत्यये अनीयर्प्रत्यये च अनुरंजनीय इति रूपम्।

नैसर्गिकी- निसर्गाद् आगता इत्यर्थे निसर्गशब्दात् ठकि डीपि नैसर्गिकीशब्दो निष्पद्यते।

स्थितिः- स्थाधातोः क्तिन्प्रत्यये स्थितिशब्दो निष्पद्यते।

छन्दः- (1) उत्पत्ति परिपूतायाः - श्लोक में अनुष्टुप छन्द है।

(2) **क्लिष्टा जनः** - श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है।

अलंकार विमर्शः-

(1) **उत्पत्तिपरिपूतायाः**- इस श्लोक में तीर्थोदकम् एवं आग्नि के दृष्टान्त से सीता की पवित्रता समर्थन होने के कारण दृष्टान्त अलंकार है। उसका लक्षण है- **''दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम्''**

(2) **क्लिष्टो जनः**- में भी दृष्टान्त अलंकार है।

पाठगत प्रश्न 13.6

टिप्पणी

27. चित्रकार का क्या नाम है?

28. रामचरित का चित्रांकन कहाँ तक है?

29. क्या-क्या स्वतः पवित्र होता है?

30. सीता का किससे प्रयोजन नहीं है?

31. दुःखित जन के प्रति क्या कर्तव्य है?

32. कुसुम की क्या स्वाभाविकता है?

पाठसार

भूमिसुता वैदेही रामपत्नी सीता बैठी थीं। राम सीता को सान्त्वना देने के लिए प्रवेश करते हैं। उसी समय ऋष्यश्रृंग मुनि के आश्रम से वसिष्ठादि के संवाद को स्वीकार करके भगवान् अष्टावक्र आये। वह वसिष्ठादि के संदेश को सुनाते हुए कहते हैं कि महर्षि वसिष्ठादि ने सीता के लिए आशीर्वाद प्रदान किया- वह वीर प्रसवा हो। वसिष्ठ पत्नी अरुन्धती, राम की माताएँ कौशल्या कैकेयी सुमित्रा और बहन शान्ता ने राम के प्रति कहा- कि सीता गर्भवती है। अतः इस समय राम के द्वारा उसकी सभी अभिलाषाओं को शीघ्र पूरी की जाये। महर्षि ऋष्यश्रृंग ने कहा कि पूर्णगर्भ होने के कारण सीता यज्ञ स्थल पर आने में असमर्थ है। अतः वे उसको सपुत्र देखने के लिए अयोध्या में आयेंगे। कुलगुरु वसिष्ठ ने राम को आदेश दिया कि प्रजा जैसे सुखी हो वैसे ही राज्य का पालन करना चाहिए, क्योंकि उससे ही रघुवंशियों को अभीष्ट यश की प्राप्ति होती है। आदेश को सुनकर राम कहते हैं कि प्रजा के सुख के लिए वह स्नेही, दया, मित्र और धर्मपत्नी सीता का भी परित्याग करने के लिए तैयार है। इस प्रकार श्रीराम वचन से भविष्यकाल में सीता को परित्याग करेंगे यह सूचित होता है। इसके बाद कुमार लक्ष्मण प्रवेश करते हैं, महर्षि अष्टावक्र विश्राम करने जाते हैं। लक्ष्मण कहते हैं कि जैसा आदेश दिया था वैसा ही रामचरितात्मक चित्रपट को अंकित करके चित्रकार अर्जुन आया है। उसके बाद राम लक्ष्मण से पूछते हैं कि इस चित्रपट में कहां तक का चित्रण किया गया है। तब लक्ष्मण कहते हैं कि सीता की अग्नि शुद्धि पर्यन्त तक का चित्रण है। उसके बाद राम सीता की आजन्म शुद्धता का वर्णन करते हैं। जैसे तीर्थ का जल और अग्नि स्वतः पवित्र है उसी प्रकार सीता भी स्वतः पवित्र है। अतः राम सीता को कहते हैं, दुःखी मत हो। जो दुःखी व्यक्ति होता है, उसके दुःख को दूर करना उचित है। अतः सीता के प्रति लक्ष्मण का वचन उचित नहीं है। क्योंकि पुष्प की स्वभाविक अवस्था सिर पर होती है न कि पैरो में। इस प्रकार पाठ समाप्त होता है।

आपने क्या सीखा

- राम के गुणों को जाना।
- सीता के चरित्र को जाना।
- छन्द एवं उनके लक्षणों को जाना।

पाठन्त प्रश्न 13.6

(1) किन्त्वनुष्ठाननित्यत्वम् - इस श्लोक की व्याख्या कीजिए।

(2) गुरुजन द्वारा राम के प्रति उपदेश को लिखिए।

(3) विश्वम्भरा - श्लोक की व्याख्या कीजिए।

(4) लौकिकानाम् साधुनाम्- श्लोक की व्याख्या करो तथा ऋषियों के भेद बताओ।

(5) सीता की आजन्मपवित्रता के विषय में श्रीराम ने क्या कहा।

(6) जामातृयज्ञेन-इस श्लोक की व्याख्या कीजिए।

(7) स्नेहं दयां च सौख्यम् इस श्लोक की व्याख्या कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

13.1

(1) अनुष्ठान नित्यता के कारण गृहस्थों की स्वतंत्रता नियन्त्रित होती है।

(2) किन्तु +अनुष्ठाननित्यत्वम्।

(3) कर्म तीन प्रकार के होते हैं- नित्य, नैमित्तिक और काम्य

(4) आहिताग्नियों की गृहस्थता विपरीत ही संकटकारी होती है।

(5) बन्धुजन वियोग सन्तापकारी होता है।

(6) संसार भाव हृदयमर्म का छेदक होता है।

(7) हृदयमर्म के छेदन से, संसार भाव से विरक्त मनीषी सभी कामों को त्याग करके अरण्य में विश्राम करते हैं।

13.2

(8) पिता के परिजन का रामभद्र व्यवहार करना शोभित है।

टिप्पणी

(9) ऋष्यशृंग मुनि के आश्रम से अष्टावक्र आये।

(10) कंचुकी राम को रामभद्र सम्बोधन करता है।

13.3

(11) सीता की माता विश्वभरा पृथ्वी हैं।

(12) सीता के पिता प्रजापति के समान जनक थे।

(13) जिस वंश में सूर्य वंश प्रवर्तक और वशिष्ठादि आचार्य हैं, उसके वंश की सीता कुलवधु है।

(14) सीता के प्रति वशिष्ठ का 'वीर प्रसवा: भूया:' यह आशीर्वाद है।

13.4

(15) प्राचीन ऋषियों की वाणी अर्थ का अनुसरण करती है।

(16) लौकिक साधुओं के अर्थ का वाणी अनुसरण करती है।

(17) अरुन्धती, राम की माताओं और बहन शांता का राम के प्रति आदेश यह है कि इस समय सीता पूर्ण गर्भ है अत: उसकी सभी इच्छाएँ शीघ्र पूर्ण करनी चाहिए।

(18) सीता गर्भवती है अत: यज्ञ में नहीं आयी।

(19) राम सीता के मनोविनोद के लिए अयोध्या में रहे।

(20) ऋष्यशृंग सीता की गोद पुत्र सहित देखना चाहते हैं।

13.5

(21) वसिष्ठादि जामाता ऋष्यशृंग के यज्ञ के कारण रूके हुए हैं।

(22) रघुवंशीय राजाओं को प्रजा में अनुरंजन के कारण प्राप्त यश परम धर्म है।

(23) जामातृयज्ञेन श्लोक में इन्द्रवज्रा छन्द है, उसका लक्षण -

''स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ ग:''

(24) मित्रश्च अरूणश्च मित्रावरुणौ इतरेतरद्वन्द्व समास तया: अपत्यम् पुमान् इस विग्रह में ''बाह्मदिभ्यश्चं'' से इञ्प्रत्यय होकर मैत्रावरुणि: रुप बना।

(25) लोक की आराधना के लिए राम स्नेह, दया मित्र और जानकी सीता को भी त्यागने को तत्पर है।

(26) राजा का प्रधान धर्म प्रजा की आराधना है।

टिप्पणी

13.6

(27) चित्रकार का नाम अर्जुन था।

(28) रामचरित में सीता की अग्निशुद्धि तक वीथि में अंकित है।

(29) तीर्थ का जल और अग्नि स्वतः पवित्र है।

(30) सीता की पवित्र के लिए अन्य प्रयोजन नहीं है।

(31) दुःखीजन संबंधियों द्वारा दुःख को दूर करके प्रसन्न करने योग्य होते है।

(32) पुष्प की स्वाभाविक स्थिति सिर पर होती है।

14

उत्तररामचरित-चित्र दर्शन-1

इस पाठ में चित्र दर्शन को आरम्भ करते हैं। श्रीराम लक्ष्मण के साथ चित्र को लेकर सीता के पास गये। वहाँ जाकर राम सीता के संतोष के लिए लोकापवाद विषय में निन्दा करते हैं। उसके बाद वे चित्र को देखना प्रारम्भ करते हैं। ताड़का राक्षसी के निधन वृतान्त से वे चित्र अंकित हैं। वे चित्रवृत्त को क्रम से देखते हैं। चित्र के विषय में अपने मत को प्रकाशित करते हैं। वहाँ मिथिलावृतान्त, उनके विवाह, विवाह के बाद अयोध्या आगमन, उनका तत्कालीन जीवन चित्र के माध्यम से सम्यक् प्रकाशित होता है। इस चित्र दर्शन के प्रसंग में कवि सीता के मुख से श्रीराम का और श्रीराम के मुख से सीता का वर्णन होता है। इस प्रकार चित्र दर्शन से कवि सम्पूर्ण रामायण को वृतान्त को स्मरण कराने की चेष्टा करता है। इस पाठ में हम उसके चित्र दर्शन के कुछ भाग पढ़ते हैं।

उद्देश्यः-

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- राम और सीता के शरीरिक सौन्दर्यादि को जान पाने में;
- चित्र दर्शन के माध्यम से सम्पूर्ण रामायण के घटनाक्रम को जान पाने में;
- छन्दों के लक्षण जान पाने में;
- श्लोकों के अन्वय और प्रतिपदार्थ को समझ पाने में और;
- दीर्घ पदों का विग्रह एवं समास को जान पाने में।

14.1 सम्पूर्ण मूलपाठ-

सीता- होदु अज्जौत्त होदु। एहि। पेक्खह्म दाव दे चरिदम्। (भवत्वार्यपुत्र भवतु। एहि। प्रेक्षामहे तावत्ते चरितम्।)

(इत्युत्थाय परिक्रामति)

लक्ष्मण- इदं तदालेख्यम्।

सीता- (निर्वर्ण्य) के एदे उवरिणिरन्तरदा उवत्थुवन्दि विअ अज्जउत्तम-(के एते उपरि निरन्तरस्थिता उपस्तुवन्तीवार्यपुत्रम्।)

लक्ष्मण- देवी! एतानि तानि सरहस्यानि जृम्भकास्त्राणि यानि भगवत: कृशश्वात्कौशिकमृषिमुसंक्रान्तानि। तेन ताटकावधे प्रसादीकृतान्यार्यस्य।

राम- वन्दस्व देवि, दिव्यास्त्राणि।

ब्रह्मादयो ब्रह्महिताय तप्त्वा पर: सहस्रं शरदां तपांसि।
एतान्यदर्शन्गुरव: पुराणा: स्वान्येव तेजांसि तपोमयानि॥15॥

सीता- णमो एदारणम्। (नम एतेभ्य:)

राम- सर्वथेदानीं त्वत्प्रसूतिमुपस्थास्यन्ति।

सीता- अणुगहीदाह्मि। (अनुगृहीतास्मि।)

लक्ष्मण- एष मिथिलावृत्तन्त:।

सीता- अम्महे, दलन्तणवणीलुप्पलसिणिद्धमसिणसोहमाणमसलेन देहसोहग्गेण विह्यअत्थिमिदताददीसन्तसोम्मसुन्दरसिरौ। अणादरखंडिदसङ्करसरासणो सिहण्डमुद्धमुहमुण्डलो अज्जउत्तो आलिहिदो। (अहो, दलन्नवनीलोत्पलश्यामलस्निग्ध मसृणशोभमानमसलेन देहसौभाग्येन विस्मयस्तिमिततातदृश्यमानसौम्यसुन्दर श्रीरनादरत्रुटितशंकरशरासन:शिखण्ड मुग्धमुखमण्डल आर्यपुत्र आलिखित:।)

लक्ष्मण- आर्ये! पश्य पश्य।

सम्बन्धिनो वसिष्ठादीनेष तातस्तवार्चति।
गौतमश्च शतानन्दो जनकानां पुरोहित:॥16॥

राम- सुश्लिष्टमेतत्।

जनकानां रघूणां च सम्बन्ध: कस्य न प्रिय:।
यत्र दाता ग्रहीता च स्वयं कुशिकनन्दन: ॥17॥

टिप्पणी

सीता- एदे क्खु तक्कालकिदगोदाणमङ्गला चत्तरो भादरो विआहादिक्खिदा तुझे। अह्यो। जाणामि तस्सि जेव्व काले वत्तामि। (एते खलु तत्कालकृतगोदानमङ्गलाश्चत्वारो भ्रातरो विवाहदीक्षिता यूयम्। अहो! जानामि तस्मिन्नेव काले वर्ते।)

राम- एवम्

समयः स वर्तत इवैष यत्र मां समनन्दयत्सुमुखि! गौतमार्पितः।
अयमागृहीतकमनीयकङ्कणस्तव मूर्तिमानिव महोत्सवः करः ॥18॥

लक्ष्मण- इयमार्या। इयमप्यार्या माण्डवी। इयमपि वधूः श्रुतकीर्तिः।

सीता- वच्छ, इयं वि अवरा का। (वत्स इयमप्यपरा का।)

लक्ष्मण- (सलज्जास्मितम्। अपवार्य) अये, ऊमिलां पृच्छत्यार्या। भवतु। अन्यतः सञ्चारयामि। (प्रकाशम्)। आर्ये! दृश्यतां द्रष्टव्यमेतत्। अयं च भगवान्भार्गवः।

सीता- (ससंभ्रमम्) कम्पितास्मि। (कम्पिदह्मि)

राम- ऋषे! नमस्ते।

लक्ष्मण- आर्ये! पश्य। अयमार्येण-------(इत्यर्धोक्ते।)

राम- (साक्षेपम्) अयि! बहुतरं द्रष्टव्यम्। अन्यतो दर्शय।

सीता- (सस्नेहबहुमानं निर्वर्ण्य।) सुटु सोहसि अज्जउत्त एदिणा विणअमाहप्पेण। (सुष्ठु शोभसे आर्यपुत्र! एतेन विनयमाहात्म्येन।)

लक्ष्मण- एते वयमयोध्यां प्राप्ताः।

राम- (साश्रुम्) स्मरामि।

जीवत्सु तातपादेषु नूतने दारसंग्रहे।
मातृभिश्चिन्त्यमानानां ते हि नो दिवसा गताः॥19॥

इयमपि तदा जानकी-

प्रतनुविरलैःप्रान्तोन्मीलन्मनोहरकुन्तलैर्दशनकुसुमैर्मुग्धालोकं शिशुर्दधती मुखम्।
ललिततलितैर्ज्योत्स्नाप्रायैरकृत्रिमविभ्रमैरकृत मधुरैरङ्गानां मे कुतूहलमङ्गकैः॥20॥

लक्ष्मण- एषा मन्थरा।

रामः (सत्वरमन्यतो दर्शयन्) देवि वैदेहि।

इङ्गुदीपादपः सोऽयं शृङ्गवेरपुरे पुरा।
निषादपतिना यत्र स्निग्धेनासीत-समागमः॥21॥

लक्ष्मण- (विहस्य, स्वगतम्) अये मध्यमाम्बावृत्तमन्तरितमार्येण।

टिप्पणी

14.2 मूलपाठ

सीता- होदु अज्जौत्त होदु। एहि। पेक्खह्म दाव दे चरिदम्। (भवत्वार्यपुत्र भवतु। एहि। प्रेक्षामहे तावत्ते चरितम्।)

(इत्युत्थाय परिक्रामति)

लक्ष्मण- इदं तदालेख्यम्।

सीता- (निर्वर्ण्य) के एदे उवरिणिरन्तरदा उवत्थुवन्दि विअ अज्जउत्तम-(के एते उपरि निरन्तरस्थिता उपस्तुवन्तीवार्यपुत्रम्।)

लक्ष्मण- देवी! एतानि तानि सरहस्यानि जृम्भकास्त्राणि यानि भगवत: कृशश्वात्कौशिकमृषिमुसंक्रान्तानि। तेन ताटकवधे प्रसादीकृतान्यार्यस्य।

राम- वन्दस्व देवि, दिव्यास्त्राणि।

ब्रह्मादयो ब्रह्महिताय तप्त्वापरः सहस्रं शरदां तपांसि।
एतान्यपश्यन्गुरवः पुराणाः स्वान्येव तेजांसि तपोमयानि॥15॥

सीता- णमो एदारणम्। (नम एतेभ्य:)

राम- सर्वथेदानीं त्वत्प्रसूतिमुपस्थास्यन्ति।

सीता- अणुगहीदाह्मि। (अनगुहीतास्मि।)

अन्वयः-

सीता- आर्यपुत्र भवतु भवतु। एहि। ते तावत-चरितं प्रेक्षामहे।

(इति उत्थाय परिक्रामति)

लक्ष्मण- इदं तद-आलेख्यम्।

सीता- (निर्वर्ण्य) के एते उपरि निरन्तरस्थिता आर्यपुत्रम-उपस्तुवन्ति इव।

लक्ष्मण देवि! एतानि तानि सरहस्यानि जृम्भकास्त्राणि यानि भगवत: कृशाश्वत-कौशिकम-ऋषिम-उपसङ्क्रान्तानि। तेन ताटकावधे आर्यस्य प्रसादीकृतानि।

राम- देवि, दिव्यास्त्राणि वन्दस्व।

ब्रह्मादयो पुराणाः गुरवः ब्रह्महिताय शरदां परःसहस्रं तपांसि
तप्त्वा एतानि स्वानि तपोमयनि तेजांसि एव अपश्यन्॥15॥

टिप्पणी

सीता- एतेभ्यः नमः।

राम- सर्वथा इदानीं त्वत्प्रसूतिम-उपस्थास्यन्ति।

सीता- अनुगृहीता अस्मि।

अन्वयार्थः-

सीता- आर्यपुत्र, भवतु भवतु- आर्यपुत्र होने दो, अर्थात् मेरे विषय में प्रवाद की चिन्ता नहीं करनी चाहिए, एहि- आओ, ते- तुम्हारे, तावत्- तो, चरितम्- चरित्र को, प्रक्षामहे - देखें। (इति उत्थाय परिक्रमति- इस प्रकार उठकर परिक्रमा करते हैं।)

लक्ष्मण- इदम्- यह, तद - वह, आलेख्यम् - चित्र है।

सीता- (विर्वर्ग्य- देखकर) के एते - ये कौन है, उपरि = उपर, निरन्तरस्थिता, लगातार खड़े हुए, आर्यपुत्रम् = राम को, उपस्तुवन्ति स्तुति कर रहे हैं।

लक्ष्मण- देवि - माता सीते! एतानि - ये, तानि - वे, सरहस्यानि -गुह्य जृम्भकास्त्र विशेषशक्ति सम्पन्न दिव्यास्त्र है, यानि - जो, भगवत् देव, कृशाश्वात् - कृशाश्व से ऋषि से, कौशिकम् ऋषिम्- कुशल ऋषि के पुत्र विश्वामित्र ऋषि के, उपसङ्कान्तानि - पास आये थे। तेन - उन्होंने, ताटकावधे - ताडकावध के अवसर पर, आर्यस्य, अनुकम्पी अग्रज राम के लिए, प्रसादीकृतानि - आशीर्वाद रूप में प्रदान किये थे।

राम- देवि- प्रिया सीता, दिव्यास्त्राणि- जृम्भकास्त्रों की, वन्दस्व- वन्दना करो। ब्रह्मादय-ब्रह्मा आदि है, जिनके वे प्रजापति आदि, पुराणाः- प्राचीन गुरुवः- आचार्य, ब्रह्महिताय- वेदों की रक्षा के लिए, शरदाम्- वर्षो की, परः सहस्र - हजारो से अधिक, तपांसि- तपस्या का, तप्त्वा- तप करके, एतानि- ये, स्वानि - अपने, तपोमयानि- तपस्या से उद्भूत, तेजॉसि- तेजरुप में, एवं- ही, अपश्यन् - प्रकट हुए, या दिखाई दिये।

सीता- एतेभ्यः नमः - इन को नमस्कार करती हूँ।

राम- सर्वधाः- सभी प्रकार से, इदानीम्- इस समय, त्वत्प्रसूतिम्- तुम्हारी सन्तान को, उपस्थिास्यन्ति - प्राप्त हों।

सीता- अनुष्टहीता, अस्मि - अनुगृहीत या कृतार्थ हो गई हूँ।

व्याख्या- राम के प्रशंसा वचनों को सुनकर आनन्दित सीता राम के साथ चित्र को देखना प्रारम्भ करती हैं। एकचित्र के ऊपरी भाग में कुछ लोग निरन्तर खड़े कुछ लोग भगवान श्रीराम की स्तुति करते है, यह देखते है। उसके बाद वह जब इस विषय में लक्ष्मण से पूछती है तब लक्ष्मण उत्तर देता है कि ये मन्त्रयुक्त जृम्भक नाम के अस्त्र हैं, भगवान-कृशाश्व ने ऋषि कौशिक को ये अस्त्र प्रदान किये। ताड़का वध के अवसर पर भगवान राम से प्रसन्न होकर विश्वामित्र ने ये अस्त्र राम के लिए अनुग्रहपूर्वक प्रदान किये।

लक्ष्मण के कहने के बाद सीता के प्रति उन दिव्य अस्त्रों की वन्दना के लिए कहा। भगवान श्रीराम दिव्यास्त्रों के स्वरूप का वर्णन करते हैं कि पुरातन काल में दानवादि अखिल धर्म मूल भूत वेदों के विनाश करने के लिए उद्यत थे। अतः उनके निवारण के लिए जगत्सृष्टा प्रजापति आदि प्राचीन आर्यो ने कठोर तपस्या करना आरम्भ किया। हजारों वर्षो को व्याप्त करके भी तपस्या करते रहे। उसके बाद उन्होंने अपने तेज से उत्पन्न दिव्यास्त्रों को देखा।

राम के वचन से उन जृम्भकास्त्रों के दिव्यत्व को जानकर देवी सीता दिव्यास्त्रों को प्रणाम करती हैं। राम सीता को कहते हैं कि जैसे उन्होंने इनको प्राप्त किया था। वैसे ही उनकी सन्तान भी इन दिव्यास्त्रों को प्राप्त करेंगी। सीता राम को कहती है कि वह उनके वचन से कृतार्थ हुई।

व्याकरण विमर्शः-

- **निर्वर्ण्य** -निर्-पूर्वकात-वर्ण-धातोः ल्यपि निर्वर्ण्य इति रूपम्।
- **उपस्तुवन्ति** - उपपूर्वकात-स्तुधातोः लटि प्रथमपुरुषचबहुवचने उपस्तुवन्ति इति रूपम्।
- **प्रसादीकृतानि**- अप्रसादानि प्रसादानि कृतानि इत्यर्थे च्विप्रत्यये कृधातोः अनुप्रयोग क्तप्रत्यये नपुंसके प्रथमाबहुवचने प्रसादीकृतानि इति रूपम्।
- **दिव्यास्त्राणि** -दिव्यानि च तानि अस्त्राणि दिव्यास्त्राणि इति कर्मधारयसमासः।
- उपसङ्क्रान्तानि -उपपूर्वकात-सम्पूर्वकात-क्रम्धातोः क्तप्रत्यये नपुंसके प्रथमाबहुवचने उपसङ्क्रान्तानि इति रूपम्।
- **ब्रह्मादयः** - ब्रह्म आदिर्येषां ते ब्रह्मादयः इति बहुव्रीहिसमासः।
- **तप्त्वा** -सन्तापार्थकात-तप्-धातोः क्त्वाप्रत्यये तप्त्वा इति रूपम्।

छन्दः- ''ब्रह्मादयः- श्लोक में इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के समावेश से उपजाति छन्द है उसका लक्षण है- अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ते।

अलंकार विमर्शः-

1. **ब्रह्मादयः** श्लोक में शस्त्रदर्शन से महापुरुषों का भी कीर्तन होने के कारण उदात्त अलंकार है, उसका लक्षण है।

   लोकतिशयसम्पत्ति वर्णनोदात्तमुच्यते।
   यद्वापि प्रस्तुतस्यांग महतां चरित भवेत्॥

2. इस श्लोक में अद्भूत शास्त्रों का वर्णन होने से भाविकालंकार है। उसका लक्षण है- अद्भुतस्य पदार्थस्य भूतस्याथ भविष्यतः। यत्प्रतयक्षायमाणत्वं तद्भाविक मुदाद्हृतम्॥
3. **स्वान्येव तेजांसि** - में रूपक अलंकार है।
4. यहां तीन अलंकारों का अंगागिभाव होने से संकरालंकार है।

पाठगत प्रश्न 14.1

टिप्पणी

1. विश्वामित्र ने दिव्यास्त्र किससे प्राप्त किये।?
2. रामचन्द्र ने कब किससे दिव्यास्त्र प्राप्त किये?
3. ब्रह्मादि ने किसलिए तप किया?
4. उन्होंने कैसे दिव्यास्त्रों को देखा?
5. ब्रह्मादि ने कितने काल तक तप किया?
6. उपजाति छन्द का लक्षण क्या है?
7. 'प्रसादीकृतानि' रुप सिद्ध कीजिए?

14.3 मूलपाठ

लक्ष्मण- एष मिथिलावृत्तन्तः।

सीता- अम्महे, दलन्तणवणीलुप्पलसिणिद्धमसिणसोहमाणमसलेन देहसोहग्गेण विह्यअत्थिमिदताददीसन्तसोम्मसुन्दरसिरौ। अणादरखंडिदसङ्करसरासणो सिहण्डमुद्धमुहमुण्डलो अज्जउत्तो आलिहिदो। (अहो, दलन्नवनीलोत्पलश्यामलस्निग्ध मसृणशोभमानमसलेन देहसौभाग्येन विस्मयस्तिमिततातदृश्यमानसौम्यसुन्दर श्रीरनादरत्रुटितशंकरशरासनः शिखण्ड मुग्धमुखमण्डल आर्यपु= आलिखितः।)

लक्ष्मण- आर्ये! पश्य पश्य।

सम्बन्धिनो वसिष्ठादीनेष तातस्तवार्चति।
गौतमश्च शतानन्दो जनकानां पुरोहितः॥16॥

राम- सुश्लिष्टमेतत्।

जनकानां रघूणां च सम्बन्धः कस्य न प्रियः।
यत्र दाता ग्रहीता च स्वयं कुशिकनन्दनः ॥17॥

अन्वय-

लक्ष्मण- एष मिथिलावृत्तन्तः।

सीता- अहो, दलन्नवनीलोत्पलश्यामलस्निग्धमसृणशोभमानमांसलेन देहसौभाग्येन विस्मयस्तिमिततातदृश्यमानसौम्यसुन्दरश्री अनादरत्रुटितशङ्करशरासनः शिखण्डमुग्ध मुखमण्डलः **आर्यपुत्रः** आलिखित।

लक्ष्मण- आर्ये! पश्य पश्य।

एष तव तातः सम्बन्धिनः वसिष्ठादीन-अर्चति (तथा)। जनकानां पुरोहितः गौतमः शतानन्दः (सम्बन्धितः वसिष्ठादीन-अर्चति)।।16।।

राम- सुश्लिष्टम-एतत्।

जनकानां रघूणां च सम्बन्धः च सम्बन्धः कस्य न प्रियः। यत्र स्वयं कुशिकनन्दनः दाता ग्रहीता च।।17।।

अन्वयार्थ-

लक्ष्मण- एषः - यह, मिथिलावृतान्तः - मिथिला नगर का वृतान्त है।

सीता- अहो! - आश्चर्य से, दलन्नवनी लोत्पलश्यामलस्निग्धमसृणशोभमानमसलेन - विकसित नूतन कमल के सामन श्यामल, स्निग्ध मसृण (चिकने) और मसल (गठे हुए), देह, सौभाग्येन • शरीर की सुन्दरता के कारण, विस्मयस्मिमिततातदृश्यमान सौम्यसुन्दरश्रीः - जिनकी परम मनोहर शोभा को पिताजी विस्मय से टकटकी लगाकर देख रहे हैं, अनादरत्रुटितशंकरशरासनः • अवहेलना से जिन्होंने शिव के धनुष को तोड़ डाला है, शिखण्डमुग्धमुखमण्डलः - ऐसे काक पक्षों या प्रसाधित केशों से रमणीय तथा भोले-भाले मुख वाले, आर्यपुत्रः - आर्यपुत्र राम ही, अलिखितः- चित्रित किये गये है।

लक्ष्मण- आर्ये पश्य पश्य -आर्ये देखिए, देखिए। एषः -यह, तव - तुम्हारे, भवत्याः- सीता के, तातः- पिता जनक और, जनकानां पुरोहितः- राजा जनक के पुरोहित, गौतम शतानन्दः- गौतम शतानन्द के साथ, संबंधिनः- वरपणीय वसिष्ठ आदि सम्बन्धियों की, अर्चति- अर्चना कर रहे है।

राम- सुश्लिष्टम् एतत्- यह सर्वांग सुन्दर है, जनकानाम्- जनकवंश में उद्भवों का, रघूणाम्- रघुवंश में उद्भव राजाओं का, च संबंधः- और संबंधः, कस्य न प्रियः- किस पुरुष को अभिप्रेत नहीं है। अपितु सभी को अच्छा लगता है यह भाव है। यत्र- जिसमें, वैवाहिक- विवाह में, स्वयं कुशिकानन्दनः- विश्वामित्र, दाता - दानकर्ता, च- और, ग्रहीता- ग्रहण करने वाले हैं।

व्याख्या-

तदनंतर लक्ष्मण उस चित्र में मिथिला नगर का वृत्तान्त दिखाना शुरु करते है। उस चित्र में अंकित राम के सौन्दर्य को देखकर सीता प्रसन्न हुई। विकसित नवीन कमल के समान श्यामल, स्निग्ध व मांसल शरीर वाले श्रीराम का वर्णन करती हैं। उस सौन्दर्य को देखने पर निश्चल होकर पिता जनक सविस्मय उसकी कान्ति को देखते रहते हैं। श्रीराम ने अनायास ही शिव धनुष का खण्डन किया। शिखण्ड के समान श्रीराम का मुख अत्यधिक सुन्दर दिखाई देता है।

उसके बाद लक्ष्मण राम और सीता के विवाह कालीन चित्र को देखते हैं। विवाह से पूर्व वरपक्ष वाले वसिष्ठादि मिथिला नगर में राजा जनक के घर गये। उस चित्र में सीता के पिता महाराज

टिप्पणी

जनक उनके वंश के कुलपुरोहित गौतम शतानन्द वसिष्ठादि का सत्कार करते हैं। इससे विवाहकालीन घटनाक्रम दोनों की स्मृति में आ गया।

यहां सीता और राम के विवाह के महत्व को स्वयं श्रीराम वर्णन करते है। इस विवाह में कन्यारुप में जनक वंशजा सीता है और वर रुप में रघुवंशीय पुरुषोत्तम श्रीराम है। दोनों ही वंश पूज्य है। दोनों के विवाह से दोनों वंशो के मध्य संबंध हो गया। अत: इस विवाह का बहुत महत्त्व है। यहां कन्यादान कर्ता और कन्याग्रहण कर्ता अकेले कुशिक मुनिपुत्र स्वयं कौशिक है। इस प्रकार विवाह के महत्व के वर्णन से उनसे उत्पन्न पुत्र भी सर्वगुणसम्पन्न होगा। यह भाव है।

व्याकरण विमर्श:-

मांसलम्-मांसम-अस्यास्तीति विग्रहे मांसशब्दात-लच्प्रत्यये मांसलशब्दो निष्पन्न:।

देहसौभाग्येन-सुभगस्य भाव: इति विग्रहे सुभगशब्दात-ष्यञ्प्रत्यये सौभाग्यम-इति निष्पद्यते। देहस्य सौभाग्यम-देहसौभाग्यमिति षष्ठीतत्पुरुषसमास:, तने।

अनादरखण्डितशङ्करशरासन:- अनादरेण खण्डितम-अनादरखण्डितमिति तृतीयातत्पुरुषसमास:। शङ्करस्य शरसनं शङ्करशरासनमिति षष्ठीतत्पुरुषसमास:। अनादरखण्डितं शङ्करशरासनं येन स: अनादरखण्डितशङ्करशरासन: इति बहुव्रीहिसमास:।

शिखण्डमुग्धमुखमण्डल:- शिखण्डेन मुग्धं शिखण्डमुग्धमिति तृतीयातत्पुरुषसमास:। शिखण्डमुग्ध यस्य स शिखण्डमुग्धमुखमण्डल: इति बहुव्रीहिसमास:।

वसिष्ठादीन्-वसिष्ठ आदिर्येषां ते वसिष्ठादय: इति, तान-इति तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहि:

गौतम:-गोतमस्यापत्यं पुमान-इत्यर्थे गोतमशब्दाद-अणप्रत्यये गौतम: इति निष्पन्नम्।

पुरोहित:- पुरो धीयते इत्यर्थे पुरस-इत्युपपदे धाधातो: क्तप्रत्यये पुरोहितशब्दो निष्पन्न:।

ग्रहीता-ग्रह्-धातो: कर्तरि तृच्प्रत्यये निष्पन्नाद-ग्रहीतृशब्दात-पुंसि प्रथमैकवचने सौ ग्रहीता इति रूपम्।

छन्द:-संबंधित एवं जनकानाम-इन दोनों श्लोकों में अनुष्टुप छन्द है।

अलंकार विमर्श:-

जनकानामिति - श्लोक में कस्य न प्रिय: कथन से अर्थापत्ति अलंकार है।

पाठगत प्रश्न 14.2

8. आर्यपुत्र कैसे अंकित है?

9. अनादरखण्डितशंक शरासन:- से समास लिखिए।

10. सीता के पिता किनकी अर्चना करते हैं?

11. जनक का पुरोहित कौन है?

12. जनक के साथ कौन वसिष्ठादि की अर्चना करता है?

13. किस-किस का संबंध सभी को प्रिय है?

14. संबंध में दाता और ग्रहीता कौन थे?

14.4 मूलपाठ

सीता- एदे क्खु तक्कालकिदगोदाणमङ्गला चत्तरो भादरो विआहादिक्खिदा तुझे। अह्यो। जाणामि तस्सि जेव्व काले वत्तामि। (एते खलु तत्कालकृतगोदानमङ्गलाश्चत्वारो भ्रातरो विवाहदीक्षिता यूयम्। अहो! जानामि तस्मिन्नेव काले वर्ते।)

राम- एवम्

समयः स वर्तत इवैष यत्र मां समनन्दयत्सुमुखि! गौतमार्पितः।
अयमागृहीतकमनीयकङ्कणस्तव मूर्तिमानिव महोत्सवः करः ॥18॥

लक्ष्मण- इयमार्या। इयमप्यार्या माण्डवी। इयमपि वधूः श्रुतकीर्तिः।

सीता- वच्छ, इयं वि अवरा का। (वत्स इयमप्यपरा का।)

लक्ष्मण- (सलज्जास्मितम्। अपवार्य) अये, ऊमिलां पृच्छत्यार्या। भवतु। अन्यतः सञ्चारयामि। (प्रकाशम्)। आर्ये! दृश्यतां द्रष्टव्यमेतत्। अयं च भगवान्भार्गवः।

सीता- (ससंभ्रमम्) कम्पितास्मि। (कम्पिदह्मि)

राम- ऋषे! नमस्ते।

लक्ष्मण- आर्ये! पश्च। अयमार्येण-------(इत्यर्धोक्ते।)

राम- (साक्षेपम्) अयि! बहुतरं द्रष्टव्यम्। अन्यतो दर्शय।

सीता- (सस्नेहबहुमानं निर्वर्ण्य।) सुटु सोहसि अज्जउत्त एदिणा विणअमाहप्पेण। (सुहु शोभसे आर्यपुत्र! एतेन विनयमाहात्म्येन।)

अन्वय-

सीता- एते खुल तत्कालकृतगोदानमङ्गलाः यूयं चत्वारो भ्रातरो विवाहदीक्षिताः। अहो! जानामि तस्मिन-एव प्रदेशे तस्मिन-एव काले वर्ते।

राम- एवम्, हे सुमुखि, एष स समयः वर्तते इव, यत्र गौतमार्पितः आगृहीतकमनीयकङ्गणः अयं तव करः मूर्तिमान-महोत्सवः इव मां समनन्दयत्।।18।।

लक्ष्मण- इयम-आर्या। इयम-अपि आर्या माण्डवी। इयम-अपि वधूः श्रुतकीर्तिः।

सीता- वत्स, इयम-अपि अपरा का।

लक्ष्मण- (सलज्जास्मितम्। अपवार्य) अये, आर्या ऊर्मिलां पृच्छति। भवतु। अन्यतः सञ्चारयमि। (प्रकाशम्)। आर्ये! दृश्यतां द्रष्टव्यम-एतत्। अयं च भगवान-भार्गवः।

सीता- (ससंभ्रमम्) कम्पिता अस्मि।

राम- ऋषे! नमस्ते।

लक्ष्मण- आर्ये! पश्य। अयम-आर्येण----- (इत्यार्धोक्ते।)

राम- (साक्षेपम्) अयि! बहुतरं द्रष्टव्यम्। अन्यतो दर्शय।

सीता- (सस्नेहबहुमानं निर्वर्ण्य।) आर्यपुत्र, एतेन विनयमाहात्म्येन सुष्ठु शोभसे।

अन्वयार्थ-

सीता- एते - ये, खलु - निश्चय ही, तत्काल कृत गोदानमंगलाः - तत्काल गोदान संस्कार (मुण्डन) कराये हुए, यूयं चत्वारः भ्रातरः - तुम चारो भाई हो। विवाहदीक्षिता - विवाह के लिए दीक्षित, अहो - आश्चर्य, जानामि- चिन्तन कर रही हूँ या लग रहा है। तस्मिन्नव प्रदेशे - उसी प्रदेश या स्थान में, तस्मिन्नेव काले - उसी समय (विवाह के समय पर) मैं ही हूँ।

राम- एवम्- इसी प्रकार जैसेः- हे सुमुखि -सुन्दर मुख वाली, एषः -यह, सः- वह ही, **समयः** - काल के समान है। यत्र- जहां, गौतमर्पितः-गौतम द्वारा अर्पित, आगृहीत - कमनीय, कंकणः- कामनीय कंकण से अलंकृत, अयंम्- यह, तव- तुम्हारा, करः - हाथ, मूर्तिमान्- मूर्ति वाला, महोत्सव, इव माम् - महोत्सव के समान मुझे, समनन्दत् - आनन्दित किया था।

लक्ष्मण- इयम् - यह, आर्या - आप सीता है। इयम् - यह, अपि आर्यामण्डवी - भी आर्या भरत पत्नी माण्डवी है। इयम् - यह, अपि श्रुतकीर्ति - यह शत्रुध्नपत्नी श्रुतकीर्ति है।

सीता- वत्स, इयम् - यह, अपरा अन्या का - यह दूसरी कौन है।

लक्ष्मण- (सलज्जास्मितं - लज्जा के साथ हंसता हुआ, अपवार्य - दूसरी ओर स्वयं का ही) अये - अरे, ऊर्मिलाम् - उर्मिला को मेरी पत्नी को, पृच्छति - पूछती है, आर्या - सीता। भवतु - होवे, (अन्य वृतान्त दिखाकर) अन्यतः - दूसरी, ओर संचारयामि - ध्यान आकृष्ट करता हूँ। (प्रकाशम् - प्रकट में) आर्ये - हे कल्याणी, दृश्याताम् - देखने चाहिए, द्रष्ट्व्यम्- दर्शनीय, एतत्- यह। अयम्- यह, च भगवान् भार्गवः - भृगुपुत्र परशुराम है।

सीता- (ससम्भ्रमम् - भय के साथ) कम्पिता अस्मि - मैं तो भय से कांप उठी हूँ।

राम- एषे: नमस्ते -मुनि को नमस्कार करते है।

लक्ष्मण- आर्ये - सीते, पश्य= देखो, अयम् - यह, परशुराम आर्येण - रामचन्द्र ने .... (इत्यर्धोक्ते - वाक्य के पूर्ण होने से पहले ही)

राम- (सापेक्षम् - निषेध करते हुए) आथि - अरे भाई, बहुतरं द्रष्टव्यम् - बहुत कुछ देखना है। अन्यत: दर्शय - अन्य अर्थात् दूसरा दिखलाओ।

सीता- (सस्नेहबहुमानम् - सस्नेह सम्मान पूर्वक, निर्वर्ण्य - देखकर) आर्यपु= - आप श्रीराम, एतेन विनय माहात्म्येन,- इन विनय की महत्ता से, सुष्ठु शोभ से - बहुत शोभित होते हैं।

व्याख्या-

उसके बाद सीता विवाह संस्कार से मुण्डन केशदान संस्कार को करते हुए चारों सहोदर भ्राता राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न को देखती है। सीता को अनुभव हुआ कि वह उस विवाह काल में इस समय है। इस प्रकार से चित्रकार की निपुणता जान सकते हैं।

उसके बाद में राम बोलते हैं कि उस चित्र में उनके विवाह कालीन वह स्थिति चित्रित है। जहाँ सीता के हाथ श्रीराम के हाथ के ऊपर स्थापित किए गये। उसका श्रीराम वर्णन करते है कि सीता का हाथ सुन्दर कंकन से सुशोभित था। जब पुरोहित शतानन्द ने सीता का हाथ राम के ऊपर स्थापित किया तब सीता को कोमल हाथ श्रीराम को अतीत आनन्दित कर रहा था। राम सीता हस्त को महोत्सव रुप में वर्णन करते हैं। जैसे महोत्सव काल में महान आनन्द होता है उसकी प्रकार सीता हस्त के स्पर्श से राम के हृदय में आनन्द की तरंग उत्पन्न हुई।

उसके बाद लक्ष्मण क्रमश: राम पत्नी सीता, भरत पत्नी माण्डवी, शत्रुघ्न पत्नी श्रुतकीर्ति और स्वयं की पत्नी उर्मिला को देखा और सीता को दिखाते हैं। तदनन्तर लक्ष्मण ने अन्य एक चित्र को देखा जहां भगवान श्रीपरशुराम चित्रित थे। उसको देखकर देवी सीता कांपने लगी। उसके बाद श्रीराम परशुराम को प्रणाम करते हैं।

तब लक्ष्मण राम से परशुराम पराजित हुए, यह कहने को प्रवृत होते हैं तब ही श्रीराम उसको उस वर्णन को छोड़कर दूसरा चित्र प्रदर्शन के लिए कहते हैं। तब राम के विनय को देखकर सीता राम के विनयाधिक्य से प्रकाशित सौन्दर्य का वर्णन करती हैं।

व्याकरण विमर्श-

समनन्दयत्- समुपसर्गपुर्वकात-नन्द्धातो: णिचि लङि प्रथमपुरुषैकवचने समनन्दयत-इति रूपम्।

सुमुखि -शोभनं मुखं यस्या: सा सुमुखी सम्बोधनैकवचने सुमुखि इति रूपम्।

आगृहीतकमनायकङ्णः - आपूर्वकात-ग्रह्-धातो: क्तप्रत्यये आगृहीत इति रूपम्। आगृहीतं कमनीयं कङ्कणं येन स: आगृहीतकमनीयकङ्कण।

टिप्पणी

महोत्सव- महान-च असौ उत्सवः महोत्सव इति कर्मधारयसमासः।

विनयमाहात्म्येन- विनयस्य माहात्म्यं विनयमाहात्म्यम्, तेनेति षष्ठीतत्पुरुषसमासः।

छन्द- 'समयः स' इस श्लोक में मंजुभाषिणीच्छन्द है। उसका लक्षण छन्दोमंजरी में - ''सहसा जगौ भवति मंजुभाषिणी'' है।

अलंकार विमर्शः-

'समयः स' श्लोक में 'वर्तते इव' से क्रियोत्प्रेक्षा अलंकार मूर्तिमान महोत्सव इव से गुणोत्प्रेक्षा तथा 'भूतस्य वृतान्तस्य प्रस्तावाच्य' से भाविकालंकार है।

पाठगत प्रश्न 14.3

15. रामादि भाई चित्र में कैसे थे?
16. उसी काल में - इस में कौन से काल की बात है?
17. सीता का हाथ किसने राम के हाथ में अर्पित किया?
18. सीता का हाथ कैसा था?
19. सीता के हाथ ने राम को किसके समान आनन्दित किया?
20. मञ्जुभाषिणी छन्द का लक्षण लिखिए।
21. राम किस माहात्म्य से सुशोभित है?

14.5 मूलपाठ

लक्ष्मण- एते वयमयोध्यां प्राप्ताः।

राम- (साश्रुम्) स्मरामि।

जीवत्सु तातपादेषु नूतने दारसंग्रहे।
भातृभिश्चिन्त्यमानानां ते हि नो दिवसा गताः॥19॥

इयमपि तदा जानकी-

पतनविरलैः प्रान्तोन्मीलन्मनोहरकुन्तलै र्दशनकुसुमैर्मुग्धालोकं शिशुर्दधती मुखम्।
ललिततलितैर्ज्योत्स्नाप्रायैरकृत्रिमविभ्रमैरकृत मधुरैरङ्गानां मे कुतूहलमङ्गकैः॥20॥

लक्ष्मण - एषा मन्थरा।

टिप्पणी

राम- (सत्वरमन्यतो दर्शयन्) देवि वैदेहि।

इङ्गुदीपादपः सोऽयं शृङ्गवेरपुरे पुरा।
निषादपतिना यत्र स्निग्धेनासीत-समागमः॥21॥

लक्ष्मण- (विहस्य, स्वगतम्) अये मध्यमाम्बावृत्तमन्तरितमार्येण।

अन्वय-

लक्ष्मण - एते वयम् अयोध्यां प्राप्ताः।

राम - (सास्रम्) स्मरामि, हन्त स्मरामि।

तातापदेषु जीवत्सु दारसंग्रहे नूतने मातृभिः चिन्त्यमानानां नः ते हि दिवसा गताः॥19॥

इयमपि तदा जानकी-

प्रतनुविरलै प्रान्तोन्मीलन्मनोहरकुन्तलैः दशनकुसुमैः मुग्धालोंक मुखं दधती शिशुः ललितललितैः ज्योत्स्नाप्रायैः अकृत्रिमविभ्रमैः मधुरैः अङ्गकैः मे अम्बानां च कुतूहलम-अकृत॥20॥

लक्ष्मण - एषा मन्थरा।

राम - (सत्वरमन्यतो दर्शयन्) देवि वैदेहि।

श्रृङ्गवेरपुरे अयं स इङ्गुदीपादपः यत्र पुरा स्निग्धेन निषादपतिना समागमः आसीत्॥21॥

लक्ष्मण- (विहस्य, स्वगतम्) अये आर्येण मध्यमाम्बावृत्तम-अन्तरितम्।

अन्वयार्थ-

लक्ष्मण- एते वयम् अयोध्या प्राप्ता - (लीजिए) अब हम लोग अयोध्या में आ गये है।

राम- (सास्रम्- आंसुओं के साथ) स्मरामि- स्मरण करता हूँ। हन्त!- खेद है। स्मरामि - स्मरण करता हूँ। तात पादेषु - पिता के चरणों में, जीवत्सु - प्राण को धारण करते हुए में, दारसंग्रहे - विवाह में, नूतने - नवीन में, मातृभिः - माताओं द्वारा, चिन्त्यमानानाम् - लालन करती हुई माताओं का, नः - हमारा, ते - वे पूर्व के अनुभव, हि - निश्चय - से, दिवसा गताः - दिन व्यतीत हो गये।

इयम् - यह, अपि तदा - भी, उस समय (तब) विवाह बाद, जानकी - देवी सीता।

प्रतनुविरलैः- छोटे-छोटे और छिदे छिदे कुसुम कलिकाओं से, प्रान्तोन्मीलन् महोहरकुन्तलैः- औष्ठप्रान्त में उन्मील मनोहर, केशों से, दशनकुसुमैः- कुसुम तुल्य दन्तावली से, मुग्धालोकम्- दर्शनीय, मुखम्- आनन, दधती- धरण करती

टिप्पणी

हुई, शिशु- बालिका यह जानकी सीता भी, ललितललितैः- मनोहर से भी मनोहर, ज्योत्स्नाप्रायैः- कौमुदी के तुल्य से, अकृत्रिमविभ्रमैः- स्वभाविक विलासों से, मधुरैः - प्रिय, अंगकैः - अवयवों से, मे अम्बानाम् - मेरी माताएँ कौशल्या कैकेयी सुमित्रा आदि को, कुतुहुलम् - कौतुकम्, अकृत - करती थी।

लक्ष्मण - एषा मन्थरा - यह मन्थरा के वृत्तान्त का चित्र है।

रामः- (सत्वरम् - शीघ्र, अन्यतो, मन्थरावृत्तान्त सूचक स्थल से अन्यत्र, दर्शयन् - देखते हुए), **देवि**- प्रिये, वैदेहि- सीता। शृंगवेरपुरे -शृंगवेरपुर नामक स्थान पर, अयम् - यह, सः - वह पहले देखे, इंगुदीपादपः - (हिंगोट) तापसवृक्ष है, यत्र - जहाँ वनगमन काल, में पुरा - पूर्व में, स्निग्धेन - स्नेहयुक्त या परमभक्त से निषादपतिना - निषाधराज गुह से, समागमः - साक्षात्कार, आसीत् - हुआ था।

लक्ष्मणः- (विहस्य - हंसी के साथ, स्वगतम् - अपने मन ही) अये - अहो, आर्येण - श्रीराम द्वारा, मध्यमाम्बावृत्तम् - बीच की माता - कैकेयी का चरित, अन्तरितम् - छोड़ दिया।

व्याख्याः-

आगे के चित्र में विवाह के बाद उनका अयोध्या नगर का चित्रण है। राम क्रन्दन के साथ कहते हैं कि वह सम्पूर्ण वृतान्त को स्मरण करते हैं।

यहां श्रीराम का विवाह के बाद उनका जीवन कैसे व्यतीत हुआ, इसका वर्णन करते हैं वह कहते हैं कि उस समय में उसके पिता के चरण जीवित थे। अतः राज्यादि के विषय में सभी चिन्तनादि पिता करते थे। उनकी माताएँ उनके सुखदुखादि विषय में निरन्तर चिन्तित रहती थीं माताओं और पिता में रहते हुए वे सर्वथा चिन्तामुक्त थे। उस समय उनके दिन सुख से व्यतीत हुए। यहाँ सुखमय दिनों के चित्र को देखकर राम स्मृति पथ पर आते हैं।

उसके बाद श्रीराम चित्र में चित्रित विवाह के बाद की सीता के शरीर सौन्दर्य का वर्णन करते हैं। सीता का मुख अतीव निपुणता से भगवान ने बनाया था। अतः वह विरल थी। उसके सुन्दर केश, मुख के ऊपर खिलते थे। उसके श्वेत दन्तपंक्ति पुष्पों के समान कोमल थे। इस प्रकार मनोहर मुख मण्डल को धारण करती हुए सीता के अंग अतिकोमल थे। जैसे ज्योत्स्ना लोगों के मन में आनन्द पैदा करती है। उसी प्रकार स्वाभाविकता से विलासयुक्त सीता के अंग भी राम के तथा उसकी माताओं के मन में कौतुहल पैदा करते थे। अतः वे बार-बार जानकी को देखने के लिए उत्सुक थे।

उसके बाद मन्थरावृत्तांत जब लक्ष्मण दिखाते हैं तब राम कैकेयी माता के अपवाद के विषय में आलोचना न चाहते हुए दूसरे चित्र को देखते हैं। जिसको देखकर वे सीता को कहते हैं कि यह वही तापसवृक्ष है जहाँ निषादराज ग्रह के साथ साक्षात्कार हुआ था।

व्याकरण विमर्शः-

जीवत्सु - जीव्-धातोः शतृप्रत्यये सप्तमीबहुवचने जीवत्सु इति रूपम्।

चिन्त्यमानानाम-- चिन्त्-धातोः कर्मणी शनचि षष्ठीबहुवचने चिन्त्यमानाम-इति रूपम्।

प्रान्तोन्मीलन्मनोहरकुन्तलैः - प्रान्तयोः उन्मीलन्तः प्रान्तोन्मीलन्तः इति सप्तमीतत्पुरुषः। मनोहराः **कुन्तलाः** मनोहरकुन्तलाः इति कर्मधारयसमासः।

दशनकुसुमैः - दशनाः कुसुमानीव तैः दशनकुसुमैः इति कर्मधारयसमासः।

मुग्धालोकम-- मुग्धः आलोकः यस्य तत-मुग्धालोकम-इति बहुव्रीहिसमासः।

अकृत्रिमविभ्रमैः - अकृत्रिमाः विलासाः येषां तैः अकृत्रिमविभ्रमैः इति बहुव्रीहिसमासः।

छन्दः-

1. जीवत्सु- इस श्लोक में अनुष्टुप छन्द है।
2. **प्रतनुविरलैः**- इस श्लोक में हरिणी छन्द है जिस का लक्षण है।
   ''नसमरसला गः खड्वैदैर्हयैर्हरिणीमता''।

अलंकार विमर्शः-

1. जीवत्सु इस श्लोक में दिवसानां सुख प्रदत्वे सत्यपि, तातपादानां जीवितत्वे, पुन नवविवाह रूपस्य हेत्वन्तरस्य खले कपोपिकान्यायात-साहित्येन एकत्रावतारणात-समुच्ययालंकार।
2. प्रतनुविरलैः श्लोक में मुग्धनायिकावत-होने से असाधारण चेष्टाओं का वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलंकार है। उसका लक्षण- ''स्वभावोक्तिर्दुरूहार्थस्वक्रियारूप वर्णनम्''
3. **ज्योत्स्नाप्रायैः**- से लुप्तोपमालंकार है।
4. स्वभावाक्ति का उपमा से अङ्गा-अङ्गीभावां के कारण संकरालंकार है।

पाठगत प्रश्न 14.4

22. श्रीराम के विवाह के बाद राज्यादि के विषय में कौन चिन्तन करता था?
23. रामादि के दिन कैसे गये?
24. सीता के केश कैसे थे?
25. सीता के दन्त कैसे थे?
26. सीता का मुख कैसा था?
27. सीता के अवयव कैसे थे?
28. कहाँ पर निषादराज के साथ राम का साक्षात्कार हुआ?

पाठसार

राम के प्रशंसा वचन सुनकर आनन्दित सीता राम के साथ चित्र को देखना आरम्भ करती हैं। सर्वप्रथम वे उस चित्र को देखती हैं। जहां ताड़कावध के समय सन्तुष्ट ऋषि विश्वामित्र ने कृशाश्व से प्राप्त किये दिव्याशास्त्रों को अनुकम्पा से राम को देते हैं। रामवचन से उनके जृम्भकास्त्रों की दिव्यता को जानकर देवी सीता उन दिव्य शस्त्रों को प्रणाम करती है। राम सीता को कहते हैं कि जैसे उन्होंने इन को प्राप्त किया वैसे ही उनकी सन्तान भी इन दिव्यास्त्रों को प्राप्त करेंगी। सीता राम को कहती हैं कि वह उसके वचन से कृतार्थ हुई।

उसके बाद लक्ष्मण मिथिलानगर के वृत्ततात्मक चित्र का प्रदर्शन करते हैं। वहाँ श्रीराम के चित्र देखकर सीता उसके देहादि-सौन्दर्य का वर्णन करती हैं। उसके बाद उन्होंने कैसे अनायास से शिव धनुष का खण्डन किया, यह कहती है। उसके बाद उनके विवाह कालीन चित्र आते हैं जहाँ विवाह से पूर्व चारों भाई राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न केशदान नामक मंगल कार्यरूप मुण्डन संस्कार कराते हैं। वहां एकत्र स्वयं जनक और उनके पुरोहित शतानन्द वसिष्ठादि वर पक्ष का सत्कार करते हैं। उसके बाद श्रीराम उनके विवाह के माहात्म्य का वर्णन करते हैं। वे कहते है कि जनक रघुवंशो के मध्य सम्बन्ध किस को अभीष्ट नहीं है। और इस विवाह में कन्या दाता और कन्या ग्राहक स्वयं विश्वामित्र है। पुरोहित सीता के कंकण शोभित हाथ श्रीराम के हाथ के ऊपर स्थापित करते हैं जिससे श्रीराम आनन्द का अनुभव करते हैं।

उसके बाद क्रमशः भरत पत्नी माण्डवी, शत्रुघ्न पत्नी श्रुतकीर्ति और लक्ष्मण पत्नी उर्मिला को देखते है। तदनंतर एक चित्र में वे परशुराम को देखते हैं। जब तक लक्ष्मण श्रीराम ने महावीर परशुराम को पराजित किया यह वर्णन करना प्रारम्भ करते हैं। तब तक श्रीराम उसे रोककर प्रसंग को ही परिवर्तन करते हैं। राम के इस प्रकार के विनय को देखकर सीता मुग्ध हो जाती है। अगले चित्र में वे देखते है कि वे सभी भाई विवाहानन्तर सपत्नीक अयोध्या आते है। श्रीराम माता और पिताओं के साथ उनके सुखदविषयों में चिन्तन करती हुई कैसे सुख से उनके दिन व्यतीत हो गये, कैसे सीता के अपरिसीम सौन्दर्य को देखकर उनकी माताएँ और स्वयं कौतुक को प्राप्त होते थे। इत्यादि सर्व मनोरम रीति से वर्णन करते हैं।

उसके बाद राम मन्थरावृतान्त को त्याग कर चित्रांकित इंगुदीपादप को देखकर कहते हैं कि उसकी छाया में निषादराज गुह के साथ उनका साक्षात्कर सम्पन्न हुआ। इस प्रकार संक्षिप्त पाठ का सार प्रस्तुत है।

आपने क्या सीखा

- राम सीता के शारीरिक सौन्दर्य को जाना।
- चित्रदर्शन के माध्यम से सम्पूर्ण रामायण को जाना।
- श्लोक के अन्वय एवं उनके अर्थ को जाना।

पाठान्त प्रश्न

1. दिव्यास्त्रवृतान्तं ब्रह्मादयः - इस श्लोक की व्याख्या कीजिए।
2. सीता कृत रामवर्णन अपने अनुसार लिखिए।
3. **समयः** स वर्तते इस श्लोक की व्याख्या कीजिए।
4. विवाह वृतान्त का वर्णन कीजिए।
5. प्रतनु विरलैः इस श्लोक की व्याख्या कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

14.1

1. दिव्यास्त्रों को कृशाश्व से विश्वामित्र ने प्राप्त किये।
2. रामचन्द्र ने ताडकावध के समय विश्वामित्र से दिव्यास्त्र प्राप्त किये।
3. ब्रह्मादि ने वेद के संरक्षण के लिए तप किया।
4. ब्रह्मादि ने हजार वर्षो से अधिक तपस्या की।
5. उन्होंने अपने तेज से ही दिव्यास्त्रों को देखा।
6. उपजाति का लक्षणः-

   अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुयजातयस्ते।
7. अप्रसादानि प्रसादानि कृतानि इति प्रसाद शब्द से च्विप्रत्यय करके क्त प्रत्यय के प्रथमा बहुवचन में प्रसादीकृतानि रूप बना।

14.2

8. विकसित नवीन कमल के समान श्यामल, स्निग्ध व माँसल शरीर वाले श्रीराम है।
9. अनादरेण खण्डितम् अनादरखण्डितम् तृतीयातत्पुरूषसमास,शंकरस्य शरासनम् शंकरदशरासनम् षष्ठीतत्पुरूषसमास अनादरखण्डितम् शंकरशरासनम् येन सः अनादरखण्डितशंकरशरासनः बहुव्रीहिसमास।
10. सीता के पिता, वसिष्ठादि संबंधियों की अर्चना करते हैं।
11. जनक के पुरोहित गौतम शतानन्द हैं।

टिप्पणी

12. जनक के साथ शतानन्दादि वसिष्ठ की अर्चना करते हैं।

13. जनक और रघुवंश का संबंध सब को प्रिय है।

14. संबंध में दाता और गृहीता कुशिक नन्दन विश्वामित्र थे।

14.3

15. रामादि के भाई चित्र में विवाह काल कृत गोदन संस्कार के बाद विवाह दीक्षित दिखाई देते है।

16. विवाह काल।

17. सीता का हाथ शतानन्द ने राम के हाथ में अर्पित किया।

18. सुन्दर कंकण मूर्तिमान महोत्सव के समान सीता का हाथ है।

19. सीता के हाथ ने राम को आनन्दित किया।

20. मंजुभाषिणी छन्द का लक्षण- ''सहसा जगौ भवति मंजुभाषिणी''।

21. राम विनय के माहात्म्य से सुशोभित हैं।

14.4

22. उनके पिता दशरथ चिन्तन करते थे।

23. दशरथ के जीवित रहते नव विवाह के बाद माताओं द्वारा परिपालन से रामादि के दिन सानन्द व्यतीत हुए।

24. सीता के केश प्रतनुविरलाः कपालप्रान्त पर विकसित व मनोहर थे।

25. सीता के दन्त कुसुम सदृश हैं।

26. सीता का मुख मुग्ध है।

27. सीता के ललितालालित चन्द्रिका के समान स्वाभाविक विलास से मधुर अवयव थे।

28. शृंगवेरपुर में इंगुदीपादप के समीप निषादराज गुह का राम के साथ साक्षात्कार सम्पन्न हुआ।

15

उत्तररामचरित-चित्र दर्शन-2

पूर्व पाठ में हमने राम, सीता और लक्ष्मण विवाह वृतान्त के आगे अयोध्या कैसी थी, यह देखा। विराधवृतान्त, मन्थरावृतान्त गुहसाक्षात्कार इत्यादि को हम देख चुके। इस पाठ में सीता चित्र में राम लक्ष्मण के जटा संयमनवृतान्त को देखती है। उसके बाद वन मार्ग से जाते समय उनके द्वारा जो प्राकृतिक सौन्दर्य का अवलोकन किया गया उसके चित्रों को देखती हैं। इस प्रसंग में भागीरथी नदी, श्यामनामक वटवृक्ष, प्रस्रवणनामक पर्वत, विध्याचल वन इत्यादि का चित्र दर्शन इस पाठ में देखते हैं।

उद्देश्यः-

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- राम और सीता के कुछ विशेष गुणों को जान पाने में;
- भागीरथी, श्याम वृक्ष, प्रस्रवण पर्वत, विन्ध्यारण्य के बारे में जान पायेंगे;
- सीता और राम के सुदृढ़ प्रेम को समझ पायेंगे;
- छन्दों के लक्षणों को समझ पायेंगे;
- श्लोकों के अन्वय का प्रतिपदार्थादि को जान पायेंगे और;
- दीर्घ पदों के विग्रह वाक्य और समास को समझ पायेंगे।

15.1 सम्पूर्ण पाठ

सीता- अह्यो एसो जडासंजमणवुत्तन्तो। (अहो एष जटासंयमनवृत्तान्तः।)

टिप्पणी

लक्ष्मण- **पुत्रसङ्क्रान्तलक्ष्मीकैर्यद् वृद्धेक्ष्वाकुभिर्धृतम्।**
धृतं बाल्ये तदार्येण पुण्यमारण्यकव्रतम् ॥22॥

सीता- एषा पषण्णपुण्णसलिला भअवदी भाईरही। (एषा प्रसन्नपुण्यसलिला भगवती भागीरथी।)

राम- रघुकुलदेवते! नमस्ते।
तुरगविचयव्यग्रानुर्वीभिदः सागराध्वरे
कपिलमहसा रोषात्प्लुष्टान् पितुश्च पितामहान्।
अगणिततनूतापस्तप्वा तपांसि भगीरथो
भगवति! तव स्पृष्टानद्भिश्चिरादुदतीतरत्॥23॥
सा त्वमम्ब! स्नुषायामरुन्धतीव सीतायां शिवानुध्याना भव।

लक्ष्मण- एष भरद्वाजावेदितश्चित्रकूटयायिनि वर्त्मनि वनस्पतिः कालिन्दीतटे वटः श्यामो नाम।

(रामः सस्पृहमवलोकयति।)

सीता- सुमेरदि वा तं पदेसं अज्जउत्तो? (स्मरति वा तं प्रदेशमार्यपुत्रः?)

राम- अयि कथं विस्मर्यते?

अलसललितमुग्धान्यध्वसम्पातखेदा
दशिथिलपरिम्भैर्दत्तसंवाहनानि।
परिमृदितमृणालीदुर्बलान्यङ्कानि
त्वमुरसिममकृत्वायत्रनि द्रामवाप्ता॥24॥

लक्ष्मण- एष विन्ध्याटवीमुखे विराधसंवादः।

सीता- अलंदाव एदिणा। पेक्खम्मि दाव अज्जउत्तसहत्तधरिदतालबुन्तादवत्त-निवारिदादपं दक्खिणारण्णप्पवेशारम्भम्। (अलं तावदेतेन। पश्यामि तावदार्यपुत्रस्वहस्तधृततालवृन्तातपत्रनिवारितातपमात्मनो दक्षिणारण्यप्रवेशारम्भम्।)

एतानि तानि गिरिनिर्झरिणीतटेषु वैखानसाश्रिततरूणि तपोवनानि।
येष्वातिथेयपरमा यमिनो भजन्ते नीवारमुष्टिपचना गृहिणो गृहाणि॥25॥

लक्ष्मण- अयमविरलानोकहनिवहनिरन्तरस्निग्धनीलपरिसरारण्यपरिणद्ध-गोदावरीमुखरकन्दरः सन्ततमभिष्यन्दमानमेघमेदुरितनीलिमाजनस्थानमध्यगो गिरिः प्रस्रवणो नाम।
स्मरसि सुतनु तस्मिन्पर्वते लक्ष्मणेन
प्रतिविहितसपर्यासुस्थ्योस्तान्यहानि।
स्मरसि सरसनीरां तत्र गोदावरीं वा
स्मरसि च तदुपान्तेष्वावयोर्वर्तनानि॥26॥
किं च,
किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्तियोगा

टिप्पणी

दविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण।
अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णो
रविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत्॥27।

लक्ष्मण– एषा पंचवटयां शूर्पणखा।

सीता– हा अज्जउत्त, एत्तिअं दे दंसणं। (हा आर्यपुत्र, एतावत् ते दर्शनम्।)

राम– अयि विप्रयोगत्रस्ते, चित्रमेतत्।

सीता– जहा तहा होदु। दुज्जगो असुहं उप्पदेइ। (यथा तथा भवतु। दुर्जनः असुखमपुत्पादयति।)
राम: हन्त, वर्तमान इव मे जनस्थानवृत्तन्तः प्रतिभाति।

लक्ष्मण– अथेदं रक्षोभिः कनकहरिणच्छद्मविधिना
तथा वृत्तं पापैर्व्यथयति यथा क्षालितमपि।
जनस्थाने शून्ये विकलकरणैरार्यचरितै
रपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्॥28॥

15.2 मूलपाठ

सीता– अह्यो एसो जडासंजमणवुत्तन्तो। (अहो एष जटासंयमनवृत्तान्तः।)

लक्ष्मण– **पुत्रसङ्क्रान्तलक्ष्मीकैर्यद् वृद्धेक्ष्वाकुभिर्धृतम्।**
धृतं बाल्ये तदार्येण पुण्यमारण्यकव्रतम्॥22॥

सीता– एषा पषण्णपुण्णसलिला भअवदी भाईरही। (एषा प्रसन्नपुण्यसलिला भगवती भागीरथी।)

राम– रघुकुलदेवते! नमस्ते।
तुरगविचयव्यग्रानुर्वीभिदः सागराध्वरे
कपिलमहसा रोषात्प्लुष्टान् पितुश्च पितामहान्।
अगणिततनूतापस्तप्त्वा तपांसि भगीरथो
भगवति! तव स्पृष्टानद्भिश्चिरादुदतीतरत्॥23॥
सा त्वमम्ब! स्नुषायामरुन्धतीव सीतायां शिवानुध्याना भव।

अन्वय–

सीता– अहो एष जटासंयमनवृत्तान्तः।

लक्ष्मण– पुत्रसङ्क्रान्तलक्ष्मीकैः वृद्धेक्ष्वाकुभिः यत् (व्रतं) धृतं तत्पुण्यम् आरण्यकव्रतम् आर्येण बाल्ये धृतम्॥22॥

सीता– एषा प्रसन्नपुण्यसलिला भगवती भागीरथी।

राम– रघुकुलदेवते! नमस्ते। हे भगवति, भगीरथः अगणिततनूतापः सन् तपांसि तप्त्वा तव

टिप्पणी

अद्भिः स्पृष्टान् सगराध्वरे तुरगविचयव्यग्रान् उर्वभिदः रोषद् कपिलमहसा प्लुष्टान् च पितुः पितामहान् चिरात् उदतीतरत्।।23।।

सा त्वम् अम्ब! स्नुषायां सीतायाम् अरुन्धती इव शिवानुध्याना भव।

अन्वयार्थ-

सीता- अहो - आश्चर्य, एषः - यह, जटासंयमन वृतान्तः - जटाबन्धन का वृतान्त है।

लक्ष्मण- पुत्रसंक्रान्तलक्ष्मीकैः - जिनके द्वारा राज्य लक्ष्मी को पुत्राश्रित किया जाता है, **वृद्धेक्ष्वाकुभिः** - ऐसे ईक्ष्वाकुवंश के वृद्ध राजाओं द्वारा, यद् - जो धृतम् - धारण करते है, आरण्यकव्रतम्- वानप्रस्थ के व्रत को ग्रहण कर, तत्पुण्यम् - उस पवित्र पुण्य को, आर्येण- रामचन्द्र ने, बाल्ये- बालकाल में ही, धृतम् - धारण या स्वीकार किया।

सीता- एषा - यह, प्रसन्न पुण्य सलिला, पवित्र निर्मल जल से परिपूर्ण, भगवती - देवी, भागीरथी - गंगा।

राम- रघुकुल देवते - रघुकुल की देवी भागरथी, नमः - नमस्कार, ते - तुम्हे। हे भगवति - देवि, भागीरथः- हमारे पूर्वज राजा भागीरथ, अगणिततनुतापः- उपेक्षित शरीर दुःखी, सन् तपांसि **तप्त्वा** - होते हुए तपस्या करके, तव - आपको, अद्रि - जल से, स्पृष्टान् - स्पर्श को, **सगराध्वरे** - राजा सगर के यज्ञ में, तुरगविचयव्यग्रान्- घोड़ों के अन्वेषण में व्याकुल, उर्वीभिद् • पृथ्वी को खोदने वाले, रोषात् - क्रोध से, कपिलमहसा - कपिलमुनि के तेज से, प्लुष्टान् • जले हुए, पितुः - जनक के, पितामहान् - पितामह सगर आदि, आत्मजो को, चिरात् - बहुत समय के बाद, उदतीतरम् - उद्धार किया।

सा त्वम्- वह तुम भवती, अम्ब- हे माता, स्नुषायाम्- वधु को, सीतायाम् - सीता को, अरुन्धती- वसिष्ठ पत्नी अरुन्धवती के, इव - समान, शिवानुध्याना - मंगल चिन्तन वाली, भव हों।

व्याख्या-

सीता ने जटाबन्धन वृतान्त को देखा। राम लक्ष्मण ने शृंगवेरपुर में ही जटाबन्धन किया। यहाँ लक्ष्मण श्रीराम के व्रतपालन रूप गुण से इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं की उत्कृष्टता का वर्णन करते हैं। इश्वाकुवंश के राजा सम्पूर्ण जीवन में राज्यसमृद्धि आदि सुखों का अनुभव करते हैं। जब वार्धक्य काल आता है। तब वे राज्य का भार पुत्रों के समर्पित करके वानप्रस्थ व्रत का आश्रय लेते हैं अर्थात् सभी प्रकार के सुखों को प्राप्त करके अन्त में वे व्रत को धारण करते हैं। किन्तु श्रीराम ने शिशु अवस्था में ही इस दुष्कर व्रत का आचरण किया। व्रतपालन के लिए उन्होंने वृद्धावस्था की अपेक्षा नहीं की। इस प्रकार श्रीराम ने बाल्यकाल में ही पवित्र वानप्रस्थश्रम का आचरण किया।

सीता चित्र में भागीरथी नदी को देखती है, जिसका जल निर्मल और पवित्र है। रघुवंश के पूर्वज भागीरथ ने तपस्या द्वारा इस नदी को स्वर्गलोग से पृथ्वी लोक को लाये थे। अत: वह भागीरथी रघुवंश की कुलदेवी है। उस नदी को श्रीराम नमस्कार करते हैं।

यहाँ श्रीराम गंगा के स्वर्ग लोक से भूलोक आगमन वृतान्त का वर्णन करते हैं। प्राचीन काल में सगर नामक राजा ने अश्वमेध नामक यज्ञ किया। अश्वमेध यज्ञ में अश्व ही प्रधान होता है। उस अश्व को इन्द्र ने कपट का आश्रय लेकर चुरा लिया और गुप्तस्थान पर स्थापित कर दिया। अश्व के बिना यज्ञ समाप्त नहीं होगा। अत: सगर के 60 हजार पुत्रों ने अश्व के अनुसंधान करते हुए पृथ्वी को खोद दिया। उनसे महर्षि कपिल किसी कारण से कुपित होते हुए उन सभी पुत्रों को भस्म कर दिया। भागीरथी जल के स्पर्श से ही उन पुत्रों का उद्धार हो सकता है। किन्तु भागीरथी तब स्वर्ग में थी। बहुतकाल बाद सगर के प्रपौत्र भागीरथ ने कठोर तपस्या से भागीरथी को भूलोक पर लाकर उसके जल से 60 हजार पुत्रों का उद्धार किया।

राम भागीरथी को अम्बा कहकर संबोधन करते हैं और सीता मंगल विधान के लिए प्रार्थना करती हैं।

विशेष टिप्पणी:-

शिवानुध्यानाभव - अर्थात् गंगा से सीता कल्याण कामना के लिए प्रार्थना करने की घटना से आगामी घटनाचक्र पर प्रकाश पड़ता है। अत: यहाँ मुख सधि का 'उद्भेद' नायक अंग है- उसका लक्षण- ''बीजार्थस्य प्ररोह: स्यादुद्भेद:''

व्याकरण विमर्श:-

पुत्रसङ्क्रान्तलक्ष्मीकै:-पुत्रेषु सङ्क्रान्ता पुत्रसङ्क्रान्ता इति सप्तमीतत्पुरुष:। पुत्रसङ्क्रान्ता लक्ष्मी: येषां तै: इति बहुव्रीहिसमास:।

आरण्यकम्- अरण्ये भवा इत्यर्थे अरण्यशब्दाद् वुञ्प्रत्यये आरण्यका: इति निष्पद्यते। आरण्यकानमिदम् इति विग्रहे आरण्यकशब्दाद् अणि आरण्यकम् इति रूपम्।

तुरगविचयव्यग्रान्- तुरेण गच्छतीति तुरग:। तस्य विचय: तुरगविचय: इति षष्ठीतत्पुरुष:। तस्मिन् व्यग्रान् तुरगविचयव्यग्रान् इति सप्तमीतत्पुरुष:।

उदतीतरत्-उत्पूर्वकात् तृधातो: णिचि लुङि उदतीरत् इति रूपम्।

छन्द:- तुरगविचयव्यग्रान् - श्लोक में हरिणी छन्द है

''रसयुगहयैर्न्सौम्रौस्लौ गौ यदा हरिणी तदा।''

पाठगतप्रश्न 15.1

1. राम लक्ष्मण का जटाबन्धन कहाँ हुआ?
2. इक्ष्वाकुवंशीय राजा कब वानप्रस्थ आश्रम का पालन करते हैं?

टिप्पणी

3. भागीरथी कैसी थी?

4. कौन भागीरथी को स्वर्ग लोक से भूलोक लाया?

5. राम की क्या प्रार्थना है कि सीता कैसी हों?

15.3 मूलपाठ

लक्ष्मण – एष भरद्वाजावेदितश्चित्रकूटयायिनि वर्त्मनि वनस्पतिः कालिन्दीतटे वटः श्यामो नाम।

(रामः सस्पृहमवलोकयति।)

सीता– सुमेरदि वा तं पदेसं अज्जउत्तो? (स्मरति वा तं प्रदेशमार्यपुत्रः?)

राम – अयि कथं विस्मर्यते?

अलसललितमुग्धान्यध्वसम्पातखेदा दशिथिलपरिम्भैर्दत्तसंवाहनानि।
परिमृदितमृणालीदुर्बलान्यङ्कानि त्वमुरसि मम कृत्वा यत्र निद्रामवाप्ता।।24।।

अन्वय-

लक्ष्मण– एष भरद्वाजावेदितः चित्रकूटयायिनि वर्त्मनि वनस्पतिः कालिन्दीतटे श्यामो नाम वटः।

(रामः सस्पृहम् अवलोकयति।)

सीता– आर्यपुत्र, तं प्रदेशं स्मरति वा?

राम– अयि कथं विस्मर्यते?

यत्र त्वम् अध्वसम्पातखेदात् अलसललितमुग्धानि अशिथिलपरिरम्भैः दत्तसंवाहनानि परिमृदितमृणालीदुर्बलानि अङ्गकानि मम उरसि कृत्वा निद्राम् अवाप्ता।।24।।

अन्वयार्थ-

लक्ष्मण– एषः – यह, भारद्वाजविदितः – भारद्वाज द्वारा निर्दिष्ट, चित्रकुटयायिनि – चित्रकूट जाने वाले, वर्त्मनि – मार्ग में, वनस्पतिः – वृक्ष, कालिन्दीतटे- कालिन्दी नदी के तट पर, वटः श्यामो नाम – श्याम नाम वाल वटवृक्ष

(रामः सस्पृहम् – उत्कण्ठा के साथ, अवलोकयति – देखते हैं।)

सीता– आर्यपुत्र– श्रीराम, तम् प्रदेशम्–, उस स्थान को, स्मरति वा– स्मरण कर रहे है क्या।

राम- अयि कथम् अरे किस प्रकार से, विस्मर्यते- भूल जाता हूँ। यत्र - जिस प्रदेश में, त्वम् - तुम सीता, अध्वसम्पातखेदात् -मार्ग गमन से श्रान्त दु:खित से, अलसललितमुग्धानि - आलस्य मुक्त ललित कोमल सुन्दर, अशिथिलपरिम्भै: - प्रगाढ़ आलिंग न से, दत्तसंवाहनानि - मर्दन करके को, परिमृदितमृणालीदुर्वलानि - कमल नाल की भाँति अपने दुर्बल, अंगकानि - शरीर के अवयवों का, मम - राम के, उरसि - दक्ष स्थल पर, कृत्वा - करके या रखकर, **निद्राम्** - निद्रा को, अवाप्ता - प्राप्त किया।

व्याख्या-

वनवास काल में महर्षि भरद्वाज ने उनके चित्रकूटवन के प्रति गमन मार्ग को ज्ञापित किया। उस गमन मार्ग में यमुना नदी के तट पर श्याम नामक वटवृक्ष को सीता देखती हैं। तब सीता राम का स्मरण करती हैं अथवा इस प्रदेश के विषय में पूछती है। तब राम कहते हैं कि उस प्रदेश का स्मरण संभव था। उसके बाद राम अविस्मरण का कारण कहते हैं। सीता मार्ग परिश्रम के कारण अतीव थक गई थी। सीता के अंग आलस्य युक्त थके हुए थे किन्तु वे उनके सौन्दर्य को नहीं छोड़ रहे थे। उसके थकावट को देखकर श्रीराम ने उसके कोमल अंगों को मर्दित किया। अत्यधिक थकी हुई सीता, तब राम को दृढ़ालिंगन प्राप्त करके उसके वक्ष के ऊपर ही स्थित होकर सो गई। इस प्रकार राम सीता के मध्य में प्रेम चातुर्य्य को प्रस्तुत श्लोक से वर्णित किया।

व्याकरण विमर्श:-

भरद्वाजावेदित: -भदद्वाजेन आवेदित: भरद्वाजावेदित: इति तृतीयातत्पुरुषसमास:।

चित्रकूटयायिनि-चित्रकूटं याति इति चित्रकूटयायि, तस्मिन् चित्रकूटयायिनि।

वनस्पति:- वनस्य पति:- पास्करादित्वात् सुट्।

छन्द:- अलसललितेत्यस्मिन् श्लोक में मालिनी छन्द है-ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकै:'' ।

अलंकार विमर्श:- अलसललिल--- श्लोक के आदि में मार्ग से परिश्रान्त, उसके बाद ललितत्व सौकुमार्य भाव, उसके बाद अशिथिल आलिंगन बाहुल्य, --- इत्यादि सभी पर के प्रति पूर्व हेतु होने से कारणमाला अलंकार है, उसका लक्षण-

परं परं प्रति यदा पूर्व पूर्वस्य हेतुता। तदा कारण माला स्यात्।।

पाठगतप्रश्न 15.2

6. भरद्वाज निर्दिष्ट वनस्पति का नाम क्या है?
7. वटवृक्ष किस नदी के किनारे है?

टिप्पणी

8. सीता के अंग कैसे आलस्ययुक्त हुए?

9. सीता कहाँ और कैसे सोई?

15.4 मूलपाठ

लक्ष्मण- एष विन्ध्याटवीमुखे विराधसंवादः।

सीता- अलंदाव एदिशा। पेक्खम्मि दाव अज्जउत्तसहत्तध रिदतालबुन्तादवत्त-निवारिदादपं दक्खिणारण्णप्पवेशारम्भम्। (अलं तावदेतेन। पश्यामि तावदार्यपुत्रस्वहस्तधृततालवृन्तातपत्रनिवारितातपमात्मनो दक्षिणारण्यप्रवेशारम्भम्।)

एतानि तानि गिरिनिर्झरिणीतटेषुवैखानसाश्रिततरूणि तपोवनानि।
येष्वातिथेयपरमा यमिनो भजन्ते नीवारमुष्टिपचना गृहिणो गृहाणि।।25।।

अन्वय-

लक्ष्मण - एष विन्ध्याटवीमुखे विराधसंवादः।

सीता- अलं तावद् एतेन। पश्यामि तावद् आर्यपुत्रस्वहस्तधृतताल-वृन्तातपत्रनिवारितातपम् आत्मनो दक्षिणारण्यप्रवेशारम्भम्।

गिरिनिर्झरिणीतटेषु वैखानसाश्रिततरूणि एतानि तानि तपोवनानि (सन्ति) येषु आतिथेयपरमाः नीवारमुष्टिपचना यमिनो गृहिणः गृहाणि भजन्ते।।25।।

अन्वयर्थ-

लक्ष्मण- एषः- यह, विन्ध्याटवीमुखे - विन्ध्यारण्य के आरम्भ में, विराधसंवादः - विराध राक्षस के संवाद का, वृत्तान्तः - वृतान्त है।

सीता- अलम् - पर्याप्त (रहने दो), तावत् - तो, एतेन - इससे, तावत् - तो, आर्यपुत्रस्वहस्तधृततालवृन्तातपत्रनिवारितामपम् - आर्यपुत्र, स्वामी श्रीराम से, स्वहस्तेन - अपने हाथ से, घृतम् -गृहीत, तालवृन्तम् - तालपत्र- रूपम्, आतपत्रम् - छत्र से, विवारित - धूम से गर्मी, जिसमें, **आत्मनः** - अपने, दक्षिणारण्यप्रवेशारम्भम् - दक्षिणारण्य में प्रवेश का, आरम्भ को, पश्यामि - देखती हूँ।

गिरिर्झरिणीतटेषु - पर्वत नदी के किनारे में, बैखानसाश्रिततरुणि - वानप्रस्थ आश्रम का सेवन करने वाले तपस्वी, एतानि - इन, तानि - उन- प्रसिद्ध, तपोवनानि - तपोवन है, येषु - जिन तपोवनों में, आतिथेयपरमाः- अतिथिसत्कार प्रधानः, नीवारमुष्टिपचना - मुष्ठिभर अन्न को पकाने वाले, यमिनः- सन्यासी मुनि, गृहिणः - गृहस्थ, गृह से विनाश करने वाले, भजन्ते- सेवन करते है।

व्याख्या:-

लक्ष्मण उन दोनों को विराध राक्षस का संवाद दिखाता है। विन्ध्यारण्य में प्रवेश करके विराध नामक राक्षस ने राम और लक्ष्मण को खाने का प्रयत्न किया किन्तु राम ने उस राक्षस को मार दिया। इस वृतान्त के अनिष्ट के कारण सीता उस चित्र को देखना नहीं चाहती थी। अत: वह दक्षिणारण्य में प्रवेश को देखती है। जहाँ श्रीराम तालवृन्त को आतपत्र (छाता) करके धूप से निवारण को चेष्टा करते हैं।

इस चित्र में राम, सीता और लक्ष्मण विन्ध्यारण्य में प्रविष्ट हुए। चित्र को देखकर श्रीराम मुग्ध होकर विध्न्यारण्य के वर्णन में प्रवृत हुए। विन्ध्यपर्वत में यह अरण्य है। अत: अरण्य के समीप में ही पार्वती नदी स्वच्छन्द प्रवहित हो रही है। यह अरण्य मनुष्य रहित नहीं है क्योंकि उनके वृक्षों के नीचे वार्धक्यकाल में वानप्रस्थाश्रम का आश्रय लेकर लोग निवास करते हैं। इस वन में बहुत से मुनि सपरिवार निवास करते हैं। वे मुनि मुष्ठिभर नीवारधान्य को खाकर ही जीवन धारण करते हैं और भी वन में आने वाले सभी लोगों का अतिथि ज्ञान से सम्यक रूप से सत्कार आदि करते हैं। इस प्रकार वे ''अतिथि देवो भव'' इस उपनिषद वाक्य का सम्यक पालन करते हैं। ऐसा राम कहना चाहते हैं। इस प्रकार के पुण्यवाले मुनिजन तपस्या करते हुए वानप्रस्थियों का संबंध होने से विन्ध्यारण्य तपोवन हो गया। अत: वहाँ जाकर वे धन्य ही हुए।

व्याकरण विमर्श:-

निर्झरिणी -निर्झरशब्दात् इनिप्रत्यये डीपि च निर्झरिणी इति रूपम्।

वैखानसाश्रिततरूणि -वैखानसै: आश्रिता: तरव: येषु तथोक्तानि इति बहुव्रीहिसमास:।

छन्द-

उन दोनों श्लोकों में वसन्ततिलका का छन्द है।

पाठगत प्रश्न 15.3

10. विन्ध्याटवी में किसका संवाद था?
11. विन्ध्यारण्य में वृक्ष कैसे थे?
12. मुनि क्या खाते थे?

15.5 मूलपाठ

लक्ष्मण- अयमविरलानोकहनिवहनिरन्तरस्निग्धनीलपरिसरारण्यपरिणद्ध-गोदावरीमुखरकन्दर: सन्ततमभिष्यन्दमानमेघमेदुरितनीलिमाजनस्थानमध्यगो गिरि: प्रस्रवणो नाम।

स्मरसि सुतनु तस्मिन्पर्वते लक्ष्मणेन
प्रतिविहितसपर्यासुस्थ्योस्तान्यहानि।

टिप्पणी

स्मरसि सरसनीरां तत्र गोदावरीं वा
स्मरसि च तदुपान्तेष्वावयोर्वर्तनानि।।26।।

किं च,

किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्तियोगा
दविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण।
अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णो
रविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत्।।27।

अन्वय-

लक्ष्मण अयम् अविरलानोकहनिवहनिरन्तरस्निग्धनील- परिसरारण्यपरिणद्धगोदावरामुखरकन्दरः सन्ततम् अभिष्यन्दमानमेघमेदुरितनीलिमा जनस्थानमध्यगो प्रस्रवणो नाम गिरिः।

सुतनु तस्मिन् पर्वते लक्ष्मणेन प्रतिविहितसपर्यासुस्थयोः (आवयोः) तानि अहानि स्मरसि (अथवा) तत्र सरसनीरां गोदावरीं स्मरसि (तथा च) तदुपान्तेष आवयोः वर्तनानि च स्मरसि।।26।।

किं च, आसत्तियोगात् किमपि मन्दम् अविरलितकपोलम् अक्रमेण जल्पतोः, अषिथिलपरिम्भव्यापृतैकदोष्णोः अविदितगतयामा रात्रिः एवं व्यरंसीत्।।27।।

अन्वयार्थ-

लक्ष्मण- अयम्-यह, अविरलानोकहनिवह निरन्तरस्निग्धनील परिसरारण्यपरिणद्धगोदावरा **मुखरकन्दरः** -सघन पादपावलियों से निरन्तर स्निग्ध तथा श्यामवर्ण वाले वन के भागों से युक्त गोदावरी की तरंगों से आस्फालित होने के कारण मुखरित गुफाओं वाला तथा सन्ततम्- लगातार अभिष्यन्दमानमेघमेदुरितनीलिमा- बरसने वाले मेघों से और भी अधिक नीलिमा धारण करने वाला, जनस्थानमध्यगो- जनस्थान के मध्य भाग में स्थित, प्रस्रवणो नाम गिरि 'प्रस्रवण'- नाम का पर्वत है।

सुतन-सुन्दरित तनु, तस्मिन् पर्वते- उस 'प्रस्रवण' पर्वत में, लक्ष्मणेन - लक्ष्मण के द्वारा, प्रतिविहितसपर्यासुस्थयोः (आवयोः)- दी गई सेवा से प्रसन्न हम दोनों के, तानि अहानि- उन सुखमय दिनों का, तत्र सरसनीरां गोदावरीं- निर्मल जल वाली गोदावरी नदी का, तदुपान्तेषु आवयोः वर्तनानि च- और उनके किनारे पर हमारे विहार का स्मरसि -स्मरण करती हो या (नही)

किं च- और भी, आसत्तियोगात् किमपि मन्दम् -जहाँ पास-पास कपोल से कपोल सटाकर तथा अविरलितकपोलम्- परस्पर एक दूसरे की अक्रमेण जल्पतोः, अशिथिलपरिम्भव्यापृतैकदोष्णो- भुजाओं के दृढ़ आलिंगन में बन्ध कर धीरे-धीरे, अविदितगतयामा रात्रिः एवं व्यरंसीत -इधर-उधर की बाते करते हुए विना पता चले हम दोनों की रात ही बीत जाया करती थी।

व्याख्या:-

लक्ष्मण चित्र में जनस्थान नामक अरण्य में स्थित 'प्रस्रवण' नामक पर्वत को देखकर उसके प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करते हैं। यह पर्वत धनारण्य से परिपूरित है। इस पर्वत में गोदावरी नदी प्रवाहित होती थी। उसके किनारे पर श्यामलवन राजा शोभायमान था। पर्वत की कन्दराएं भी नदी के कल कल रव से मुखरित थी। मेघ निरन्तर वर्षा करते हुए पर्वत के ऊपर विद्यमान पादप समूह को ओर स्निग्ध करते थे।

यहाँ राम चित्र को देखकर प्रस्रवण पर्वत में उनका जीवन कैसा था, उसका स्मरण करते हैं। जब दोनों उस पर्वत पर थे तब भाई लक्ष्मण निरन्तर उनकी सेवा करते थे। निवास करते हुए उन दोनों को कोई कष्ट नहीं था। वे दोनों सुख से वहां दिनों को व्यतीत कर रहे थे। उसी पर्वत में जल से परिपूर्ण गोदावरी नदी बहती थी। राम और सीता प्राय: उस नदी के किनारे भ्रमण करते थे। कभी-कभी वहां बैठकर वार्तालाप करते थे। चित्र में उस पर्वत को देखकर राम को यह सब कुछ याद आता है। सीता वह सब कुछ स्मरण करती है या नहीं यह उससे पूछते है। इस प्रकार कथोपकथन से उनके चित्र दर्शन में प्रवृत होते है।

इस प्रकार कभी कभी वे दोनों गोदावरी नदी के किनारे आकर वार्तालाप करना प्रारम्भ करते। वार्तालाप काल में उनकी रात्रि शीघ्र ही चली जाती। अर्थात् दोनो परस्पर वार्तालाप में मग्न हो जाते थे कि उनको समय ज्ञान भी नहीं रहता। इस प्रकार वनवास काल में उनके सुखपूर्वक दिन व्यतीत हुए।

व्याकरण विमर्श-

परिणद्ध- परिपूर्वकात् नह्धातो: क्तप्रत्यये परिणद्ध: इति रूपम्।

मुखर- मुखशब्दात् रप्रत्यये मुखर: इति रूपम्, स्वमुखकुञ्जेजभ्यो वक्तव्यम् इति वर्तिकेन रप्रत्यय:।

अभिष्यन्दमान- अभिपूर्वकात् स्यन्द्धातो: शानच्प्रत्यये अभिष्यन्दमान: इति रूपम्।

नीलिमा- नीलस्य भाव:, नीलशब्दात् इमनिच्प्रत्यये नीलिमा इति रूपम्।

प्रतिविहितसपर्यासुस्थयो- प्रतिविहितसपर्यया सुस्थयो: प्रतिविहितसपर्यासुस्थयो: इति तृतीयातत्पुरुष:।

आसत्तियोगात्- आङ्पूर्वकात् सद्-धातो: क्तिन्प्रत्यये विभक्त्यादिकार्ये आसत्ति: इति रूपम्। **आसत्ते:** योग: आसक्तियोग:, तस्मात् आसक्तियोगात् इति षष्ठीतत्पुरुष:।

व्यरंसीत्- विपूर्वकात् रम्-धातो: लुङ्लकारे प्रथमपुरुषैकवचने व्यरंसीत् इति रूपम्।

छन्द- स्मरसित सुतनु एवं किमपि किमपि - इस दोनों श्लोको में मालिनी छन्द है।

अलंकार विमर्श-

1. स्मरसित सतनु श्लोक में एकस्य त्वम् इस कर्ता का स्मरसि क्रिया से संबंध होने के कारण दीपक अलंकार है जिसका लक्षण- 'अथ कारकमेकं स्यादनेकासु क्रियासु चेत्'

पाठगत प्रश्न 15.4

13. प्रस्रवण पर्वत कहां था?

14. वे दोनों किस नदी के किनारे भ्रमण करते थे?

15. रात्रि कैसे व्यतीत होती है?

16. वे दोनों कैसे वार्तालाप करते थे?

17. व्यरसीत में धातु एवं लकार बताइए।

टिप्पणी

15.6 मूलपाठ

लक्ष्मण- एषा पंचवटयां शूर्पणखा।

सीता- हा अज्जउत्त, एत्तिअं दे दंसणं। (हा आर्यपुत्र, एतावत् ते दर्शनम्।)

राम- अयि विप्रयोगत्रस्ते, चित्रमेतत्।

सीता- जहा तहा होदु। दुज्जणो असुहं उप्पदेइ। (यथा तथा भवतु। दुर्जनः असुखमपुत्पादयति।)

रामः हन्त, वर्तमान इव मे जनस्थानवृत्तन्तः प्रतिभाति।

लक्ष्मण- **अथेदं रक्षोभिः कनकहरिणच्छद्मविधिना**
तथा वृत्तं पापैर्व्यथयति यथा क्षालितमपि।
जनस्थाने शून्ये विकलकरणैरार्यचरितै
रपि ग्रावा रोदित्यपि दलतित वज्रस्य हृदयम्।।28।।

अन्वय-

लक्ष्मण- एषा पंचवटयां शूर्पणखा।

सीता- हा आर्यपुत्र, एतावत् ते दर्शनम्।

राम- अयि विप्रयोग=स्ते, एतत् चित्रम्।

सीता- यथा तथा भवतु। दुर्जनः असुखमुत्पादयति।

राम- हन्त, वर्तमान इव मे जनस्थानवृत्तान्तः प्रतिभाति।

लक्ष्मण- अथ पापैः रक्षोभिः कनकहरिणच्छद्मविधिना इदं तथा वृत्तं यथा क्षालितम् अपि व्यथयति। शून्ये जनस्थाने विकलकरणैः आर्यचरितैः ग्रावा अपि रोदिति वज्रस्य (अपि) दलित हृदयम्।।28।।

अन्वयार्थः-

लक्ष्मण- एषा-यह, पंचवटयां शूर्पणखा -पंचवटी में शूपर्णखा विवाद का दृश्य है।

सीता- हा आर्यपुत्र, एतावत् ते दर्शनम् -बस यही तक आपका दर्शन था (इसके बाद मेरा हरण कर लिया गया था।)

राम- अयि विप्रयोगत्रस्ते -अरे यह तो तुम्हार वियोग है। एतत् चित्रम्- यह तो चित्र है (घबराओ मत)

सीता- यथा तथा भवतु -चाहे जो हो, दुर्जनः असुखमुत्पादयति- दुर्जन अनिष्ट उत्पन्न करता ही है।

राम- हन्त, वर्तमान इव मे जनस्थानवृत्तान्तः प्रतिभाति-हां मुझे तो जनस्थान का वृतान्त प्रत्यक्ष सा लग रहा है।

लक्ष्मण- अथ -तदनन्तर, पापैः रक्षोभिः- उन नीच राक्षसों ने, कनकहरिणच्छद्मविधि ना- सुवर्ण मृग के छल से, इदं तथा वृत्तं यथा क्षालितम् अपि व्यथयति- ऐसा दुष्कर्म किया जो कि प्रतिकार किये जाने पर भी हमको पीडित कर रहा है। शून्ये जनस्थाने- उस निर्जन जन स्थान में, विकलकरणैः आर्यचरितैः - विकल इन्द्रियो वाले आर्य के चरित्रों से मूर्छा आदि व्यापारों से, ग्रावा अपि रोदिति वज्रस्य (अपि) दलित हृदयम्- एक बार तो पत्थर भी रो उठता है। और वज्र का हृदय भी टुकड़े हो जाता है।

व्याख्या-

लक्ष्मण चित्र में पंचवटी में शूपर्णखा को दिखाता है। तब सीता अशुभ को देखना नहीं चाहती हुई, राम को कहती है कि इतने तक ही चित्र दर्शन हो। तब राम सीता को कहते हैं यह चित्र है वास्तविक वियोग नहीं है। चिन्ता मत करो। तब सीता कहती है जैसे किसी भी प्रकार से दुर्जन तो दुःख का ही कारण होता है। उसके बाद लक्ष्मण चित्र को देखकर वर्णन करते हैं जब सुवर्ण मृग के छल से सीताहरण राम द्वारा किया गया तब राम का व्यवहार देखकर ग्रावा (पत्थर) भी रोता था। उसके क्रन्दनादि को सुनकर कठोर वज्र का भी हृदय टूट जाता है।

व्याकरण विमर्शः-

पञ्चवटी- पञ्चानां वटानां समाहारः इति विग्रहे निष्पन्नस्य द्विगुसंज्ञकस्य पञ्चवटशब्दस्य अकारान्तत्वाद्'' अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्टः'' इति वार्तिकेन स्त्रीलिङ्ग ततः ङीप्।

छन्द- अथेदमिति श्लोके शिखरिणीछन्दः। तस्य लक्षणं तावत्- ''रसै रुद्रेश्छिन्ना यमनभसलाः गः शिखरिणी'' इति।

अथदेम्- इस श्लोक में शिखरिणी छन्द है उसका लक्षण है।

रसै रुदैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी

पाठगत प्रश्न 15.5

18. दुर्जन क्या उत्पन्न करते है?

19. सीताहरण कैसे राक्षस ने किया?

20. रामचरित से क्या-क्या होता है?

पाठसार

इससे आगे सीता शृंगवेरपुर में रामलक्ष्मण के जटाबन्धन के चित्र को देखती है। उसके बाद लक्ष्मण राम की प्रशंसा करता हुए कहते हैं। इक्ष्वाकुवंशीय राजा वार्धक्य काल में सम्पत्ति आदि को पुत्रों को समर्पित करके वानप्रस्थ के व्रत का आचरण करते हैं। इसका श्रीराम ने बाल्य-काल में आचरण किया। तदनन्तर सीता चित्र में पुण्य सलिला भागीरथी गंगा को देखती है। राम कहते हैं कि बहु काल पूर्व सगर नामक एक राजा ने अश्वमेध यज्ञ किया। उसके अश्वमेध यज्ञ के अश्व को इन्द्र कपट से चुराकर गुप्त स्थान पर स्थापित किया। अश्व के बिना यज्ञ की समाप्ति नहीं होगा। अत: सगर के 60 हजार पुत्रों ने अश्व का अनुसन्धान करते हुए पृथ्वी को खोदते हुए महर्षि कपिल के क्रोध से भस्मीभूत हो गये। भागीरथि जल के स्पर्श से ही वे पुन: उद्धार को प्राप्त होंगे। ऐसा जानकर बहुत काल के बाद सगर के प्रपौत्र भगीरथ ने कठोर तपस्या करके भागीरथी को भूलोक पर लाये। उसके जल से उनका उद्धार किया। यही भागीरथी रघुवंश की देवी है। अत: राम उसको उद्देश्य करके प्रणाम करते हैं।

उसके बाद लक्ष्मण चित्र में यमुना नदी के तट पर अवस्थित श्याम नामक वटवृक्ष को दिखाते हैं। जो वृक्ष उनके चित्रकुटवन गमन के समय मार्ग में प्राप्त हुए। राम उस वृक्ष के नीचे घटित वृतान्त का वर्णन करते हैं। मार्ग के परिश्रम से थकी सीता राम के हृदय पर राम से दृढ़ आलिंगन करती हुए सोती है।

उसके बाद लक्ष्मण विराध राक्षस के वृतान्त को दिखाता है। किन्तु सीता उस चित्र को न देखकर दक्षिणारण्य में उनके प्रवेश के चित्र को देखना प्रारम्भ करती है। यहाँ श्री राम ने उनकी धूप दूर करने के लिए तालवृन्त को छाता बनाया था। उसके बाद राम विन्ध्यारण्य का वर्णन करते हैं। उस तपोवन में वृक्षों के नीचे वानप्रस्थाश्रमी और गृहस्थ मुष्ठिभर अन्न के खाते हुए अतिथि सरकार परायण मुनि जन पत्नियों के साथ निवास करते हैं।

उसके बाद लक्ष्मण प्रस्रवण नामक पर्वत को दिखाता है। कि यह पर्वत जनस्थान नामक वन में था। यह पर्वत धनारण्य से परिपूर्ण था। इस पर्वत में गोदावरी नदी बहती थी। इसके किनारे पर श्यामल वनराज शोभायमान थे। पर्वत की कन्दरा, भी नदी की कल कल रव से मुखरित हुए थी। मेघों लगातार वर्षा के कारण पर्वत के ऊपर विद्यमान पादप समूह स्निग्ध हो गये थे। उसके बाद राम की गोदावरी नदी के किनारे पर उनके भ्रमण लक्षण द्वारा वार्तालाप रत गोदावरी के किनारे सम्पूर्ण रात्रि को व्यतीत करते थे यह भी स्मरण है। इस प्रकार गोदावरी वृतान्त समाप्त होता है।

टिप्पणी

उसके बाद पंचवटी में शूर्पणखा वृतान्त को लक्ष्मण देखते है। परन्तु वहां सीता का आग्रह नहीं है। क्योंकि चित्र को देखकर सीता खिन्न होती है। दुर्जन किसी भी प्रकार दु:ख को ही उत्पन्न करता है उसके बाद सीता हरण के बाद राम के क्रन्दनादि व्यापार से ग्रावा (पत्थर) भी रोता है और वज्र का हृदय भी विदीर्ण होता है इस प्रकार संक्षेप में पाठ का सार प्रस्तुत है।

आपने क्या सीखा

- राम सीता के विशेष गुण।
- भागीरथी, श्यामवृक्ष, प्रस्रवण पर्वत विन्ध्यारण्य के बारे में जाना।
- राम सीता के सुदृढ़ प्रेम को जाना।
- दीर्घ पदों का विग्रह एवं समासों को जाना।

पाठन्तप्रश्नः-

1. गंगामन वृतान्त, सविस्तार वर्णन करो।
2. अलसलुलित श्लोक का अपने अनुसार वर्णन करो।
3. उनका दक्षिणारण्य में प्रवेश कैसे था।
4. प्रस्रवण पर्वत का वर्णन करो।
5. मुनि विन्धयारण्य में कैसे जीवन व्यतीत करते थे।
6. राम और सीता ने नदी गोदावरी के किनारे रात्रि कैसे व्यतीत की।
7. किमपि, किमपि इस श्लोक की व्याख्या करो।
8. अथेद रक्षोभि - श्लोक की व्याख्या करो।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

15.1

1. जटावन्धन श्रृंगवेरपुर में हुआ।
2. वार्धक्यकाल में।
3. भागीरथी का जल निर्मल व पवित्र था।
4. सगर प्रपोत्र भागीरथ।
5. वह सीता अरुन्धती के समान मंगल अनुध्या हो यह श्रीराम की प्रार्थना है।

टिप्पणी

15.2

6. श्याम वट वृक्ष।
7. कालिन्दी नदी के किनारे।
8. मार्गगमन के परिश्रम के कारण आलस्य युक्त है।
9. सीता अपने अवयवों को राम के वक्ष पर रखकर सोई।

15.3

10. विराधसंवाद था।
11. वैखानसाश्रित वृक्ष थे।
12. मुनि मुष्ठि भर नीवार धान्य खाते थे।

15.4

13. प्रस्रवण पर्वत जनस्थान नामक स्थान पर था।
14. वे दोनों गोदावरी नदी के किनारे भ्रमण करते थे।
15. रात्रि वार्तालाप करते हुए व्यतीत होती थी।
16. वे दोनों बिना काम से वार्तालाप करते थे।
17. वि उपसर्ग रम् धातु लुङ्-लकार प्रथमपुरुष एकवचन में 'व्यरंसीत्' रूप बनता है।

15.5

18. दुर्जन दु:ख ही उत्पन्न करता है।
19. सुवर्णमृग के छल से राक्षस ने हरण किया।
20. रामचरित से ग्रावा (पत्थर) भी रोये, वज्र का हृदय भी टूटा।

कादम्बरी में शुकनासोपदेश

भूमिका

कवि का कर्म काव्य होता है। वह काव्य लोगों के कानों में अमृतधारा प्रवाहित करता है। वर्णनीय के साथ ऐकात्म्य व अनुभवता सहृदयों के मन में आनंद और उल्लास को पैदा करता है। काव्य कान्तासम्मित उपदेश (प्रिया के उपदेश) से सब लोगों के मन में आह्लाद पैदा करता है। उनमें महाकाव्यादि दर्शन योग्य होने से दृश्य और श्रवण योग्य होने से श्रव्य काव्य होता है। पुनः श्रव्यकाव्य गद्य और पद्य भेद से दो प्रकार का होता है। उनमें छन्दोबद्ध पद्य एवं वृत्त वन्धोज्झित अर्थात् छन्द रहित गद्य होता है।

कुछ विद्वानों के मत में सर्वप्रथम पद्य काव्य का उद्भव हुआ। इसके बाद में गद्य काव्य का। गद्यकाव्य की संरचना में दृढ़ता की अत्यावश्यकता है। इस कारण यह उक्ति प्रसिद्ध है। गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति। गद्यकाव्य के भी कथा और आख्यायिका दो भेद हैं। उनका लक्षण है – कथा कल्पितवृतान्ता सत्यमाख्यायिका स्मृता।

गद्य काव्य निर्माण परम्परा में बाणभट्ट ही प्रधान आचार्य हैं इसमें कोई संशय नहीं है। उनके द्वारा विरचित कादम्बरी गद्यकाव्य का गद्यकाव्यों में महान स्थान है। इसमें वर्णन सौन्दर्य अनुपम है। गद्य काव्य में सर्वत्र ही अलंकारों की मधुर झंकार सहृदयों के मन में परमोल्लास पैदा करता है और हृदय को विकसित करता है। कादम्बरी मदिरा को कहते है। सुमधुर यह कादम्बरी रूपी मदिरा रस सम्प्रदायी सहृदयजनों को आनन्द और उल्लास देने वाली है। अतः इस ग्रन्थ का नाम सार्थक है। अतएव बाणभट्ट के पुत्र पुलिन्द भट्ट की उक्ति है – कादम्बरीरसभरेण समस्त एवं मत्तो न किंचितदपि चेतयते जनोखयम्। इस ग्रन्थ के पूर्व भाग का निर्माण करके बाणभट्ट दिवंगत हो गये तब उनके पुलिन्द भट्ट ने उत्तर भाग की रचना की।

कादम्बरी कथा है या आख्यायिका इस विषय में विद्वानों में मत भेद है। बहुत से विद्वान इसे कथा मानते है और कुछ आख्यायिका।

कादम्बरी के कथा भाग के एक अंश शुकनासोपदेश इस पुस्तक का प्रतिपाद्यमान विषय है। शुकनासोपदेश कथा के पूर्व भाग का संक्षेप कथा प्रवाह निम्न प्रकार से है-विदिशानगरी में राजा शूद्रक के लिए एक चाण्डाल कन्या मनुष्यवाणी में बोलने वाले शुक (तोता) देती है। उस पक्षी शुक के वाक् कौशल से विस्मित होकर राजा शूद्रक उससे परिचय पूछते हैं। वह पक्षी भी राजा शूद्रक के सभी जन्म जन्मान्तरों के वृतान्त को सुनाता है। उसके बाद उस शुक ने राजा से कहा कि मेरे पिता व्याध (शिकारी) के आक्रमण से मारे गये एव वह स्वयं भूमि पर गिर गया। उसके बाद महर्षि जाबालि के पुत्र उसे आश्रम ले गये। उस पक्षी को देखकर महर्षि जाबालि ने कहा कि यह अपने दुष्कर्मों का फल भोग कर रहा है। वहाँ आश्रम में उपस्थित सभी बालकों ने महर्षि जाबालि से उस शुक के बारे में पूछा। उसके बाद जाबालि ऋषि उस शुक के जन्म जन्मान्तरों के विषय में कहते हैं कि-

टिप्पणी

अवन्ति देश में एक उज्जयनी नामक स्थान था वहां तारापीड नामक राजा विलासवती नामक पत्नी एवं शुकनास नामक अमात्य के साथ राज्य करता था। शुकनास की पत्नी मनोरमा एवं रानी विलासवती के कोई सन्तान नहीं थी। सन्तान प्राप्ति के लिए मनोरमा एवं विलासवती ने व्रत को धारण किया। उसके फलस्वरूप दोनों को पुत्र की प्राप्ति हुई। राजा के पुत्र का नाम चन्द्रापीड़ एवं मंत्री के पुत्र का नाम वैशम्पायन रखा। उसके बाद वे दोनों अपने द्वार से अध्ययन के लिए गुरू के पास गये। वहाँ उन्होंने शास्त्र एवं शस्त्र विद्या प्राप्त की। शिक्षा प्राप्त करने के बाद राज्य में आकर चन्द्रापीड का यौवराज्यभिषेक किया गया। शुकनास के राज्याभिषेक के अवसर पर मंत्री शुकनास ने चन्द्रापीड़ को राजकार्यादि के परिचालन हेतु उपदेश दिया। यह उपदेश कादम्बरी के शुकनासोपदेश के नाम से प्रसिद्ध है।

16

शुकनासोपदेश-यौवनस्वभाव

इस पाठ में ''शुकनासोपदेश एवं समतिक्रामत्सु'' यहाँ से आरम्भ होकर 'तन्द्राप्रदा लक्ष्मी:' तक के अंग का वर्णन है। यहां शुकनास चन्द्रापीड़ को उपदेश देते है। वह युवास्वस्था के विकार सम्पत्ति का अहंकार इत्यादि बहुत से विषयों का चन्द्रापीड़ के प्रति उपदेश देता है। वह भाग यहां समालोच्य है।

उद्देश्य-

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- बाणभट्ट की गद्यकाव्य रचना शैली को समझ पाने में;
- चन्द्रापीड के राज्याभिषेक वृतान्त को जान पाने में;
- यौवन का प्रभाव, लक्ष्मी का मद और अनर्थ परम्परा को समक्ष पाने में;
- सज्जन और दुर्जन के व्यवहार को व्याख्यापित कर पाने में;
- यहां पाठ में स्थित पदों के अन्वयार्थ को समझ पाने में और;
- दीर्घ पदों के समास को समझ पाने में।

16.1 मूलपाठ

एवं समतिक्रामत्सु केषुचिद् दिवसेषु राजा चन्द्रापीडस्य यौवराज्याभिषेकं चिकीर्षु:

टिप्पणी

प्रतीहारानुपकरणसम्भार संग्रहार्थमादिदेश। समुपस्थितयौवराज्याभिषेकंच तं कदाचिद्दर्शनार्थमागतमारूढविनयमपि विनीततरमिच्छन् कर्तुं शुकनासः सविस्तरमुवाच।

व्याख्या-

एवम् - पूर्वोक्तविधि से, दिवसेषु - दिनों को, समतिक्रामत्सु - व्यतीत करने में, राजा - नृप तारापीड-, चन्द्रापीडस्य - अपने पुत्र चन्द्रपीड के, यौवराज्याभिषेकम् - युवराज पद पर अभिषेक, चिकीर्षु - करने का इच्छुक, प्रतीहारान् - द्वारपालों को, उपकरण संभार संग्रहार्थम् - अभिषेक की साम्रगी के समूह को संग्रह करने के लिए, आदिदेश - आदेश दिया।

समुपस्थितयौवराज्याभिषेकं - सभी विद्यमान या उपस्थित यौवराज्य के अभिषेक को, तम् - उस, चन्द्रापीडम् - चन्द्रापीड को, कदाचित - किसी भी समय, दर्शनार्थम् - देखने के लिए, आगतम् - आये हुए, आरुढ़विनयम् - विनय से मुक्त, अपि भी -, विनिततरम् - अतिशय से विनय शीलता को, इच्छन् - चाहता हुआ, शुकनासः - राजा तारापीड का मन्त्री या प्रधान अमात्य, सविस्तारम् - विस्तार के साथ, उवाच - बोला।

सरलार्थ-

उचितकाल आने पर राजा तारापीड अपने पुत्र चन्द्रापीड को युवराज पद पर स्थपित करना चाहता था। अतः अभिषेक की सामग्री संग्रह करने का सेवकों को आदेश दिया। यौवराज्यभिषेक से पूर्व में शुकनास को देखने के लिए चन्द्रापीड गया। तब शुकनास ने चन्द्रापीड अतीव विनय सम्पन्न है, यह देखकर भी उसे विनय बढ़ाने के लिए विस्तार से कहा।

व्याकरणविमर्श-

क) समासः

1. यौवराज्याभिषेकम् - यौवराज्यस्य अभिषेकः यौवराज्याभिषेकः, तम् इति षष्ठीतत्पुषसमासः।
2. समुपस्थितयौवराज्याभिषेकम् - यौवरात्यस्य अभिषेकः यौवराज्याभिषेकः इति षष्ठीतत्पुषसमासः। समुपस्थितः यौवराज्याभिषेकः यस्य स समुपस्थितयौवराज्याभिषेकः, तं समुपस्थितयौवराज्याभिषेकम् इति बहुव्रीहिसमासः।
3. आरुढविनयम् - आरूढः विनयः यस्य स आरूढविनयः, तमिति बहुव्रीहिसमासः

ख) सन्धिविच्छेदः

समुपस्थितयौवराज्याभिषेकंच - समुपस्थितयौवराज्याभिषेकम्+ च।

कोशः -

1. ''राजा राट् पार्थिवक्ष्माभृन्नृपभूपमहीक्षितः।'' इत्यमरवचनात् राजन्-शब्दस्य राट्, पार्थिवः, क्ष्माभृत्, नृपः, भूपः, महीक्षित् इत्येते पर्यायाः।
2. ''प्रतीहारो द्वारपालद्वास्थद्वास्थितदर्शकाः।'' इत्यमरवचनात् प्रतीहारशब्दस्य द्वारपालः, द्वास्थः,

द्वास्थितः, दर्शकः इत्येते पर्यायाः। को नाम प्रतीहार इति चाणक्यसंग्रहे -

''इंगिताकारतत्त्वज्ञो बलवान् प्रियदर्शनः।
अप्रमादी सदा दक्षः प्रतीहारः स उच्यते।।'' इति।

पाठगतप्रश्न 16.1

1. चन्द्रापीड किसका पुत्र था?
2. कौन किसका यौवराज्याभिषेक करना चाहता था?
3. राजा ने उपकरण संग्रह के लिए किसे आदेश दिया?
4. चन्द्रापीड कब आया?
5. तारापीड के प्रधान मन्त्री का क्या नाम था?
6. शुकनास को किसलिए उपदेश दिया?
7. कादम्बरी कथा है या आख्यायिका?

16.2 मूलपाठ

''तात, चन्द्रापीड, विदितवेदितव्यस्य अधीतसर्वशास्त्रस्य ते नाल्पमप्युपदेष्टव्यमस्ति। केवलंच निसर्गत एव अभानुभेद्यमरत्नालोकोच्छेद्यम् अप्रदीपप्रभापनेयमतिगहनं तमो यौवनप्रभवम्। अपरिणमोपशमो दारुणो लक्ष्मीमदः। कष्टमनंजनवर्त्तिसाध्यमपरम् ऐश्वर्यतिमिरानधत्वम्। अशिशिरोपचारहायोऽतितीव्रो दर्पदाहत्वरोष्मा। सततममूलमन्त्रशम्यो विषमो विषयविषास्वादमोहः। नित्यमस्नानशौचवध्यो बलवान् रागमलावलेपः अजस्रमक्षपावसानप्रबोधा घोरा च राज्यसुखसन्निपातनिद्रा भवतीति, इत्यतः विस्तरेणाभिधीयसे।

व्याख्याः-

तत - पुत्र, चन्द्रापीड, विदित वेदितव्यस्य - जानने योग्य विषयों को जानने वाले, अधीतसर्वशास्त्रस्य - वेद पुराण आदि सभी शास्त्रों को पढ़ने वाले, ते - तुम्हारे लिए, अल्पम् - थोडा सा, अपि - भी, उपदेष्टव्यम् - उपदेश या कहने योग्य शास्त्रतत्व शेष, न अस्ति - नहीं है।

तर्हि - तो, उपदेश का आरम्भ, किमर्थ - किसलिए इस प्रश्न में उदय होता है तब कहते है।- केवलम् च - अर्थात् उपदेष्टव्यत्व के अभाव में भी उपदेश का प्रयोजन उत्पादन होता है। निसर्गतः- स्वभाव से ही, एव - ही, यौवन प्रभवम् - यौवन का प्रभाव जिसमें होता है। अर्थात् तारुण्योत्पन्न, तमः - अन्धकार अतिदुर्दमनीय, अभानुभेद्यम् - सूर्य से भी भेद्य नहीं, अरत्नालोकच्छेद्यम् - मणियों की कान्ति से भी दूर नहीं किया जाने वाला, अप्रदीपप्रभापनेयम्

टिप्पणी

– दीपक के प्रकाश या प्रभा से भी अपनेयम् – नहीं हटाया जाने वाला, अतिगहनम् – अत्यन्त गहनीय या दुर्दमनीय दुख का कारण होने से

लक्ष्मीमदः – लक्ष्मी धनसम्पत्ति के मद से उन्मत्त, अपरिणामोपशमः – अविद्यमान् परिणाम में, वृद्धावस्था में भी शान्त न होने वाला अर्थात् मादक पदार्थों के सेवन से होने वाला मद औषधादि से समय के साथ निवृत हो जाता है। परम् लक्ष्मीपद किसी भी प्रकार से निवृत नहीं होता, उसी प्रकार तारुण्य का मद जीवन के अन्त में भी स्थित रहता है। इसलिए अपरिणामोपशम कहा है। और वह, दारुण – भीषण है।

कष्टम् अनंजनवर्तिसाहयम् अपरम् ऐश्वर्यतिमिरान्धत्वम् – नितान्त दुखदायी काजल की सलाई से नहीं मिटने वाला अपरम् दूसरा धनसम्पति रुपी तिमिर से उत्पन्न होने वाला अन्धेरा है यहां अपरम् का अर्थ अन्धत्वरोग से भिन्न ऐश्वर्यातिमिरान्धत्वम् ऐश्वर्य सम्पद ही तिमिर है तिमिर संज्ञा नयनरोग की है, ऐश्वर्यतिमिर से अन्धत्व दर्शनशून्य होता है। अजंनवर्ति से साध्य अर्थात् नेत्रौषधि विशेष से निवारण विद्यमान है। अतः वह कष्ट या दुःख स्वरुप है। तिमिर नामक रोग तो अंजनवर्ती से उपशमित है। किन्तु वह नितान्त क्लेशकर होता है। तिमिर व्यधि से उत्पन्न दर्शन्शून्यत्व अंजनवर्ती आदि से निराकरण करने योग्य है। किन्तु सदसद् विवेक शून्यत्व रुप धनसम्पत्तितिमिरान्धत्व किसी प्रकार से निराकरण योग्य नहीं है। अतः दोनों में महान विषमता है। जैसा की अष्टाङ्गहृदय में कहा है–

रसेन्द्रभुजगौ तुल्यौ तयोस्तुल्यमथांजनम्।
ईषत्कर्पूर संयुक्तमंजनं तिमिरापहम्॥

अशिशिरोपचार हार्योऽतितीव्रो दर्पदाहज्वरोष्मा – चन्दन माला आदि शीतल कार्यकलापों से दूर नहीं किया जाने वाला अत्यन्त तीक्ष्ण सम्पत्ति के गर्व रुपी तेज बुखार की उष्णता है।, दर्प – सम्पत्ति का अहंकार या अभिमान ही दाहज्वर – तीव्रताप उसकी ऊष्मा उष्णत्व है, **अशिशिरोपचारहार्यः** – न शिशिरैः शीतल उपचार माला चन्दन आदि पदार्थ व्यापार से परिहार करने योग्य है। अत एव अतितीव्र है। अन्य प्रकार के ज्वर तो शीतलोपचार से निवारण योग्य होते है। परन्तु दर्पदाहज्वर की ऊष्मा का नहीं।

विषयिणाम्– आस्वादन करने वाले को, बध्नाति– बान्धता है वह विषय कहलाता है। स्रक्चन्दनवनितादि– पदार्थ विषय है वे ही अनर्थ के कारण होने से विष अर्थात् गरल है उनका जो आस्वादन या सम्भोग या उपयोग है उससे जो मोह या मूर्च्छा है वह विषय विषास्वादमोह कहलाता है। यह मूर्च्छा सतत अर्थात निरन्तर है तो अमूलमन्त्रगम्य है अर्थात् औषध मूल से मन्त्रों से और विषविनाश मन्त्रों से निवारण करने में शक्त अर्थात् समर्थ है उसके समान विषय अतीव तीव्र कठिन है जो निवारण करने में असमर्थ है।

रागमलावलेपः– राग विषयों की अभिलाषा है वह ही मल है उसके अवलेप को, अस्नानशौचवध्यः– न स्नान से, न मज्जन से, न शौच से, परिहार्य है वह नित्य एवं बलवान है। अन्य अवलेप स्नानादि से दूर हो सकते हैं किन्तु यह रागमलावलेव स्नानादि से दूर करने में समर्थ नहीं।

अजस्रमक्षपावसानप्रबोधाघोरा च राज्यसुखन्निपात निद्रा भवति इति, इत्यतः विस्तारेणमिधीयसे– राज्य के सुखानुभव स्वरुप सन्तिपात निद्रा ऐसी भयंकर होती है कि रात्रि के समाप्त होने पर

भी कभी चेतनता नहीं होती। अत: तुम्हें थोड़ा विस्तारपूर्वक कहता हूँ। राज्यसुख राष्ट्रशासन का आनन्द ही है, सन्निपातनिद्रा सुषुप्ति रुप है। रात्रि के अन्त मे प्रबोध अर्थात् जागरण होता है। अन्य इस निद्रा का निशा अन्त में जागरण होता है परन्तु राज्य सुख सन्निपातनिद्रा में तो प्रबोध अर्थात् जागरण नहीं होता अत: यह निद्रा अजस्र अर्थात् निरन्तर एवं भीषण होती है। अत: इसे विस्तार से कहना चाहिए।

सरलार्थ-

शुकनास चन्द्रापीड को कहता है कि चन्द्रापीड सभी शास्त्रों को पढ़ चुका है अत: उसके लिए उपदेश देने के लिए कुछ भी शेष नहीं है परन्तु युवा अवस्था में स्वभावत: ही जो तम अन्धकार उत्पन्न होता है उसे सूर्य भी विनाश करने में समर्थ नहीं है। प्रदीप अर्थात् दीपक का प्रकाश भी उसे दूर नहीं कर सकता। यह तम अतिगहन अतिशय दु:ख स्वरुप है।

धनसम्पत्ति का मद उपशमन योग्य नहीं है। मादक पदार्थो के सेवन से उत्पन्न मद औषधि आदि से समय के साथ नष्ट हो जाता है परन्तु लक्ष्मी का मद किसी प्रकार से नष्ट नहीं होता। ऐश्वर्य से जो अन्धत्व आता है उसका निकारण दुष्कर है। धन के अभिमान से उत्पन्न उष्णता है। उसका उपशमन चन्दनलेप आदि से भी नहीं होता, वह ऊष्णता अतितीव्र होती है। माला चन्दन और वनिता आदि से और विषय सम्भोग से जो मोह उत्पन्न होता है उस मोह का भी किसी औषधमूल या विनाशक मन्त्र से उपशमन नहीं होता। इस कारण वह मोह भी भयंकर है। विषयों में आसक्तिरुप मल का अवलेप गुरुतर है वह शुचिक्रिया से भी दूर करने में समर्थ नही होता।

राज्यसुख का जो अनुभव है वह महान निद्रा है अन्य प्रकार की निद्रा तो रात्रि की समाप्ति पर चली जाती है किन्तु वह निद्रा सरलता से नहीं जाती है। इस प्रकार से राज्य सुख, लक्ष्मी का मद और यौवन के मद का वर्णन शुकनास विस्तार से इन विषयों का वर्णन करते है।

व्याकरणविमर्श -

क) समास -

1. **विदितवेदितव्यस्य** - विदितं वेदितव्यं येन से इति बहुव्रीहिसमास:, तस्य विदितवेदितव्यस्य।
2. **अधीतसर्वशास्त्रस्य** - अधीतानि सर्वशास्त्राणि येन स इति बहुव्रीहिसमास:, तस्य अधीतसर्वशास्त्रस्य।
3. **अभानुभेद्यम्**- भानुना भेद्यं भानुभेद्यम् इति तृतीयातत्पुरुष:। न भानुद्यम् अभानुभेद्यम् इति नतंत्पुरुषसमास:।
4. **अरत्नालोकोच्छेद्यम्** - रत्नानाम् आलोक: रत्नालोक: इति षष्ठीतत्पुरुषसमास:। रत्नालोकेन उच्छेद्यं रत्नालोकोच्छेद्यम् इति तृतीयातत्पुरुषसमास:। न रत्नालोकोच्छेद्यम् अरत्नालोकोच्छेद्यम् इति नंतत्पुरुषसमास:।
5. **अप्रदीपप्रभापनेयम्** - प्रदीपस्य प्रभा प्रदीपप्रभा इति षष्ठीतत्पुरुष:। प्रदीपप्रभया अपनेयं प्रदीपप्रभापलेयम् इति तृतीयातत्पुरुष:। न प्रदीपप्रभापनेयम् अप्रदीपप्रभापनेयम् इति नंतत्पुरुष:।

टिप्पणी

6. **अक्षपावसानप्रबोधा** - क्षपाया: अवसानं क्षपावसानम् इति षष्ठीतत्पुरुष:। नास्ति क्षपावसाने प्रबोध: यस्यां सा अक्षपावसानप्रबोधा इति बहुव्रीहिसमास:।

ख) सन्धिविच्छेद -

1. **नाल्पमप्युपदेष्टव्यम्** - न+ अल्पमपि +उपदेष्टव्यम्।
2. **एवाभानुभेद्यम्** - एव + अभानुभेद्यम्।
3. **अशिशिरोपचारहार्योऽतितीव्र:** - अशिशिरोपचारहार्य: +अतितीव्र:।

अलंकार विमर्श :-

1. 'तात' वाक्य में काव्यलिंग अलंकार है। यहां उपदेष्टव्यत्वाभावम के प्रति विदित वेदितव्यस्य, अधीतसर्वशास्त्रस्य इन दो पदों के अर्थ का हेतु का वर्णन होने से काव्यलिंग है। उसका लक्षण है-

'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिंग निगद्यते'' इति।

2. 'केवलम् च इस वाक्य में अतिशयोक्ति, समुच्चय और काव्यलिंग इन तीन अलंकारों का अंग अंगी भाव होने से संकर अलंकार है। उसका लक्षण है -

'अंगांगित्वेडलंकृतीना तद्वदेकाश्रयस्थितौ।
सन्दिग्धत्वे च भवति संकररस्त्रिविध: पुन:॥

कोश:-

1. ''तातशब्दं प्रयुंजन्ति पूज्ये पितरि चात्मजे।'' इति नारदवचनात् तातशब्दस्य पूज्यार्थे जनकार्थे पुत्रार्थे च प्रयोगो भवति।
2. ''गहनं वनदु:खयो:। गह्वरं कलिले चाऽपि'' इति विश्वकाषात् गहनशब्दस्य वनार्थे दु:खार्थे च प्रयोगो भवति।

पाठगतप्रश्न 16.2

8. किसलिए चन्द्रापीड को उपदेश की आवश्यकता नहीं है?
9. यौवन दशा में उत्पन्न तम कैसा होता है?
10. धन से उत्पन्न नेत्र रोग कैसा है?
11. धन के अभिमान रुप से उत्पन्न उष्णता कैसी है?
12. स्रग्गादि विषय सम्भोग से उत्पन्न मोह कैसा है?

टिप्पणी

13. अरत्नालोकेच्छद्यम् - का विग्रह और समास लिखें?

14. नाल्पमप्युपदेष्टव्यम्'' का सन्धि विच्छेद कीजिए।

16.3 मूलपाठ

गर्भेश्वरत्वमभिनवयौवनत्वमप्रतिमरूपत्वममानुषशक्तित्वंचेति महतीयं खलु अनर्थपरम्परा सर्वा। अविनयानामेकैकम् अप्येषामायतनम्, किमुत समवायः। यौवनारम्भे च प्रायः शास्त्रजलप्रक्षालननिर्म्मलापि कालुष्यमुपयाति बुद्धिः। अनुज्झितधवलतापि सरागैव भवति यूनां दृष्टिः। अपहरति च वात्येव शुष्कपत्रम् समुद्भूतरजोभ्रान्तरतिदूरम् आत्मेच्छया यौवनसमये पुरुषं प्रकृतिः। इन्द्रियहरिणहारिणी च सततमतिदुरन्तेयम् उपभोगमृगतृष्णिका नवयौवनकषायितात्मनश्च सलिलानीव तान्येव विषयस्वरूपाण्यास्वाद्यमानानि मधुरतराण्यापतन्ति मनसः। नाशयति च दिंमोह इवोन्मार्गप्रवर्त्तकः पुरुषमत्यासंगो विषयेषु।

व्याख्याः-

गर्भेश्वरत्वम् -गर्भ या शैशव अवस्था से ही ईश्वर व धनशाली प्रभुत्व, अभिनवयौवनत्वम् - नवीन यौवन है जिसका अभिनवयौवन उसका भाव, अप्रतिमरुपत्वम् - अद्वितीय रुप सौन्दर्य है जिसका अप्रतिमरुप उसका भाव, अमानुशक्तिम् - अमानवी या अलौकिक शक्ति या शारीरिकसामर्थ्य है जिसका उसका भाव, इयम् - यह वर्ण्यमान, महती - महान या गसीयसी, अनर्थ परम्परा - अनिष्टकारी परम्परा सभी के मत से है। जैसा कि नारायण पण्डित रचित हितोपदेश में कहा है-

यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वभविवेकिता।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्ट्यम्॥

इस समय वर्णित गर्भेश्वरत्वादी के मध्य में एक एक भी अविनयों और दुश्चेष्टाओं का घर या स्थान है, समवाय चतुष्ट्य समूह रुप है, तो कहना ही क्या है। अर्थात् ये सभी विनाश के कारण है।

यौवनारम्भे-युवावस्था के आरम्भ में शास्त्रों के जल से प्रक्षालन करने पर भी कुलषता ही प्राप्त होती है। अर्थात् आन्वीक्षिकी आदि विद्या रुप जल से निर्मल होने पर भी इनकी बुद्धि बहुश कालुस्यता को प्राप्त कर लेती है। ?

अनुज्झितधवलतापि सरागैव भवति न्यूना दृष्टिः-अनुज्झित अर्थात् अत्यक्ता धवल या शुक्लता है जिससे वैसी भी तरुणों की दृष्टि सौन्दर्य आदि में अनुरागसहित ही होती है।

यौवनसमये- युवावस्था के समय में समुद्भूत रजोभ्रान्तिः - रजोगुण से उत्पन्न भ्रान्ति अर्थात् मनुष्य के स्वभाव में भ्रम उत्पन्न करता है। वायु अर्थात् आंधी जैसे धूलि को उड़ाकर ले जाती है। उसी प्रकार वह प्रकृति या स्वभाव मनुष्य को इच्छानुसार अगम्यस्थान पर खीच ले जाती है। इन्द्रियाणी - इन्द्रिय रुपी हरिणों को हरने वाली यह विषय भोग रुपी मृगतृष्णा परिणाम में सदा दुःख देने वाली है। हरिणों का सूर्य की किरणों से तप्त बालुका में जलबुद्धि होने से दौड़ने वाले के समान पुरुषों की भी विषयभोगतृष्णा से दुष्परिणामदायी होता है।

टिप्पणी

नवयौवनकषायितात्मन - नवयौवन से कषायित अर्थात् विकृत आत्मा स्वरुप है, जिसका उसके समान मन को वे ही पूर्वानुभूति होती है। अर्थात् कषाय रसयुक्त जिह्वा से जल वैसा मधुर नहीं होने पर भी जिस प्रकार अत्यन्त मधुर प्रतीत होता है। उसी प्रकार नवयौवन के वशीभूत काम क्रोध आदि से युक्त चित में कामिनी कांचन आदि प्रसिद्ध सब योग्य वस्तु अनुभूतमान होने पर आपातत बहुत ही मधुर प्रतीत होती है।

जिस प्रकार दिग्भ्रम मनुष्य को विपरीत मार्ग में ले जाकर नष्ट कर देता है। माला कांचनादि भोग्य पदार्थ में अत्यन्त आसक्ति भी उसी प्रकार मनुष्य को कुमार्ग में ले जाकर विनष्ट कर देती है।

सरलार्थ-

गर्भवास काल से ही प्रभुत्व नवीन युवावस्था, अद्वितीयरूप सौन्दर्य और अलौकिक शक्ति, अनिष्ट के महान मूल है। इनमें से एक एक भी अविनय का निवास स्थान है समूहरूप में हो तो कहना ही क्या है। यौवन के प्रारम्भ में बुद्धि शास्त्ररुपी जल से निर्मल होने पर भी कलुषता को प्राप्त होती है। युवकों की दृष्टि राग से युक्त होती है। यौवनकाल में रजोगुण के कारण लोगों के स्वभाव में भ्रम उत्पन्न करती है। कुमार्ग में ले जाने वाली होती है। विषयों में अति आसक्ति होती है। इन्द्रियरुप मृग के समान सदैव हरण करके दूर ले जाती है। नवयौवन के कारण धन स्त्री आदि योग्य वस्तुओं का आस्वादन मधुर मानते है। धन स्त्री आदि में आसक्ति भी मनुष्यों को कुमार्ग पर चलाकर विनाश करती है। ये सभी त्याज्य है यही शुकनास का तात्पर्य है।

व्याकरणविमर्श-

क) समासः -

1. **शास्त्रजलप्रक्षाननिर्म्मला** - शास्त्रमेव जलं शास्त्रजलम् इति कर्मधारयसमासः। तेन प्रशालनं शास्त्रजलप्रशालनमिति तृतीया-तत्पुरुषसमासः। शास्त्रजलप्रक्षालनेन निर्म्मला शास्त्रजलप्रक्षालन-निर्म्मला इति तृतीयातत्पुरुषसमासः।
2. **अनुज्झितधवलता** - न उज्झिता अनुज्झिता इति नंतत्पुरुषः। अनुज्झिता धवलता यथा सा अनुज्झितधवलता इति तृतीयातत्पुरुषसमासः।
3. **नवयौवनकषायितात्मनः** - नवयौवनेन कषायितः नवयौवनकषायितः इति तृतीयातत्पुरुषसमासः। नवयौवनकषायितः आत्मा यस्य सः नवयौवनकषायितात्मा इति बहुव्रीहिसमासः, तस्य नवयौवनकषायितात्मनः।

ख) सन्धिविच्छेदः -

1. अमानुषशक्तित्वच्च - अमानुषशक्तित्वम् +च।
2. खल्वनर्थपरम्परा - खलु+ अन्वर्थपरम्परा।
3. एकैकमप्येषाम् - एकैकम् +अपि+ एषाम्।

अलंकार विमर्श -

1. **गर्भेश्वरत्वादि हेतुओं के साथ हेतुमत:** कार्य का विपत्ति का अभेद वर्णन के कारण हेतु अलंकार है। उसका लक्षण साहित्य दर्पण में -' अभेदेनामिधा हेतुर्हेतोर्हेतुमता सह''
2. शस्त्रमेव जलम् - में रुपक है उसका लक्षण साहित्य दर्पण में रुपकं ''रुपितारोपाद्विषये निरपहवे''
3. शास्त्रजल से निर्मल होने पर भी कालुष्य प्राप्ति विरुद्ध प्रतीत होते है। अत: विरोधालंकार है उसका लक्षण-'' विरुद्धमिव भासेत विरोध:''।
4. रुपक और विरोध का अङ्गा-अङ्गीभाव होने से संकर अलंकार है।
5. उपमेय विषयस्वरूप से उपमान सलिलानि का वैद्यर्म्य साम्य कथन से उपमा अलंकार है उसका लक्षण साहित्यदर्पण में-''साम्यं वाच्यमवैद्यर्म्य वाक्यैक्य उपमा द्वयो:''।

कोश-

1. ''स्वादुप्रियौ च मधुरौ'' इत्यमरवचनात् स्वाद्वर्थक: मधुरशब्द:।
2. ''आप: स्त्री भूम्नि वार्वारि सलिलं कमलं जलम्।'' इत्याद्यमरवचनात् सलिलस्य आप: वा: वारि, कमलम्, जलम् इत्यादय: पर्यायशब्दा:।

पाठगत प्रश्न 16.3

15. महान अनर्थपरम्परा क्या है?
16. किस में आसक्ति मनुष्यों को कुमार्ग पर चलाकर नष्ट करती है?
17. अनुज्झितधवलता का विग्रह और समास लिखिए।
18. खल्वनर्थपरम्परा का सन्धिविच्छेद कीजिए।
19. रजसाम् पद में विभक्ति और अर्थ लिखिए।

16.4 मूलपाठ

भवादृशा एव भवन्ति भाजनान्युपदेशानाम्। अपगतमले हि मनसि स्फटिकमणाविव रजनिकरगभस्तयो विशन्ति सुखेनोपदेशगुणा:। गुरुवचनममलमपि सलिलमिव महदुपजनयति श्रवणस्थितं शूलमभव्यस्य। इतरस्य तु करिण इव शंखाभरणमाननशोभासमुदयमधिकतरमुपजनयति। हरति च अतिमलिनमन्धकारमिव दोषजातं प्रदोषसमयनिशाकर इव। गुरूपदेश: प्रशमहेतुर्वय:परिणाम इव पलितरूपेण शिरसिजजालममलीकुर्वन् गुणरूपेण तदेव परिणमयति।

टिप्पणी

व्याख्या -

भवादृशाः - आप जैसे ही, एव- ही, उपदेशानाम् - शिक्षा के, भजनानि- पात्र, भवन्ति- होते है, नान्ये - अन्य नहीं। क्योंकि निर्मल स्फटिक मणि में चन्द्र किरणों की भाँति निर्मल मन में उपदेशों के गुण आसानी से प्रवेश कर जाते हैं। अर्थात् सूर्यकान्त मणि में चन्द्रमा के समान, अपगतमले - अंश विषय आदिरूप मल के चले जाने पर मन में या चित्त में उपदेश के गुण सुख से या अनायास ही प्रवेश करते हैं।

गुरु के हित अहित का ज्ञान कराने वाले उपदेश वाक्य कल्याणकारी होने पर भी अशिष्ट जनों के कान में स्थित जल के समान महान् शूल या पीडा को उत्पन्न करता है। इससे भिन्न शिष्ट जनों को गुरु के वचन हाथी के शंख से बना हुआ, शंखाभरण मुख के सौन्दर्य की वृद्धि को और भी अधिक बढ़ाता है। अर्थात् कान में स्थित शांखालंकार से जैसे हाथी के मुख की शोभा है वैसे ही गुरु के वचनों से साधु के मुख की शोभा व हर्ष को देती है।

गुरु का वाक्य प्रदोष समय का चन्द्रमा अर्थात् सूर्यास्त के बाद के समय का चन्द्रमा अतिमलिनम् - बहुत गहन या अधिक तमोगुणी, अंधकारमिव - अंधेरे के समान, दोषजातम् - दोषों के समूह को हरता है। प्रशमहेतुः - अन्तःकरण की वृत्तियों की शान्ति का कारण, वयःपरिणमः - अवस्था की परिणति अर्थात् बुढापा, फलितरुपेण - श्वेत रंग में, शिरसिज जालम् - बालों के समूह को, अमलीनकुर्वन - निर्मल बनाता हुआ। मूलरुप में परिणत कर देता है।

प्रशमहेतुः- अर्थात् कामादि विकार की शान्ति के कारणभूत गुरु का उपदेश जिस प्रकार वृद्धावस्था केशों को निर्मल करती हुई क्रम से शुल्क रुप में परिणत कर देता है। उसी प्रकार अन्तरिन्द्रिय दमन के कारण गुरु का उपदेश भी उन काम क्रोध आदि दोषों को निर्मल करता हुआ क्रमशः दयादाक्षिण्यादि गुण स्वरुप में परिणत कर देता है।

सरलार्थ-

आप ही उपदेश ग्रहण के योग्य हो। जिस प्रकार निर्मल स्फटिक मणि में चन्द्रकिरण सरलता से प्रवेश करती है। वैसे ही आप भी निर्मल चित्त सत्व गुण प्रधानता के कारण से आप उपदेशों को सम्यक्रूप से जान सकते हैं परन्तु सज्जनों के वचनों में समान रुचि नहीं होती। जैसे निर्मल जल जीवन देता है परन्तु वह कान मे प्रवेश करके पीडा को ही पैदा करता है। वैसे ही यह अमृतवाणी दुर्जनों के कर्णपीड़ा को उत्पन्न करता है। शंखावली से जैसे गज के मुख की शोभा बढ़ती है। उसी प्रकार गुरुओं के वचनों से सज्जनों के मुख की शोभा बढ़ती है। रात्रि के आरम्भ में चन्द्रकिरण से जैसे अन्धेरे का पलायन होता है। उसी प्रकार गुरु के वचनों से कामक्रोधादि समूह का हरण होता है। वृद्धावस्था मे केश सफेद हो जाते हैं। उस शुक्लता से केश स्वच्छ प्रतीत होते है। उसी प्रकार शान्ति के हेतु गुरुवचन से मनुष्य निर्मल होकर सद्गुणों से उसी प्रकार सम्पूर्णता से परिणत होता है।

व्याकरणविमर्श-

क) समासः -

1. **रजनिकरगभस्तयः** - रजनिकरस्य गभस्तयः रजनिकरगभस्तयः इति षष्ठीतत्पुषसमासः।
2. **शिरसिजजालम्** - शिरसि जातं शिरसिजम् इति उपपदतत्पुरुष-समासः। शिरसिजस्य जालं शिरसिजजालमिति षष्ठीतत्पुरुषसमासः।
3. **आननशोभासमुदयम्** - आननस्य शोभा आननशोभा इति षष्ठीतत्पुरुषः। तस्याः समुदयः आनन्दशोभासमुदयः, तम् इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः।
4. **प्रदोषसमयनिशाकरः** - प्रदोषसमये निशाकरः प्रदोषसमयनिशाकरः इति सप्तमीतत्पुरुषसमासः।

ख) सन्धिविच्छेदः-

1. स्फटिकमणाविव - स्फटिकमणौ+ इव।
2. सुखेनोपदेशगुणाः - सुखेन +उपदेशगुणाः।
3. हरत्यतिमलिनम् - हरति+ अतिमलिनम्।
4. प्रशमहेतुर्वयःपरिणाम इव - प्रशमहेतुः +वयःपरिणामः+ इव।

अलंकार विमर्श-

1. मनसि उपमेय के साथ स्फटिमणौ इस उपमान का अवैधर्म्य का साम्य कथन से उपमा अलंकार है।
2. गुरुवचन इस उपमेय के साथ सलिलम् इस उपमान का अवैधर्म्य साम्य कथन से उपमा है।
3. इतरस्य इस उपमेय के साथ करिण इस उपमान का अवैधर्म्य साम्यकथन से उपमा है।
4. इसी प्रकार हरति का गुरुपदेश से साम्य होने पर उपमा है।

कोश -

1. ''किरणोऽमयूखांशुगभस्तिघृणिरश्मयः।'' इत्यमरवचनाद् किरणम्, उग्रः, मयूखः, अंशुः, गभस्तिः, घृणिः, रश्मिः इत्येते समार्थकाः।
2. ''प्रदोषो रजनीमुखम्'' इत्यमरवचनात् रजनीमुखम् इति प्रदोषसमार्थकः।

पाठगत प्रश्न 16.4

20. कैसे मन में सुख से उपदेश प्रवेश करते हैं?
21. क्या अमल है?

टिप्पणी

22. कैसे निशाकर दोष का हरण करता है?

23. निशाकर कैसे दोष का हरण करता है?

24. सर्वव्याधिप्रशमन् का हेतु कौन है?

16.5 मूलपाठ

अयमेव चानास्वादित-विषय-रसस्य ते काल उपदेशस्य। कुसुमशर शर-प्रहारजर्जरिते हि हृदये जलमिव गलत्युपदिष्टम्। अकारणञ्च भवति दुष्प्रकृतेरन्वयः श्रुतं चाविनयस्य। चन्दप्रभवो न दहति किमनलः? किंवा प्रशमहेतुनापि न प्रचण्डतरीभवति वडवानलो वारिणा? गुरूपदेशश्च नाम पुरुषाणामखिलमलप्रक्षालनक्षममजलस्नानम्, अनुपजातपलितादिवैरूप्यमजरं वृद्धत्वम्, अनारोपितमेदोदोषं गुरूकरणम्, असुवर्णविरचनमग्राम्यं कर्णाभरणम्, अतीतज्योतिरालोकः, नोद्वेगकरः प्रजागरः। विशेषेणतु राज्ञाम्। विरला हि तेषामुपदेष्टारः। प्रतिशब्दक इव राजवचनमनुगच्छति जनो भयात्। उद्दामदर्पश्वयथुस्थगितश्रवणविवराश्चोपदिश्यमानमपि ते न शृण्वान्ति। श्रृण्वन्तोऽपि च गजनिमीलितेनावधीरयन्तः खेदयन्ति हितोपदेशदायिनो गुरून्। अहंकार-दाहज्वर-मूर्च्छान्धकारिता विह्वाला। हि राजप्रकृतिः, अलीकाभिमानोन्मादकारीशि धनानि, राज्यविषविकार-तन्द्राप्रदा राजलक्ष्मीः।

अयमेव- यह ही अनास्वादितविषयरसस्य- अनास्वादितविषयरस का, अर्थात् अनुभूत विषयों रुप शब्दों आदि के रस का जिसने आस्वादन नहीं किया है। ते काल उपदेशस्य-ऐसे तुम्हारे जैसे ही उपदेश के योग्य है। क्योंकि जिसने विषयों के रस का उपयोग कर लिया ऐसे पुरुष के लिए उपदेश सफलता उत्पन्न नहीं करते।

क्योंकि कुसुमशर शर-प्रहारजर्जरिते हि हृदय- जिस कारण से पुष्पबाणवाले कामदेव के इन बाणों के प्रहार से जर्जित हृदय वाले होते हैं, जलमिव गलत्युपदिष्टम्- उनके हृदय पर गुरु उपदेश जल समान बह जाता है।

अकारणं च भवति दुंष्कृतेन्वयः श्रुतं चातिनयस्य - अर्थात् दुष्य विनयरहित पुरुष का अच्छे वंश या कुल में जन्म होना, और शास्त्रों के श्रवण भी सत्कर्माचरण का कारण नहीं होता जैसा कि हितोपदेश में कहा गया है।

''न धर्मशास्त्रं पठतीति कारणम् न चाऽपि वेदाऽध्ययनं दुरात्मनः।
स्वभाव एवाऽत्र तथाऽतिरिच्यते यथां प्रकृत्या मधुरं गवां पयः।।''इति।

कवि उक्त अर्थ का समर्थन करता है - चन्द्र न प्रभव अर्थात् दुश्चरित्र लोगों की अच्छे कुल में उत्पत्ति तथा शास्त्र ज्ञान सन्मार्ग प्रवृत्ति का कारण नहीं होता। क्या चन्दन की लकडी से उत्पन्न आग नहीं जलाती? शान्ति कारक समुद्र के जल से भी क्या बडवानल अत्यन्त प्रचंड होकर उठता नहीं है। इस प्रकार शास्त्राज्ञान विनय का कारण नहीं है। गुरु के उपदेश की बहुत प्रशंसा होती है। पुरुशाणामखिलमलप्रक्षालनक्षममजलस्नानम्- गुरु का उपदेश तो मनुष्यों के लिए बिना जल का स्नान है। जो उनके समस्त काम क्रोध आदि मलो को धो देने में समर्थ है, स्नान तो जल के साथ होता है। किन्तु यह स्नान जल रहित होने से विशेष है।

टिप्पणी

अनुपजातपलितादिवैरूप्यमजरं वृद्धत्वम-यह वह स्थविरता है जिसमें श्वेत केश आदि कोई शारीरिक विकार उत्पन्न नहीं होता और बुढ़ापे से रहित वृद्धत्व का भाव है। गुरु के उपदेश से उस प्रकार का वृद्धत्व होता है। जहां पलितादि विरूप जरा आदि नहीं होते। जैसा कि भगवान मनु ने मनुसहिंता में कहा है -

न तेन वृद्धो भवति येनाऽस्य पलितं शिरः।
यो वै युवाडप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः॥

गुरू का उपदेश पृथुलता आदि को उत्पन्न करने वाले मेदा दोष से रहित गौरव को बढ़ाने वाला है। अन्यत्र गुरुता में मेदा (चर्बी) दोष होता है। किन्तु गुरु के उपदेश में इस प्रकार का दोष नहीं होता है।

असुवर्णविरचनमग्राम्यं कर्णाभरणम -गुरु का उपदेश कान का सुन्दर आभूषण है किन्तु सुवर्ण निर्मित नहीं है। बिना सुवर्ण निर्मित अग्राम्य। ग्राम्यभण्डादिवाक्यातिरिक्त अतिरमणीय है। अर्थात् गुरु का उपदेश सुवर्ण सघंट रहित होने पर भी विदग्धा के कारण अतिरमणीय है।

अतीतज्योतिरालोक-यह एक ऐसा प्रकाश है। जिसमें ज्वाला नहीं है। अर्थात् गुरु का उपदेश अतीव ज्योति है जिससे उस प्रकार का प्रकाश या ज्वाला नहीं है। गुरुपदेश सर्वप्रकाश अपूर्व अन्तज्योति होती है।

नोद्वेगकरः प्रजागरः-यह गुरु का उपदेश बिना उद्वेग अर्थात् चित्त में व्याकुलता को उत्पन्न किये बिना जागरण है। अन्य जागरण में तो चित्त व्याकुल होता है। इस गुरु के उपदेश के जागरण में व्याकुलता नहीं होती।

विशेषेण राज्ञाम्-यह सत् विशेषतया राजाओं के लिए होता है। क्योंकि वह तन्तद्गुणविशिष्ट होता है क्योंकि विरला हि तेषामुपदेष्टारः-उन राजाओं को उपदेश देने वाले विरले अर्थात कम होते हैं। प्रायः सभी राजाओं के निर्देशों का ही पालन करते है। अतः उपदेशक कम होते है। प्रतिशब्दक इव राजवचनमनुगच्छति जनो भयात्- लोग भय के कारण राजवचनों का भुवपरिमापित प्रतिशब्दश के समान उनका अनुसरण ही करते है।

उद्दामदर्पश्वयथुस्थगितश्रवणविवराश्चोपदिश्यमानमपि ते न शृण्वन्ति -उद्दाम या विस्तृत दर्प अहंकार या गर्व के कारण सूजन से कानों के छिद्र बन्द हो जाते है। अतः राजाओं को उपदेश देने पर भी वे उसे नहीं सुनते है। अर्थात् सुनने योग्य वचनों को भी नहीं स्वीकार करते है। वे राजा लोग कदाचित सुनते भी है तो हाथी के समान आंखे बन्द कर उस उपदेश का तिरस्कार करते हुए उन हितोपदेश देने वाले गुरुजनों को दुःखित करते रहते हैं। क्योंकि राजाओं का स्वभाव अहंकाररूपी दाहज्वर जनित मूर्च्छा से विवेक हीन होकर एक बार मे ही विह्वल हो जाता है। विशेषतः धन सम्पत्ति मिथ्या अभिमान से उन्मत कर देती है। और राजलक्ष्मी राज्य रुपी विष के विकार से सुस्ती उत्पन्न कर देती है।

सरलार्थ-

भोग भोग से शान्त नहीं होता है। अतः चन्द्रापीड ने आज भी शब्दस्पर्शदि भोगों का भोग नहीं किया है। इसलिए उपदेश के लिए यह उचित समय है। क्योंकि विषयासक्त हृदय में उपदेश

टिप्पणी

जल के समान बह जाता है। अर्थात् सत्य का प्रभाव विस्तृत नहीं होता है। जैसे अग्निजल से शान्त होती है। उसी प्रकार कामदेव के कामबाण दग्ध हृदय को शान्त करने के लिए उपदेशरुपी जल का सिंचन करते हैं परन्तु जो दुष्टस्वभाव सम्पन्न होते हैं और जिनमें विनय नहीं होता है। उन में शास्त्र श्रवण से मन की शान्ति होती है। चन्दन काष्ठ से उत्पन्न अग्नि क्या नहीं जलती है। जल से अग्नि शान्त होती है। परन्तु बडवानल अग्नि क्या जल से शान्त होती है। अर्थात् नहीं। अपितु पूर्व की अपेक्षा प्रबल ही होती है। स्नानकाल में जल से शरीरस्थ मल का प्रक्षालन होता है। गुरु का उपदेश तो सर्वविध मानसिक मलिनता का प्रक्षालन करता है। वह बिना जल के स्नान है। और भी गुरु के उपदेश से जहां केश विरुप नहीं होते है। वैसा वृद्धभाव है सुवर्णनिर्मिति का अभाव होने पर भी रम्य, आलोक से भी अधिक प्रकाशवान, अनुद्वेग कारक जागरण है। यह उपदेश राजाओं के लिए हितकारक है। क्योंकि राजाओं को उपदेश देने वाले थोड़े ही होते है। अधिकांश तो राजाओं के आज्ञा के पालक होते हैं। केवल अहंकार युक्त राजा उपदेश को स्वीकार नहीं करते है। वे अहंकारी धनरत्नादि में अभिमानी होते है। इस कारण उनकी राजलक्ष्मी राज्य को हानि ही प्रदान करती है। अतः चन्द्रापीड विषयासक्त न होकर गुरुदेश को सुनकर राज्य का पालन करें। उससे राज्य की राजलक्ष्मी प्रसन्न होती हुई अभ्युन्नति को धारण करती है।

व्याकरणविमर्श-

क) समास -

1. **अनास्वादितविषयरसस्य** - न आस्वादितः अनास्वादितः इति नतंत्पुरुषः। विषयस्य रसः विषयरसः इति षष्ठीतत्पुरुषः। अनास्वादितः विषयरसः येनः सः अनास्वादितविषयरसः इति बहुव्रीहिसमासः, तस्य अनास्वादितविषयरसस्य।

2. **कुसुमशरशरजर्जरिते** - कुसुमशरस्य शरः कुसुमशरशरः इति षष्ठीतत्पुरुषः। तेन जर्जरिते कुसुमशरशरजर्जरिते इति तृतीयातत्पुरुषः।

3. **उद्दामदर्पाश्वयथुस्थगितश्रवणविवराः** - उद्दामा दर्पा उद्दामदर्पा इति कर्मधारयसमासः, उद्दामदर्पा एव अश्वयथवः उद्दामदर्पाश्वयथवः इति कर्माधारयसमासः, तैः स्थगितानि श्रवणविवराणि येषां ते उद्दामदर्पाश्वयथुस्थगितरवणविवराः इति बहुव्रीहिसमासः।

4. **अहड-क्रारदाहज्वरमूर्च्छान्धकारिता** - अहडार एव दाहज्वरः अहडारदाहज्वरः इति कर्मधारयः। तेन मूर्च्छा अहडारदाहज्वरमूर्च्छा इति तृतीयातत्पुरुषः। तया अन्धकारिता अहडारदाहज्वरमूर्च्छान्धि-कारिता इति तृतीयातत्पुरुषः।

ख) सन्धिविच्छेद -

1. **गलत्युपदिष्टम्** -गलति+ उपदिष्टम्।

2. **अकारणचं** - आकारणम् +च।

3. **अतीतज्योतिरालोकः** - अतीतज्योतिः +आलोकः।

अलंकार विमर्श -

1. यहां उपदिष्टम् इस उपमेय से जलम् इस उपमान का अवैधर्म्य की साम्य कथन से उपमा अलंकार है।

2. गुरुपदेश रूप उपमेय में स्नानादि उपमानों का वैशिष्ट आरुढ़ होने के कारण अधिकाररुढ वैशिष्ट्यरुपक अलंकार है। उसका लक्षण साहित्यदर्पण में -अधिकाररुढवैशिष्ट्यं रुपकं यत्तदेव तत्''

कोश -

1. ''दन्ती दन्तावलो हस्ती द्विरदोऽनेकपो द्विपः।

   मतंगजो गजो नागः कुचंरो वारणः करी।।'' इत्यमरवचनात् गजशब्दस्य दन्ती, दन्तावलः, हस्ती, द्विरदः, अनेकपः, द्विपः, मतडजः, नागः, कुजंरः, वारणः, करी इत्येते पर्यायाः।

2. ''विश्वमशेषं कृत्स्नं समस्तनिखिलाखिलानि निःशेषम्।

   स्मग्रं सकलं पूर्णमखण्डं स्यादनूनके।।'' इत्यमरवचनात् अनूनकम्, विश्वम्, अशेषम्, कृत्स्नम्, समस्तम्, निखिलम्, अखिलम्, निःशेषम्, समग्रम्, सकलम्, पूर्णम्, अखण्डम् अत्येते पर्यायवाचकाः शब्दाः।

पाठगत प्रश्न 16.5

25. गुरु के उपदेश से कैसा हृदय शान्त होता है?

26. गुरुपदेश किनके लिए अकारण होता है?

27. गुरुपदेश से कैसा वृद्धत्व होता है?

28. यह उपदेश विशेषकर किनके लिए उपयुक्त है?

29. राज प्रकृति कैसी है?

30. अहंकारी राजा की राजलक्ष्मी कैसी है?

पाठसार

गुरुओं की आज्ञा विचारणीय होती है। गुरुपदेश नदी में केवट के समान होता है। उसका उपदेश ही सर्वदा और सर्वथा हमारा रक्षक है। उज्जयिनी के राजा तारापीड अपने पुत्र चन्द्रापीड का यौवराज्याभिषेक करना चाहता है। अतः वह सेवकों को सामग्री संग्रह के लिए आदेश देता है। चन्द्रापीड यौवराज्याभिषेक से पूर्व में प्रधानामात्य शुकनास के साथ साक्षात्कार करने के लिए गये। तब राज्यशासन के लिए उपयुक्त विनयी चन्द्रापीड को विनयतर बनाने के लिए शुकनास उपदेश देता है।

योग्य गुणविशिष्ट ही चन्द्रापीड युवराजपद पर अभिषेक के लिए उपयुक्त है। परन्तु सत्वगुण में भी यौवन के कारण और धनादि प्रभाव के कारण तम-अहंकार अभिमान आदि आ जाते है। उनमें अविवेक और मदमतता उत्पन्न हो जाते हैं। उससे लोग अशास्त्रीय नीतिविरुद्ध मार्ग पर प्रवृत हो जाते है। धन के प्रभाव से जो अभिमान रुप ज्वर होता है। वह औषधि से भी दूर नहीं होता। वनिता आदि विषय के संसर्ग से जो आसक्ति होती है। वह दुरपनेया होती है। राज्यप्राप्ति के बाद बहुत से राजा अपने आपको सर्वेश्वर मानते हैं। वे भोग निद्रा से उठने में असमर्थ होते हैं। इस प्रकार राज्यप्राप्ति के बाद चन्द्रापीड तुम इस प्रकार नहीं करो इसे बताने के लिए शुकनास ने धन के प्रभाव को कहा है।

गर्भेश्वर, अभिनवयौवन, अप्रतिम रुप, अमानुषशक्ति ये चार अनर्थ के मूलकारण है। इनमें से एक ही मानव को नीचे गिराने में समर्थ है। उनका समुदाय होने पर तो विनाश निश्चय है। यौवन के आरम्भ में बुद्धि भ्रमित हो जाती है। तीव्र वायु जैसे शुष्कपत्र को बहुत दूर तक ले जाती है। उसी प्रकार इन्द्रियां बुद्धि को बहुत दूर ले जाती है। धन युवती आदि विषयों में चित्त अत्यन्त आकृष्ट होता है। इन में लगा हुआ चित किसी अन्य को नहीं चाहता है। उससे राजाओं का बल प्रतिदिन क्षीण होता है। इनके दुष्प्रभाव वर्णन से इनमें आसक्ति नहीं करनी चाहिए। यह चन्द्रापीड को शुकनाम से उपदेश दिया।

निर्मलमणि में जैसें चन्द्रकिरण सीधे प्रवेश करती है। उसी प्रकार चन्द्रपीड आदि शुद्धचित वालों के हृदय में गुरु का उपदेश अच्छे से प्रवेश करता है। कुछ लोगों से साधु वस्तु भी कहीं पर दु:ख के लिए होती है। जैसे जल जीवन देने वाला है। परन्तु कान में प्रवेश करके पीडा उत्पन्न करता है। इसी प्रकार दुर्जनों के समीप में गुरुपदेश क्लेश प्रदान करता है। चन्द्र के प्रकाश से तम वैसे ही दूर होता है। जैसे गुरुपदेश से लोभ मोह आदि दोष दूर होते हैं। अच्छे राजा वो होते है। हितोपदेशों को सुनते हैं। गुरुपदेश जल के बिना स्नान होता है। उससे मन निर्मल होता है। गुरुपदेश ही आनन्ददायक और रम्य होता है। गुरुपदेश सुनने से सज्जनों का मन प्रसन्न होता है।

अहंकार से युक्त व्यक्ति हितोपदेश को नहीं सुनते और तिरस्कार करते हैं। विषय भोग से विनाश को प्राप्त होते हैं। उनकी राज्यलक्ष्मी रात दिन उसको नीचे गिरा कर, उनके राज्य को हानि होती है। उससे श्रिय स्वभाव जानकर साधु स्मरण करके अपने कर्म में परिवर्तन करना चाहिए। गुरु का आशिष और उनके उपदेश से राजाओं की विपत्ति दूर होती है। उसके बाद गुरुओं के आदेशों और उपदेश का निरन्तर पालन करना चाहिए यह प्रधानामात्य शुकनास का राजकुमार चन्द्रापीड को उपदेश दिया।

आपने क्या सीखा

- बाणभट्ट की गद्यकाव्य रचनाशैली को जाना।
- चन्द्रापीड़ के राज्याभिषेक वृतान्त को जाना।
- योवन प्रभाव, लक्ष्मीमद की अनर्थ परम्परा को जाना।
- सज्जन दुर्जन व्यवहार को जाना।

पाठान्त प्रश्न

1. गुरुओं की आज्ञा ही विचारणीय है - व्याख्या कीजिए।
2. धनातिशय भोग कब नहीं करना चाहिए स्पष्ट कीजिए।
3. गुरू में श्रद्धा और अनुकरण कहाँ अपेक्षित है?
4. किस के लिए गुरुपदेश है अन्य के लिए नहीं?
5. गुरुओं के आदेश की उपेक्षा करने वालों की अवस्था का वर्णन कीजिए।
6. किन चारों विषयों से मनुष्यों का विनाश होता है?
7. कैसे गुरुओं के उपदेशानुसार राज्य का पालन करना चाहिए?
8. गुरूपदेश विशेषकर राजाओं के प्रति कहां उपयुक्त है। प्रतिपादन कीजिए।
9. यौवनकाल में लोगों को स्वभाव में किसलिए भ्रांति होती है?
10. कादम्बरी का परिचय दीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

16.1

01. चन्द्रापीड तारापीड का पुत्र है।
02. राजा तारापीड चन्द्रपीड का यौवराज्यभिषेक करना चाहते थे।
03. राजा ने उपकरण संग्रह के लिए प्रतिहारों को आदेश दिया।
04. चन्द्रापीड यौवराज्याभिषेक से पूर्व आया।
05. तारापीड के प्रधानमन्त्री शुकनास थे।
06. शुकनास आरुढ़विनय चन्द्रापीड को विनीततर करने के लिए उपदेश दिया।
07. कादम्बरी एक कथा ग्रन्थ है।

16.2

08. उसके द्वारा सभी शास्त्रों को पढ़ व जान लिया था इसलिए उपदेश की आवश्यकता नहीं है।

09. यौवनदशा में उत्पन्न तम सूर्ये अभेद्य, रत्नप्रकाश से अद्देय, दीपप्रभा से अकार्य अतिगहन है।

10. धन से उत्पन्न नेत्ररोग अजंनवर्ति से निवारण योग्य नहीं।

11. धन के अभियान से उत्पन्न उष्णता अशिशिरोपचारहार्या है।

12. स्रग्गादि विषय सम्भोग उत्पन्न मोह अमूलमन्त्रगम्य है।

13. **रत्नानाम् आलोक** - रत्नालोक: षष्ठीतत्पुरुष।

रत्नालोकेन उच्छेद्य - रत्नालोकोच्छेद्यम् तृतीयतत्पुरुष।

न रत्नालोकोच्छेद्यम - अरत्नालोकोच्छेद्यम् नंतत्पुरुष।

14. ''न+अल्पमपि+उपदेष्टव्यम्''

16.3

15. गर्भ से ईश्वरत्व, अभिनवयौवन, अप्रतिमरूपत्व, और अमानुषशक्ति ये महान अर्थ की परम्परा है।

16. माला चन्दन और वनिता में आसक्ति मनुष्य को कुमार्ग पर चलाकर नष्ट करती है।

17. न उज्झिता - अनुज्झिता - नञ् तत्पुरुष। अनुज्झिता धवलता यथासाअनुज्झितधवलता - बहुव्रीहि

18. खलु+अनर्थपरम्परा।

19. रजसाम् - रजोगुणों का, षष्ठी विभक्ति।

16.4

20. अपगतमल मन में सुख से उपदेश प्रवेश करता है।

21. गुरु का वचन अमल है।

22. प्रदोष के समय निशाकर दोष का हरण करता है।

23. निशाकर अतिमलिन अन्धकार के समान दोष को हरण करता है।

24. सर्वव्याधिप्रशमन का कारण गुरु का उपदेश है।

टिप्पणी

16.5

25. गुरुपदेश से कामबाणजर्जरित हृदय शान्त होता है।

26. गुरुपदेश दुष्प्रकृति के लिए अकारण होता है।

27. गुरुपदेश से अनुपजातपलितादि वैरुप्यजरवृद्धत्व होता है।

28. गुरुपदेश विशेषकर राजाओं के लिए उपयुक्त है।

29. अहकारं दाह ज्वर मूर्च्छान्धकारि और विह्वल राज की प्रकृति होती है।

30. अहंकारी राजा राज्य विषविकारतन्द्रा देने वाली राजलक्ष्मी होती है।

17

शुकनासोपदेश - लक्ष्मी का चापल्य

इस पाठ में शुकनासोपदेश को ''आलोकयतु तावत्'' से आरम्भ होकर ''चिन्तितापि वंचयति'' तक के अंश का वर्णन किया गया है। जल के बुल-बुले के समान क्षण स्थायी लक्ष्मी सहसा ही उदित होती हैं और नष्ट होती हैं। वह क्षणभर में आभासित होती हैं और क्षणभर में विलुप्त हो जाती हैं। परन्तु अहो, इसकी लीला के वशीभूत होकर लोग धन के आने पर क्षीण, पीड़ित और दु:खी होते हुए भी पुन: उसकी ही प्रार्थना करते हैं। इस प्रकार यह लक्ष्मी मोहिनी है। वह श्री लक्ष्मी यौवनावस्था में चापल्य को बढ़ाती हैं जिससे हमारे सद्गुण नष्ट हो जाते हैं, परन्तु गुरूपदेश लोकोपकार के लिए होते हैं। उसके बाद अमात्य शुकनास उपदेश देते हैं कि यौवन की चंचलता का यत्न से परिहार करना चाहिए। जब राज्यलक्ष्मी अभ्युन्नति को सिद्ध करती है। वह अपकर्मो को और उन में प्रवृत्त जनों का कैसे सहायक हैं ऐसा ध्यान करके लोभाविष्ट न होकर सद्विचार का पालन करना चाहिए तथा उन्नति के लिए प्रयत्न करना चाहिए। यह इस पाठ में चन्द्रापीड के लिए उपदेश समालोच्य है।

उद्देश्य-

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे;

- राजलक्ष्मी का प्रभाव जान पाने में;
- राजलक्ष्मी के स्वरुप को जान पाने में;
- राजलक्ष्मी के स्वभाव को समझ पायेंगे;
- मानव जीवन में राजलक्ष्मी के प्रभाव को समझ पायेंगे और;
- वाक्यों का अन्वयार्थ, पदों का सरलार्थ एवं समास को समझ पायेंगे।

17.1 मूलपाठ

आलोकयतु तावत् कल्याणाभिनिवेशी लक्ष्मीमेव प्रथमम्। इयं हि सुभटखड्गमण्डलोत्पल-वन-विभ्रम-भ्रमरी लक्ष्मीः क्षीरसागरात् पारिजातपल्लवेभ्यो रागम्, इन्दुशकलोदेकान्तवक्रताम्, उच्चैःश्रवसश्चञ्चलतां, कालकूटान्मोहनशक्तिं, मदिराया मदं, कौस्तुभमणेर्नैष्ठुर्यम् इत्येतानि सहवासपरिचयवशाद्विरहविनोदचिह्नानि गृहीत्वैवोद्गता।

व्याख्या-

कल्याणाभिनिवेशी - मंगल प्राप्ति की और आग्रह वाली इस लक्ष्मी को ही सर्व प्रथम देखो अर्थात् विचार करो, यह लक्ष्मी निपुण योद्धाओं के खड्ग समूह स्वरुप कमल वन में विचरण करने वाली भ्रमरी के समान है और यह क्षीर सागर में से निकलते समय रत्नों के साथ रहने से पहले ही प्रेम उत्पन्न हो गया था, उसे उन लोगों के विरह दुःख दूर करने के लिए चिह्नस्वरुप पारिजात पल्लव के समीप से राग, चन्द्रखण्ड से अत्यन्त वक्रता, उच्चैश्रवा अश्व के पास से मादकता एवं कौस्तुभमणि के पास से अत्यन्त निष्ठुरता ये सब साथ लेकर ही मानो बाहर आई है। अर्थात् क्षीरसागर में साथ रहने के परिचय के कारण पारिजात के पल्लवों से राग (ललिमा या आसक्ति), चन्द्रमा की कला से नितान्त वक्रता (कुटिलता या प्रतिकूलता) उच्चैः श्रवा नामक अश्व से चंचलता, कालकूट विष से मोहन (वश में करने की या बेहोश करने की) शक्ति, मदिरा से मद (घमण्ड या नशा), कौस्तुभमणि से निष्ठुरता (निदर्यता या कठोरता) इन विरह विनोद के चिह्नों को लेकर बाहर आयी।

सरलार्थ-चन्द्रापीड का यौवराज्यभिषेक होगा और उसके राज्यकार्य चलाने के लिए राजलक्ष्मी का ज्ञान अपेक्षित है अतः शुभार्थी शुकनास उसके लिए राजलक्ष्मी का ज्ञान देते हैं।

हे चन्द्रापीड यह कल्याण चाहने वाली है अतः आदि में उस लक्ष्मी का विचार करना चाहिए। यह लक्ष्मी तलवार रुपी मंगलवन में भ्रमरी के समान भ्रमण करती हैं। न केवल यही अपितु यह तो क्षीर सागर से उत्पन्न होते ही पारिजातवृक्ष से रंग, चन्द्रमण्डल से वक्रता, उच्चैःश्रवा से चंचलता, कालकूटविष से मोहिनी शक्ति, मदिरा से अंहकार और कौस्तुभमणि से निष्ठुरता स्वीकार करके विनोद वियोग चिह्न के रुप में यह लक्ष्मी उत्पन्न हुई।

व्याकरणविमर्श-

क) समासः

1. **सुभटखड्गमण्डालोत्पलवनविभ्रमभ्रमरी** - खड्गानां मण्डलं खड्गमण्डलमिति षष्ठीतत्पुरुषः। सुभटानां खड्गमण्डलं सुभटखड्गमण्डलमिति षष्ठीतत्पुरुषः। सुभटखड्गमण्डलमवे उत्पलवनं सुभटखड्गमण्डलोत्पवनम् इति कर्मधारयसमासः। सुभटखड्गमण्डलानाम् उत्पलवनमिति इति वा षष्ठीतत्पुरुषः। सुभटखड्गमण्डलोत्पलवने विभ्रमः सुभटखड्गमण्डालोत्पलवनविभ्रमः इति सप्तमीतत्पुरुषः। सुभटखड्गमण्डालोत्पलवनविभ्रमे भ्रमरी सुभटखड्गमण्डालोत्पलवनविभ्रमभ्रमरी इति सप्तमीतत्पुरुषः।

2. **पारिजातपल्लवेभ्यः** - पारिजातस्य पल्लवानि पारिजातपल्लवानि इति षष्ठीतत्पुरुषः। तेभ्यः पारिजातपल्लवेभ्यः इति पञ्चमीतत्पुरुषः।

ख) सन्धिविच्छेदः

1. **इन्दुशकलादेकान्तवक्रताम्** - इन्दुशकलात् + एकान्तवक्रताम्।
2. **कालकूटान्मोहनशक्तिम्** - कालकूटात्+ मोहनशक्तिम्।
3. **गृहीत्वैवोद्गता** - गृहीत्वा+ एव+ उद्गता।

अलंकारविमर्श-

1. इस में गृहीत्वा इव का प्रयोग होने से क्रियोत्प्रेक्षा है उत्प्रेक्षा का सामान्य लक्षण ''भवेत्सम्भावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना।''
2. रागाद्यर्य का रक्तिमादि और अनुरागादि की भिन्नता होने पर भी श्लेष से अभेदारोप होने से अतिशयोक्ति है - उसका लक्षण साहित्यदर्पण में - ''सिद्धत्वेऽध्यवसायस्यातिश योक्तिर्निगद्यते।''

कोशः -

1. ''हिमांशुश्चन्द्रमाश्चन्द्र इन्दुः कुमुदबान्धवः'' इत्याद्यमरवचनात् इन्दुशब्दस्य हिमांशुः, चन्द्रमाः, चन्द्रः, कुमुदबान्धवः इत्यादयः पर्यायाः।

पाठगतप्रश्न-17.1

1. लक्ष्मी ने किससे राग स्वीकार किया?
2. श्री (लक्ष्मी) ने किससे चंचलता को सीखा?
3. लक्ष्मी ने किससे निष्ठुरता जानी?
4. लक्ष्मी ने मोहनशक्ति कहाँ से सीखी?
5. लक्ष्मी.....पारिजात पलवेभ्यः राग गृहीत्वैवोद्गता?
6. आलोकयतु तावत् ..... लक्ष्मीरेव प्रथमम्?
7. स्तम्भो का मेल करो-

स्तम्भ -1	**स्तम्भ -2**
1. रागम्	1. कालकूटात्
2. वक्रताम्	2. उच्चैःश्रवसः
3. चंचलताम्	3. कौस्तुभमणेः

4. मोहनशक्तिम् 4. मदिराया:

5. मदम् 5. इन्दुशकलात्

6. नैष्ठुर्यम् 6. पारिजातपल्लवेभ्य:

8. कालकूटान्मोहनशक्तिम् - का सन्धिविच्छेद करो?

17.2 मूलपाठ

न ह्येवंविधम् अपरिचितमिह जगति किंचितदस्ति, यथेयमनार्या। लब्धापि खलु दु:खेन परिपाल्यते। दृढकुणपाशसन्दाननिष्पदीकतापि नश्यति, उद्दाम-दर्प-भटसहस्त्रोल्लासितासिलता- पंजर-विधृताप्यपक्रामति। मदजल-दुर्दिनान्धकारगज-घन-घटा-परिपालितापि प्रपलायते, न परिचयं रक्षति, नाभिजनमीक्षते, न रूपमालोकयते, न कुलक्रममनुवर्तते, न शीलं पश्यति, न वैदग्धां ऋयति, न श्रुतमाकर्शयति, न धर्ममनुरुधयते, न त्यागमाद्रियते, न विशेषज्ञतां विचारयति, नाचारं पालयति, न सत्यमनुबुध्यते, न लक्षणं प्रमाणीकरोति। गन्धर्वनगरलेखेव पश्यत एव नश्यति। अद्याप्यारूढ-मन्दर-परिवर्तावर्त-भ्रान्ति-जनित-संस्कारेव परिभ्रमति। कमलिनि-सञ्चरणव्यतिकर-लग्न-नलिन-नाल-कश्टकक्षतेव न क्वचिदपि निर्भरमाबध्नापि पदम्। अतिप्रयत्नविधृतापि परमेश्वरगृहेषु विविध-गन्धगज-गण्ड-मधुपान-मत्तेव परिस्खलयाति। पारुष्यमिव उपशिक्षितुम् असिधारासु निवसति। विश्वरूपत्वमिव ग्रहीतुमाश्रिता नारायणमूर्त्तिम्। अप्रत्ययबहुला च दिवसान्तु-कमलमिव-समुपचित-मूल-दण्ड-कोशमण्डलमपि भूभुजम्। लतेव विटपकालध्यारोहति। गङ्गेव वसुजनन्यपि तरङ्गेगुद्वुदचञ्चला। दिवसकरगतिरिव प्रकटित-विविध-सङ्क्रान्ति:। पातालगुहेव तमोबहुला। हिडिम्बेव भीमसाहसैकहार्यहृदया। प्रावृडिवाचिरद्युतिकारिणी। दुष्टपिशाचीव दर्शितानेकपुरुषोच्छ्राया स्वल्पसत्त्वमुन्मत्तीकरोति।

व्याख्या- इस संसार में इस प्रकार का अपरिचित अन्य कोई नहीं है, जैसी यह दुष्टा लक्ष्मी है। यह बड़ी कठिनाई से कष्टों को सहन करने के बाद प्राप्त होती हैं परन्तु प्राप्त होने के बाद भी इसका पालन रक्षण अत्यन्त कठिनाई से हो पाता है। अर्थात् धन-सम्पत्ति की प्राप्ति बडी मुश्किल से होती है और यदि धन मिल भी जाये तो उसकी रक्षा आदि में अनेक कष्ट उठाने पडते हैं। शौर्य आदि उत्तम गुण रूपी रस्सियों के बन्धन से निश्चल की हुई भी यह पलायन कर जाती है अर्थात् नष्ट हो जाती है।

उद्दाम दर्प वाले हजारों योद्धाओं की तलवारों के पहरे से भी यह निकल जाती है। मदजल की धारा से अन्धकार के समान कलिमा को उत्पन्न करने वाले हाथियों के झुण्ड या समूह जो कि वर्षाकालीन घन घटाओं के समान दृश्य उपस्थित करती है। उनके द्वारा रक्षित होने पर भी वह पलायन कर जाती है। वह परिचय के अनुरोध से एक स्थान पर नहीं बैठती, वह गजसमूह से रक्षित होने पर भी दूसरे स्थान पर चली जाती है।

यह लक्ष्मी इतनी दुष्टा है कि किसी से परिचय होने पर भी उसके पास नहीं रुकती है अर्थात् परिचय का भी कोई ध्यान नहीं रखती, जब इसे जाना होता है तुरन्त छोड़कर चली जाती है। यह उच्च कुलीन व्यक्ति है, ऐसा भी यह नहीं देखती है। यह व्यक्ति के रुप सौन्दर्य को भी

टिप्पणी

नहीं देखती है अर्थात् कोई सौन्दर्यवान है तो उसके पास भी लक्ष्मी स्थित नहीं रहती है। यह कुलक्रम का अनुसरण नहीं करती है अर्थात् कोई व्यक्ति लक्ष्मीवान है और उसकी सन्तान भी पूर्व परम्परा के अनुसार धन सम्पन्न होगा ऐसा भी नहीं देखा जाता है अर्थात् वंश परम्परा से भी एकत्र नहीं ठहरती है। यह किसी के शील सदाचार की भी परवाह नहीं करती है कोई अत्यधिक विद्वान् है उसके पाण्डित्य का विचार नहीं करती है अर्थात् उसकी विद्वता का भी सम्मान नहीं करती है मूर्खों का अवलम्बन करती है। वह लक्ष्मी वेदशास्त्र आदि को नहीं सुनती है और न ही धर्म का अनुरोध रखती है अर्थात् यह शास्त्रों के ज्ञान से रहित तथा धर्माचरण से हीन व्यक्तियों के पास भी रहती है। इसके लिए किसी व्यक्ति का शास्त्रज्ञ एवं धर्मशील होना आवश्यक नहीं है। यह त्याग का भी आदर नहीं करती है। क्योंकि यह कृपण के घर में भी पाई जाती है। यह विशेषज्ञता का विचार नहीं करती है, क्योंकि प्राय: देखा जाता है कि विशेषज्ञ विद्वान दरिद्रता का जीवन व्यतीत करते हैं। यह न आचार का पालन करती है और न ही सत्य को जानती है। क्योंकि यह अत्याचारी और झूठे लोगों के घर में पाई जाती है। जिन व्यक्तियों के शरीर पर सामुद्रिक शास्त्रों के अनुसार धनवान बनने के शुभ चिह्न हैं। यह उनके पास भी नहीं पाई जाती है। इस प्रकार यह शुभ लक्षणों को भी प्रमाणित नहीं मानती है।

जिस प्रकार आकाश में दृश्यमान गन्धर्वों के नगरों की कतारें देखते-देखते ही नष्ट हो जाती हैं उसी प्रकार यह लक्ष्मी भी पुरुषों के पास से क्षण भर में नष्ट हो जाती हैं। गन्धर्वनगरलेखा को शास्त्रकार अशुभ सूचक मानते हैं जैसा कि वृहत्संहिता में कहा गया-गन्ध-**र्वनगरमुत्थितमापाण्डुरमशनिपातवातकरम्। दीप्ते नगेन्द्रमृत्युर्वामेरिभयं जय: सव्ये॥**

समुद्रमंथन के समय मन्दरांचल के भ्रमण से उसमें जो भँवर उत्पन्न हुई थी, उस संस्कारवश ही मानो अब भी घूम रही है। कमलवन में विचरण करने के समय कमलदण्ड के कांटे लग जाने से चरण शत्-विक्षत हो गया है इसी से मानो यह किसी स्थान पर भी जम कर पैर नहीं रखती है बड़े-बड़े राजाओं के महलों में अत्यन्त उद्योग करके रखी जाने पर भी अनेक मदगजों के गंडस्थल के मधुपान से मत्त होकर ही मानों स्खलन कर जाती है अर्थात् दूसरे राजाओं के पास चली जाती है। निष्ठुरता सीखने के लिए ही मानो तलवार की धारों में निवास करती है। विष्णु के पास से अनेक प्रकार के रूप ग्रहण करने के लिए ही मानो इसने उसके शरीर का आश्रय लिया हैं। इसके प्रति अविश्वास ही अधिक परिमाण में करना होता है क्योंकि कमल के मूल, नाल को अर्थात् कली एवं विस्तार इन सबों से विशेष वृद्धि पाते रहने पर भी सूर्यास्त के बाद शोभा जिस प्रकार उस कमल को त्याग देती है उसी प्रकार राजा का सैन्य, दण्डशक्ति, कोश खजाना आदि राज्य इन सबों से विशेष वृद्धि पाते रहने पर भी लक्ष्मी, उस राजा का परित्याग कर देती है।

वह लक्ष्मी लतावल्ली के समान है अर्थात् लता जिस प्रकार वृक्ष की शाखाओं का आश्रय लेती है लक्ष्मी भी उसी प्रकार धूर्तो का सहारा लेती हैं। गंगा जिस प्रकार वसुओं की जननी होने पर भी तरंगो और बुद्बुदों से चंचल है, यह लक्ष्मी भी उसी प्रकार धन को उत्पन्न करने वाली होने पर भी तरंगों एवं बुल-बुलों के समान चंचल है।

सूर्य की गति जिस प्रकार महाविष्णुवत् आदि नाना प्रकार से संक्रान्तियों का प्रकाश करती है यह लक्ष्मी भी उसी प्रकार एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के पास संचरण करती है जिस प्रकार

पाताल की गुफा में अधिक अंधकार रहता है। इसी प्रकार लक्ष्मी के आने पर लोगों को भी अधिक परिमाण में मोह हो जाता है।

वह लक्ष्मी घटोत्कच जननी हिडिम्बा के समान है जैसे भीमसेन के साहस ने हिडिम्बा राक्षसी के मन का अपहरण किया था उसी प्रकार केवल भयंकर साहस ही इसके मन का अपहरण कर सकता है। वर्षा काल में जिस प्रकार क्षणभंगुर विद्युत का प्रकाश होता है उसी प्रकार यह लक्ष्मी भी लोगों की अति अल्पकाल रहने वाली ही गृहनगर को शोभा का प्रदर्शन करती है।

जिस प्रकार कोई दुष्टा पिशाचिनी तमोगुणरुपदोषयुक्ता अपने शरीर को अनेक पुरुषों की ऊँचाई वाला बनाकर दुर्बल व्यक्तियों को भय से उन्मत करती है उसी प्रकार यह लक्ष्मी भी अनेक पुरुषों को उन्नति दिखाकर अन्य अल्प बुद्धि वाले निर्धन पुरुषों को उसकी आशा से उन्मत पागल कर देती है।

सरलार्थ- यह लक्ष्मी कैसी है, यह शुकनास चन्द्रापीड को बोध करता हैं कि इस संसार में दुर्जना लक्ष्मी से कोई भी अपरिचित नहीं है क्योंकि प्राप्त होकर भी दु:ख से पालन की जाती है शौर्यादि द्वारा सुदृढता से इसे स्थापित करने पर भी शीघ्र ही यह नष्ट हो जाती है। अनेक योद्धा राजाओं द्वारा बांधे जाने पर भी पलायन कर जाती है। मदोन्मत्त गजरूप मेघ द्वारा रक्षित होने पर छोडकर चली जाती है। वह परिचितों को रक्षा नहीं करती अर्थात् पालन नहीं करती है। आत्मीय जनों को नहीं देखती, रुपवान की भी रक्षा नहीं करती, न ही आचार क्रम का अनुसरण करती है, न ही पवित्रता का पालन करती है न पांडित्य को स्वीकार करती है, न ही शास्त्रों का श्रवण करती है, न ही धर्म के नियमों को स्वीकार करती है, न ही त्याग अर्थात् दान देने वालों का आदर करती है, न ही विषय विशेषज्ञों को सम्मान करती है, न ही आचार का पालन करती है, न ही सत्य को समझती है, न ही शरीर गत चिह्नादि को प्रमाणरुप में स्वीकार करती है। गन्धर्व नगर की पंक्ति के समान क्षणभर के लिए आभासित होती है, और विलीन हो जाती है, मन्दरांचलपर्वत के भ्रमण से उत्पन्न वह लक्ष्मी स्वभाववश एक भवन से दूसरे भवन में चली जाती है। कमलवन में विहार करते समय उसके चरण कण्टक से क्षत होने के कारण वह कहीं पर भी स्थायी रुप से पाद को स्थापित करने में समर्थ नहीं है। बहुत से राजाओं या धनिकों द्वारा अपने भवन में अत्यधिक प्रयत्न से संरक्षित होने पर भी जैसे गजकपोलस्थ मधु को पीकर उन्मत्त के समान अर्थात् पागल होकर नीचे गिर जाता है। कठोरता की शिक्षा होने से तलवार धार पर निवास करती है। वह विश्वरुपत्व ग्रहण करने के लिए श्रीविष्णु के शरीर में प्रवेश किया ऐसा प्रतीत होता है। वह बीच में ही अविश्वसनीय होती हुई संध्याकालीन कमल के समान विशाल भूमण्डल अधिपति राजा का भी परित्याग कर देती है। लता जैसे वृक्ष का सहारा लेती है वैसे ही यह धूर्तजनों का अवलम्बन करती है। देवी गंगा भीष्म की माता है परन्तु तरंगों से बुदबुदों से चंचल है उसी प्रकार यह लक्ष्मी धन की अधिष्ठात्री होकर भी तरंग के समान अस्थिर है। जैसे सूर्य की गति का मेषवृषादि सक्रान्ति होती है। उसी प्रकार यह बहुत से लोगों में संक्रामित होती है। पाताल लोक की गुफा जैसे अंधकारमय होता है। वैसे ही यह भी तमोगुण सम्पन्न है। हिडिम्बा जैसे भीम के साहस को देखकर अभिभूत होती हुई उससे आकृष्ट होती है। उसी प्रकार अत्यधिक साहसिक पुरुष को देखकर उससे आकृष्ट होती है। वर्षा ऋतु में जैसे अचिरधुति नाम विद्युत उत्पन्न होती है उसी प्रकार यह भी क्षणस्थायी कान्ति को उत्पन्न करती है। दुष्ट पिशाचिनी के समान अपने शरीर को बढ़ाकर सभी को

टिप्पणी

भयभीत करती है। उसी प्रकार यह भी विविध पुरुषों की उन्नति दिखाकर मेरे पीछे चलो ऐसा कहकर सभी को उन्मत करती है।

व्याकरणविमर्श-

क) समासः-

1. **दृढगुणपाशसन्दाननिष्पन्दीकृता** - दृढा च ते गुणाः दृढगुणाः इति कर्मधारयसमासः। दृढगुणाः एव पाशः इति दृढगुणपाशः इति कर्मधारयसमासः। तेन सन्दानं दृढगुणसन्दानम् इति तृतीयातत्पुरुषः। तेन निष्पन्दीकृता दृढगुणसन्दाननिष्पन्दीकृता इति तृतीयातत्पुरुषसमासः।
2. **उद्दामदर्पभटसहस्रोल्लासितासिलतापञ्जरविधृता** - उद्दामः दर्पः यस्य स उद्दामदर्पः इति बहुव्रीहिसमासः। भटानां सहस्र भटसहस्रम् इति षष्ठीतत्पुरुषः। उद्दामदर्पः भटसहस्रम् उद्दामदर्पभटसहस्रम् कर्मधारयः। तेन उल्लासिता उद्दामदर्पभटसहस्रोल्लासिता इति तृतीयातत्पुरुषः। सा एवं असिलता उद्दामदर्पभटसहस्रोल्लासिता-सिलता इति कर्मधारयः। सा एव पञ्जीम् उद्दामदर्पभट-सहस्रोल्लासितासिलतापिञ्जीम् इति कर्मधारयसमासः। तत्र विधृता उद्दामदर्पभटसहस्त्रोल्लासितासिलतापञ्जरविधृता इति सप्तमीतत्पुरुषः।
3. **समुपचितमूलदण्डकोशमण्डलम्** - मूलं च दण्डश्च कोशश्च मण्डलं च मूलदण्डकोशमण्डलानि इति इतरेतरयोगद्वन्द्वः। समुपचितानि मूलदण्डकोशमण्डलानि यस्य स समुपचितमूलदण्डकोशमण्डलः,तम् इति बहूव्रीहिसमासः।

ख) सन्धिविच्छेदः

1. **यथेयम्** - यथा +इयम्।
2. **वसुजनन्यपि** - वसुजननी +अपि।

अलंकारविमर्श -

1. मदजलदुर्द्दिनान्ध में गज में मेघ का मदजल में दुर्दिन का आरोप होने से परम्परित रुपक अलंकार है। उसका लक्षण साहित्यदर्पण में - ''यत्र कस्यचिदारोपः पररोपणकारणम्। तत्परम्परित म्।''
2. पातलगुहा इव, हिडिम्बेव, प्रावृड इव, दुष्टपिशाची इव में उपमा अलंकार है।
3. कमलिनीति, अतिप्रयत्नेति और, प्रावृडिव इन वाक्यों में उत्प्रक्षांलकार है।

कोशः-

1. ''विष्णुर्नारायणः कृष्णो वैकुण्ठो विष्टरश्रवाः'' इत्याद्यमरोक्तेः विष्णुः नाराध्यणः, कृष्णः, वैकुण्ठः, विष्टरश्रवाः इत्यादयः समार्थकशब्दाः।
2. ''अधोभुवनपातालं बलिसद्रा रसातलम्। नागलोकः'' इत्यमरवचनात् अधोभुवनम्, पातालम्, बलिसद्रा, रसातलम्, नागलोकः इत्येते समार्थकाः शब्दाः

3. ''चित्तं तु चेतो हृदयं स्वान्तं हृन्मानसं मनः''इत्यमरवचनात् चित्तम्, चेतः, हृदयम्, स्वान्तम्, हृत्, मानसम्, मनः इत्येते समार्थकाः।

पाठगतप्रश्न 17.2

9. लक्ष्मी कैसे परिपालित हैं?
10. क्या धारण करने पर भी उपक्रामित होती है?
11. श्री(लक्ष्मी) किसकी रक्षा नहीं करती?
12. सम्पत्ति किसका लक्षण अनुकरण नहीं करती?
13. लक्ष्मी किसका अनुरोध नहीं करती?
14. लक्ष्मी क्या विचार नहीं करती?
15. लक्ष्मी किस के समान परिरक्षलीत हो जाती है?
16. लक्ष्मी ने क्या ग्रहण करने के लिए विष्णु का आश्रय लिया?
17. लक्ष्मी किसका तमोबहुल है?
18. लक्ष्मी किसके समान दूसरे पुरुषों को उन्मत करती है?
19. सुमेल करो-

स्तम्भ -1	**स्तम्भ -2**
1. न रक्षति	1. वैदग्ध्यम्
2. न ईक्षते	2. लक्षणम्
3. न आलोकयते	3. अभिजनम्
4. न अनुवर्तते	4. श्रुतम
5. न पश्यति	5. त्यागम्
6. न गणयति	6. विशेषज्ञताम्
7. न आकर्णयति	7. आचारम्
8. न अनुरुध्यते	8. कुलक्रमम्
9. न आद्रियते	9. शीलम्
10. न विचारयति	10. रुपम्
11. न पालयति	11. परिचयम्
12. न प्रमाणीकरोति	12. धर्मम्

टिप्पणी

17.3 मूलपाठ

सरस्वतीपरिगृहीतमीर्ष्ययेव नालिंगति जनम्, गुणवन्तमपवित्रमिव न स्पृशति, उदारसत्त्वममगडलमिव न बहु मन्यते, सुजनमनिमित्तमिव न पश्यति, अभिजातमहिमिव लङ्यति, शूरं कण्टकमिव परिहरति, दातारं दु:स्वप्नमिव न स्मरति, विनीतं पातकिनमिव नोपसर्पति, मनस्विनमुन्मत्तमिवोपहसति। परस्परविरुद्धञ्चेन्द्रजालमिव दर्शयन्ती प्रकटयति जगति निजं चरितम्। तथाहि - सततम् ऊष्माणमुपजनयन्त्यपि जाङ्यमुपजनयति। उन्नतिमादधानापि नीचस्वभावताम् आविष्करोति। तोयराशिसंभवापि तृष्णां सम्वर्धयति। ईश्वरतामादधानाप्यशिवप्रकृतित्वमातनोति। बलोपचयमाहरन्त्यपि लघिमानमापादयति। अमृतसहोदरापि कटुकविपाका। विग्रहवत्यप्यप्रत्यक्षदर्शना। पुरुषोत्तमरतापि खल-जन-प्रिया। रेणुमयीव स्वच्छमति कलुषीकरोति। यथा यथा चेयं चपला दीप्यते तथा तथा दीपशिखेव कज्जलमलिनमेव कर्म केवलमुद्वमति।

व्याख्या-

वाणी की देवी सरस्वती के साथ मानो इसका ईर्ष्याभाव है, यही कारण है कि जिस व्यक्ति पर सरस्वती की कृपा है। अर्थात् उस विद्वान् पुरुष को ईर्ष्यावश आलिंगन नहीं करती है भाव यह है कि विद्वान पुरुष धन विहीन रहते हैं। गुणवान व्यक्ति के पास भी यह नहीं रहती है। उस गुणवान को यह उसी प्रकार स्पर्श नहीं करती जिस प्रकार अपवित्र व्यक्ति का स्पर्श नहीं किया जाता है। उदारस्वभाव पुरुष का अमंगल के समान बहुत आदर नहीं करती है। सज्जन पुरुष को अपशकुन के समान नहीं देखती है। उच्च कुलोत्पन्न अभिजात पुरुष को सर्प के समान लांघ कर चली जाती है। शूरवीर पुरुष को कंटक के समान परित्याग कर देती है। दानशील पुरुष को बुरे स्वप्न के समान स्मरण नहीं करती। विनय सम्पन्न जन के पास पापी समझकर नहीं जातीं। मनस्वी जन को पागल मानकर उपहास करती है।

यह लक्ष्मी इन्द्रजाल के कौतुक को दिखाती हुई इस संसार में परस्पर विरुद्ध धर्म समन्वित अपना चरित्र प्रकट करती हैं क्योंकि सर्वदा उष्णता उत्पन्न करती हुई भी शीतलता उत्पन्न करती है। अर्थात् धन का अहंकार उत्पन्न करती हुई भी शीतलता उत्पन्न करती है। अर्थात् धन का अहंकार उत्पन्न करके मनुष्य को सदविवेक शून्य कर देती है। उन्नति ऊँचाई या उत्कर्ष को धारण करती हुई भी नीच स्वभाव को प्रकट करती है। समुद्र में उत्पन्न होकर भी तृष्णा को बढाती है। शिव अर्थात् ईश्वरत्व होकर भी अशिव स्वभाव का विस्तार करती है अर्थात् लोगों में प्रभुत्व उत्पन्न करके भी परपीडन अमंगलकारी स्वभाव को फैलाती है बल को बढ़ाती हुई भी कायरता या भारहीनता को प्रदान करती है, अर्थात् स्वभाव से व्यक्ति को कृपण बना देती हैं।

अमृत की सहोदरा अर्थात् बहन होती हुई भी परिणाम में कड़वी अर्थात् दु:खदायी होती है। अत कहा गया है- अर्थानामर्जने दु:खमर्जितानां च रक्षणे।

आये दु:खं व्यये दु:खं धिगर्थात्कृष्टसंश्रयात्॥

वह लक्ष्मी मूर्तिमती अर्थात् शरीर वाली होती हुई भी चाक्षुष प्रत्यक्ष के योग्य नहीं है अर्थात् धनिकों के बीच परस्पर कलह उत्पन्न कर दृष्टिगोचर नहीं होती है। श्रेष्ठ पुरुष अर्थात् विष्णु के अनुरक्त होती हुई भी दुष्ट जनों की प्रिया है अर्थात् दुर्जन लोगों से ही प्रेम करने वाली है। धूलिमयी सी बनी हुई यह लक्ष्मी स्वच्छ जनों और पदार्थों को भी कलंकित कर देती है। जैसे-जैसे यह लक्ष्मी चपला प्रदीप्त होती है। वैसे-वैसे दीपशिखा के समान कज्जलमलिन कर्म को ही उत्पन्न करती है।

सरलार्थ- देवी सरस्वती से स्वीकृत विद्वानों को ईर्ष्या से लक्ष्मी स्वीकार नहीं करती है। वह गुणसपन्न को अपवित्र के समान स्पर्श नहीं करती, उदार स्वभाव सम्पन्न जन को अमांगलिक के समान अधिकतया नहीं मानती है। सज्जन को लक्षणरहित के समान नहीं देखती, कुलीन पुरुष को सर्प के समान त्याग देती है। शूरवीर जन को कण्टक के समान परित्याग करती है। दाता को दु:स्वप्न के समान कभी भी स्मरण नहीं करती। विनय युक्त पुरुष को पापी मानकर उसके समीप नहीं आती। मनस्वी पुरुष को उन्मत्त मानकर उस पर हँसती है। इन्द्रजाल जैसा वास्तविक जगत भिन्न है यह लक्ष्मी भी इन्द्रजाल के समान जगत में परस्पर विरुद्ध अपने चरित्र को प्रदर्शित करती है। धन का तेज और मूर्खता अत्यन्त विरुद्ध है। वह लक्ष्मी प्रतिक्षण ऊष्मा नाम के धन के तेज को पैदा करती है परन्तु साथ में ही अत्यन्त विरुद्ध जाड्य अर्थात् मूर्खता भी उत्पन्न करती है। उन्नति से मन में उदारता आती है। परन्तु इस से उन्नति प्राप्त करता है वह विरुद्ध स्वभावयुक्त नीचस्वभाव को भी प्राप्त करता है। यह लक्ष्मी समुद्र से उत्पन्न हुई परन्तु तृष्णा को बढ़ाती है ईश्वर भाव नाम से मंगल परिसर का विस्तार करती है उसके साथ ही अमागंलिक प्रकृति का भी प्रसार करती है। शक्ति को बढ़ाने के लिए शिक्षा देती है साथ ही तुच्छता को भी बढ़ाती है। वह अमृत की सहोदरा है परन्तु कटु नाम के अनिष्ट का कारण स्वरुप है। यह विग्रह सम्पन्न नाम से कलह युक्ता है परन्तु इसका प्रत्यक्ष नहीं होता है। वह लक्ष्मी भगवान पुरुषोत्तम वासुदेव में आसक्त है परन्तु इसका प्रत्यक्ष नहीं होता है परन्तु दुर्जनों की प्रिया है। वह रेणुमयी नाम से रजोगुण सम्पन्न है परन्तु निर्मल जन को भी मलिन करती है। वह जैसे-जैसे प्रकाशित होती है वैसे-वैसे दीप की शिखा वैसे ही अञ्जन को प्रकाशित करती है। इस प्रकार मलिन कर्म को प्रकट करती है।

व्याकरणविमर्श-

क) समास:

1. **सरस्वतीपरिगृहीतम्** - सरस्वत्या परिगृहीतं सरस्वतीपरिगृहीतम् इति तृतीयातत्पुरुषसमास:
2. **अमृतसहोदरा** - अमृतस्य सहोदरा अमृतसहोदरा इति षष्ठीत्पुरुषसमास:।

अलंकारविमर्श -

1. लक्ष्मी का ईर्ष्यागुण होने से गुणोत्प्रेक्षा स्त्रीलिंग द्वारा सपत्नी व्यवहार से समासोक्ति है उसका लक्षण साहित्यदर्पण में' समासोक्ति: समैर्यत्र कार्यलिंग विशेषणै:।

   व्यवहार समारोप: प्रस्तुतेऽन्यस्य वस्तुन:।

टिप्पणी

गुण उत्प्रेक्षा और समासोक्त का अंगांभाव से संकर अलंकार है।

2. मनस्विनमित्यस्मिन वाक्य में - उप्प्रेक्षा अलंकार है।

3. उन्नतिम् इति औनत्ये वाक्य में उन्नति नीच स्वभाव का विरुद्धत्य से विरोधाभास अलंकार है।

पाठगतप्रश्न 17.3

20. लक्ष्मी किसको ईर्ष्या से आलिंगन नहीं करती?

21. लक्ष्मी किसको अमंगल के समान मानती है?

22. लक्ष्मी किसे अनिमित्त के समान नहीं देखती?

23. श्री लक्ष्मी किसको अपवित्र के समान स्पर्श नहीं करती?

24. लक्ष्मी किसको दु:स्वप्न के समान स्मरण नहीं करती?

25. श्री लक्ष्मी जगत में कैसा अपना चरित्र प्रदर्शन करती है?

26. उन्नति को धारण करके भी क्या प्रकट करती है?

27. लक्ष्मी क्या प्रकृतित्व फैलाती है?

28. श्री लक्ष्मी किसको प्रिय है?

29. लक्ष्मी किसके समान मलिन कर्म प्रकट करती है?

30. श्री लक्ष्मी क्या बढ़ाती है?

17.4 मूलपाठ

तथाहि इयं संवर्धनवारिधारा तृष्णाविषवल्लीनाम्, व्याधगीतिरिन्द्रियमृगाणाम्, परामर्शधूमलेखा सच्चरितचित्राणाम्, विभ्रमशय्या मोहदीर्घनिद्राणाम्, निवासजीर्णवलभी धनमदपिशाचिकानाम्, तिमिरोद्गतिः शास्त्रदृष्टीनाम्, पुरःपताका सर्वाविनयानाम्, उत्पत्तिनिम्नगा क्रोधावेगग्राहाणाम्, आपानभूमिर्विषयधूनाम्, सङ्गीतशाला भ्रूविकारनाटयानाम्, आवासदरी दोषाशीविषाणाम्, उत्सारणवेत्रलता सत्पुरुषव्यवहाराणाम्, अकालप्रावृड् गुणकलहंसकानाम्, विसर्पणभूमिर्लोकापवादविस्फोटकानाम्, प्रस्तावना कपटनाटकस्य, कदलिका काकरिणः, वध्यशाला साधुभावस्य, राहुजिह्वा धर्मेन्दुमण्डलस्य। न हि तं पश्यामि, यो ह्यपरिचितया अनया न निर्भरमुपगूढः। यो वा न विप्रलब्धः। नियतमियमालेख्यगतापि चलति, पुस्तमय्यपीन्द्रजालमाचरति, उत्कीर्णापि विप्रलभते, श्रुताप्यभिसंधत्ते, चिन्तितापि वंचयति।

व्याख्या-

यह लक्ष्मी विषय वासना रुपी विषलता समूह की वृद्धि करने वाली जलधारा है। अर्थात् यह मृगतृष्णा की वृद्धि करती है। इन्द्रिय रुपी हरिणों के पक्ष में व्याधों के गीत है अर्थात् जैसे व्याध का गीत हरिणों को आकर्षित करता है, वैसे यह इन्द्रियों को आकर्षित करती है। अच्छे आचरण रूप चित्र समूह का आवरण करने वाली धूम पंक्ति है। अर्थात् जैसे धुएं से चित्र मिट जाते है। वैसे यह सच्चरित्र को बिगाड देती है। मोहरुपी दीर्घ निद्रा के लिए कोमल शय्या है। धनाभिमान रुप राक्षसनियों के रहने के लिए पुराना भवन है। शास्त्र रुपी नेत्र के पक्ष में तिमिर नामक नेत्र रोग है जैसे तिमिर रोग नेत्रों की दर्शन शक्ति का नाश करती है वैसे ही लक्ष्मी शास्त्र ज्ञान का नाश करती है।

यह लक्ष्मी सब अविनयों की अग्रपताका है भाव यह है कि जिस प्रकार अग्रपता का के दिखाई देने से उसके पीछे आने वाली सेना का अनुमान सहज ही हो जाता है उसी प्रकार किसी व्यक्ति के पास लक्ष्मी के आते ही उसके पीछे-पीछे अनिवार्य रूप से माने वाले सभी प्रकार के अविनय व दुराचारों का भी अनुमान हो जाता है। यह लक्ष्मी क्रोधावेग रुपी ग्रहों की उत्पत्ति के लिए नदी है, अर्थात् नदी में जिस प्रकार ग्राह अर्थात् मगर उत्पन्न हो जाते हैं। उसी प्रकार लक्ष्मी की विद्यमानता में क्रोध का आवेग उत्पन्न होता है। धन की गर्मी के कारण व्यक्ति को बात-बात में क्रोध आता है।

विषय रुपी मदिराओं की लक्ष्मी पान भूमि है। अर्थात् जिस प्रकार से मदिरालय में प्रचुर मात्रा में मदिरा पी जाती है तथा वह पीने वालो को नष्ट कर देती है। उसी प्रकार लक्ष्मी के आने पर व्यक्ति मालाचन्द वनिता आदि भोगों का अत्यधिक उपयोग करता है तथा अपना सर्वनाश ही कर बैठता है। जब लक्ष्मी आती है तब ही विषय भोगों में आसक्ति होती है।

भ्रूविकाररूपी अभिनय की संगीतशाला है। कामादिदोष रूपी विषधर सर्पो के रहने की गुफा है। सज्जनों के सद्व्यवहारों को दूर भागने वाली बेंत की छड़ी है। दया दाक्षिण्य आदि गुणरुपी श्रेष्ठ राजहंसों की असामयिकोपस्थित वर्षा ऋतु है। लोकनिंदारूप का विस्तार करने वाली भूमि है। कपटाचरण रूपी नाटक की प्रस्तावना है। लक्ष्मी में स्थित होकर नाना प्रकार के कपटाचरण करते हैं। कन्दर्परूपी हाथी का कदलीवन है। इस प्रकार ही लक्ष्मी होती है तो अनेक प्रकार मन्मथ विकार लोगों में उत्पन्न होते हैं। धर्माचरण रूपी चन्द्रमण्डल के लिए राहुजिह्वा है। राहुजिह्वा सिंहीकागर्भसम्भूत राहु की रसना है। जब लक्ष्मी आती है तो सुकृत आचरण का लोप हो जाता है। मैं ऐसा कोई पुरुष नहीं देखता हूँ जो कि इस अपरिचिता लक्ष्मी द्वारा गाढ़ आलिंगित होकर बाद में प्रताड़ित नहीं हुआ हो। यह कुलटा के समान सर्वत्र सम्बन्ध धारण करती और उसका प्रसार करती है। यह लक्ष्मी चित्र पर चित्रित होने पर भी निःसन्देह चली जाती है। पुस्तकमय भी इन्द्रजाल के कौतुहल का आचरण करती है। मृत्तिका या काष्ठादि द्वारा पुतली बनाकर रखने पर भी जादू के समान व्यवहार करती है। पत्थर में खुदवा कर रखने पर भी धोखा दे जाती है। शास्त्रभिज्ञ होने पर भी दुर्व्यवहार करती है। प्राप्ति की आशा से शान्तिपूर्वक ध्यान करने पर भी ठगती है।

सरलार्थ- वह लक्ष्मी जैसे तृष्णा रूपी विषलता को बढ़ाने वाली जलधारा है इन्द्रियरूपमृग को आकर्षित करने वाला व्याध का गीत है। धूम जैसे दर्पण को मलिन करता है। इसी प्रकार ही

टिप्पणी

उत्तम चरित्र सम्पन्न जन कालुष्यता को प्राप्त होते है। मोहरुपदीर्घ निद्रा सम्पन्न चरित्र सम्पन्न जन कालुष्यता को प्राप्त होते है। मोहरुपदीर्घ निद्रा सम्पन्न जनों के लिए विलास शय्या है। धन, मद, लोलुप, पिशाची के लिए वह निवास योग्य गुफा के समान है। जिनकी दृष्टि शास्त्रानुसार प्रवृत होती है। उसके लिए तिमिर नाम नेत्र रोग है। वह सभी उदारजनों की अग्रवैजन्ती नाम का हेतु है। जैसे नदी का ग्राह (मगरमच्छ) अवहारों को उत्पन्न करते हैं। इसी प्रकार कोपावेविष्ट वे लक्ष्मी में ही पैदा होते हैं। वह शब्द स्पर्शादि विषय मदिरा की पान भूमि है। अर्थात् लक्ष्मी में विषय भोगासक्ति होती है। यह भ्रूविकार नाटक की संगीतशाला है। दोषरूप सर्प की यह निवास की गुफा है। यह बेंत की छड़ी से सत आचारण को अपसारित करती है। अर्थात् लक्ष्मी में शिष्टाचार नष्ट हो जाता है। यह गुणराज हंस की अकाल वृष्टि के समान है अर्थात् यह गुणों की विनाश कारक है। यह लोकापवाद की विस्तरण स्थल है। अर्थात् यहाँ ही कुकर्म आचरण होता है। इससे ही कपट आचरण होता है। कदली गज के लिए अत्यन्त रुचिकर है। कामदेव गज की यह कदलीस्वरुप है। अर्थात् इसमें अनेक प्रकार के काम विकार उत्पन्न होते हैं। सज्जनों की यह वध्यभूमि है। राहु के प्रभाव से चन्द्र का ग्रहण होता है। यह धर्मचन्द्र का राहुचिह्वा के समान है। अर्थात् इससे सज्जनों के सदाचरण का लोप हो जाता है। पुश्चली (कुलटा) जैसे सभी के साथ सम्बन्ध स्थापित करती है सभी का आलिंगन करती है। किसी को नहीं छोड़ती। लोक में न कोई उस प्रकार है जो लक्ष्मी से आलिंगित नहीं है, अथवा न कोई इससे वंचित है। यह चित्रस्थित होकर भी चलती हैं। इन्द्रजाल के समान सहसा विलुप्त हो जाती है। प्रस्तर आदि में लिखित होने पर भी वह विस्मृत हो जाती है। यह शास्त्रों में सुनी जाने पर भी अनुसन्धान की जाती है। वह आराधिता अर्थात् ध्यान करने पर भी ध्यान का प्रसार करती है।

व्याकरणविमर्श-

1. **व्याधगीतिः** - व्याधस्य गीतिः व्याधगीतिः इति षष्ठितत्पुरुषसमासः।
2. **इन्द्रियमृगाणाम्** - इन्द्रियाणि एव मृगाणि इन्द्रियमृगाणि इति कर्मधारयसमासः, तेषाम् इन्द्रियमृगाणाम्।
3. **धनमदपिशाचिकानाम्** - धनमदाः एव पिशाचिकाः इति कर्मधारयसमासः, तासाम् ध नमदपिशाचिकानाम् इति षष्ठितत्पुरुषसमासः।
4. **शास्त्रदृष्टीनाम्** - शास्त्राणि एव दृष्टयः येषां ते शास्त्रदृष्टयः इति बहुव्रीहिसमासः, तेषाम् इति।

अलंकारविमर्श -

1. पुरः पताकासर्वाविनयानाम् और उत्सारणवेत्रलता सत्पुरुषव्यवहाराणाम् यहाँ पर रुपक अलंकार है।
2. न हि तं पश्यति इस वाक्य में लक्ष्मी की कुलटा की समानता होने से समासोक्ति अलंकार है।

3. चिन्तितापि वञ्चयति में परस्पर विरोध होन से विरोधाभास अलंकार है।

कोशः-

1. ''वल्ली तु व्रततिर्लता'' इत्यमरवचनाद् वल्ली, व्रततिः, लता इत्येते समार्थकाः।
2. ''दरी तु कन्दरो वा स्त्री देवखातबिले गुहा'' इत्यमरोक्तेः दरी, कन्दरः, देवखातम्, बिलम्, गुहा इत्येते समार्थकाः शब्दाः।

पाठगतप्रश्न 17.4

31. तृण्णाविषवल्ली में लक्ष्मी कैसी है?
32. सच्चरित चित्रों की लक्ष्मी कैसी है?
33. महादीर्घनिद्रा श्री लक्ष्मी कैसे हुई?
34. शास्त्रदृष्टि में लक्ष्मी कैसी है?
35. भ्रुविकारनाटकों की श्री लक्ष्मी का क्या रुप है?
36. गुणकलहंसों में लक्ष्मी कैसी है?
37. साधुभाव में श्री लक्ष्मी कैसी है?
38. राहुजिह्वा के समान लक्ष्मी किसकी नाशिका है?
39. श्री लक्ष्मी क्या होती हुई विलुप्त होती है?
40. लक्ष्मी चिन्तन करने पर भी क्या करती है?

पाठसार

समस्त लोक श्री लक्ष्मी की कामना के लिए यत्न करता है परन्तु उसके दुश्चरित को सबसे पहले अवश्य ही जानना चाहिए। प्रस्तुत अंश में शुकनास लक्ष्मी के वास्तविक स्वरुप का प्रकाशित करते हैं। इसमें अनेक प्रकार के चाञ्चल्य, मोहिनी और शक्ति आदि हैं वह क्षणभर में एक पुरुष से दूसरे पुरुष के पास चली जाती है। वह एक पुरुष को प्रेम करती हुए दूसरे पुरुष का आलिंगन करती है। किसी के पास स्थायी रूप से नहीं रहती है। आने पर वह दुःख से रक्षीत है। अनेक प्रकार के बल की सहायता से भी उसका बन्धन असम्भव है। उसकी ही मोहिनी शक्ति है। उसके प्रभाव से व्यक्ति अपने परिचय को भूल जाता है। कुलपरम्परा की भी परवाह नहीं करती। अपने-अपनों की ये परायी प्रतीत होती है। इसके माहात्म्य से धर्मानुचरण का नाश होता है। त्याग दया दाक्षिण्य आदि सद्गुण विलुप्त हो जाते हैं। सत्यभाषण तो कथामात्रावशेष रहता है। कभी वह धनरत्नादि से समृद्ध करती है। तभी तलवार की धार पर

स्थित होकर समूल नष्ट कर देती है। यह लक्ष्मी अविश्वसनीय है। गंगा के समान यह समस्त लोकों की जननी है। परन्तु जल बुदबुद के समान चञ्चल अर्थात् प्रतिपद अस्थिर है।

बलवान धूर्त और कपट इसके प्रिय है और सज्जन अप्रिय है। जैसे हिडिम्बा ने बल को देखकर भीम का वरण किया उसी प्रकार जो साहसिक है उसके अपना बनाती है। जो ग्रहण करता है, उसे पागल बना देती है। गुणवान एवं विद्वानों से विद्वेष करती है। कमल के कंटक को जैसे हमारे द्वारा दूर किया जाता है उसी प्रकार वीर हृदय पुरुष को कंटक के समान दूर कर देती है। जैसे बुरा स्वप्न हमारे द्वारा फिर नहीं चाहा जाता है उसी प्रकार वे दाता को आदर नहीं देती है।

यह श्री अवर्णनीय है। इन्द्रजाल के समान यह परस्पर विरुद्ध विषयों को एक साथ प्रकट करती है। वह उन्नति के लिए प्रेरणा देती है परन्तु साथ में ही आलस्य दीर्घसूत्रता निद्रा आदि तमों गुणों को पैदा करती है। विषय भोग की आकांक्षा के निरावारण के लिए धनादि देती है परन्तु प्राप्ति के लिए तृष्णा को भी बढ़ाती हैं। श्री लक्ष्मी विष्णु में रत है परन्तु वह खल एवं कपटों द्वारा प्रार्थनीय है। अन्धकार प्रकोष्ठ में दीप की शिखा जलाते हैं तो वह वहाँ स्थित वस्तु का प्रकाशित करती है श्री लक्ष्मी भी अपने कुकर्मो को प्रकट करती है।

विलक्षण स्वभाव वाली यह लक्ष्मी है। जल के सिञ्चन से वृक्ष का वर्धन होता है। यह विषयरूप विषवृक्ष को जलधारा के समान बढाती है। धूम जैसे दर्पण का आवरण करती है। उसी प्रकार यह भी सज्जनों के चरित्र का आवरण करती है। धनमदलोलुप को वह जागृति करती है और शास्त्रविधि को भूलकर प्रवृत को रोकती है।

यह सज्जनों का नाश करने वाली है, जैसे बिना समय वृष्टि होने से राजहंस मरते है। उसी प्रकार इसके प्रभाव से गुणवानों का विनाश होता है। बेंत की छड़ी को धारण करती है। उससे किसी का भी निःसतरण होता है। इस प्रकार यह वेद विहित व्यवहारों को दूर करती है। राहुजिह्वा जैसे चन्द्र को उदरी करती है। यह धर्मचन्द्र का लोप करती है। गणिका (कुलटा) सभी पुरुषों को प्रेम करती है और आलिंगन करती है। परन्तु वह किसी का भी परित्याग नहीं करती है। इसी प्रकार श्री लक्ष्मी भी सभी को मोहित करती है। किसी को भी अपने मोह के बन्धन से दूर नहीं फेंकती है।

श्री लक्ष्मी मनुष्यों में जाड्यमान्धादिगुण विशिष्टों को धारण करती है। वह मानवों को प्रतिपद नीचे गिराती है। अतः इस श्री लक्ष्मी को सावधान पूर्वक स्थिर करों। भोगवासनादि का परित्याग कर राज्य के रक्षण का विधान करना चाहिए। इस पाठ में शुकनास यह उपदेश देते हैं।

पाठान्तप्रश्न

1. लक्ष्मी के उत्पत्ति रहस्य का वर्णन करो।
2. लक्ष्मी के स्वभाव का वर्णन करो।
3. जगत में लक्ष्मी के परस्पर विरुद्ध चरितों का वर्णन करो।

4. लक्ष्मी के अप्रियत्व एवं सद्वेषत्व का वर्णन करो।
5. लक्ष्मी का किनके प्रति स्नेहादि नहीं है।
6. लक्ष्मी के दुश्चरित का वर्णन करो।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

17.1

1. लक्ष्मी ने क्षीरसागर में पारिजातपल्लवो से राग स्वीकार किया।
2. श्री लक्ष्मी ने उच्चैःश्रवा से चंचलता सीखी।
3. लक्ष्मी ने कौस्तुभमणि से नैष्ठुर्य जानी।
4. मोहनशक्ति कालकूट से सीखी।
5. .....क्षीरसागरात्.....
6. .....कल्याणाभिनिवेशी.....
7. सम्मेलन -

   1-6, 2-5, 3-2, 4-1, 5-4, 6-3
8. कालकूटात्+मोहनशक्तिम्।

17.2

9. लक्ष्मी दुःख से परिपालित होती है।
10. पिंजरे में धारण करने पर भी चली जाती है।
11. परिचय की रक्षा नहीं करती।
12. सम्पति कुलक्रम का अनुसरण नहीं करती।
13. धर्म का अनुरोध नहीं करती।
14. विशेषज्ञता का विचार नहीं करती।
15. विविधगन्धगजमण्डलमधुपान मल के समान परिस्खलित होती है।
16. विश्वरूप ग्रहण करने के लिए विष्णु का आश्रय लिया।
17. श्री लक्ष्मी पाताल की गुफा के समान तमोबहुला है।

18. दुष्टपिशाची के समान दूसरे पुरुषों को उन्मत करती है।

19. मेल करो

1-11, 2-3, 3-10, 4-8, 5-9, 6-1, 7-4, 8-12, 9-5, 10-6, 11-7, 12-2

17.3

20. लक्ष्मी सरस्वती को ग्रहण करने वाले विद्वानों से ईर्ष्या करती है।

21. श्री लक्ष्मी उदारजनों को अमंगल के समान मानती है।

22. लक्ष्मी सज्जन को अपशकुन के समान नहीं देखती।

23. श्री लक्ष्मी गुणवान को अपवित्र के समान स्पर्श नहीं करती।

24. लक्ष्मी दाता को बुरे स्वप्न के समान स्मरण नहीं करती।

25. श्री लक्ष्मी जगत में परस्पर विरुद्ध अपने चरित्र को प्रकट करती है।

26. उन्नति को धारण करती हुई भी नीच स्वभाव को प्रकट करती है।

27. लक्ष्मी अमंगल प्रकृत्ति को फैलाती है।

28. श्री लक्ष्मी दुष्टों की प्रिया है।

29. दीपशिखा के समान मलिन कर्म करती है।

30. तृष्णा को बढाती हैं।

17.4

31. तृष्णाविषवल्ली को वृद्धि करने वाली जलधारा है।

32. सच्चरित चित्रों का आवरण करने वाली धूम पंक्ति है।

33. महादीर्घनिद्रा लक्ष्मी की शय्या है।

34. शास्त्रदृष्टि श्री लक्ष्मी का तिमिर नामक नेत्ररोग है।

35. भ्रूविकारनाटक की श्री लक्ष्मी संगीतशाला है।

36. गुणकलहंस के श्री लक्ष्मी अकालवृष्टि के समान है।

37. साधुभाव की श्री लक्ष्मी बध्यशाला है।

38. राहुजिह्वा के समान लक्ष्मी धर्मेन्द्रमण्डल की नाशिका है।

39. श्री लक्ष्मी उत्कीर्ण करने पर भी धोखा देती है।

40. लक्ष्मी चिन्तन करने पर भी ठगती है।

18

शुकनासोपदेश-लक्ष्मी के दुष्प्रभाव-1

इस पाठ में शुकनासोपदेश के ''एवंविधयापि चानया'' से आरम्भ करके ''सर्वजन स्योपहास्यतामुपयान्ति'' यहाँ तक के अंश का वर्णन किया गया है। लोभ पाप का कारण है। राजा बनते ही दुर्लभ इस श्री लक्ष्मी को प्रतिक्षण प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करते हैं। जीर्णवेग होने पर भी भोग विलास करने के लिए प्रयत्न करते है। दुर्जनों के साथ सगंति करके उनका और अधिक पतन होता है। सदुपदेशग्राही राजाओं का स्वार्थी व कुटिल मन्त्री उनको अनैतिक कर्म की प्रेरणा देते हैं। वे परानुकरण परस्त्रीगमन और असदाचरण को ही सदाचारण मानते हैं। उससे वे राजा प्रजा के सुख दु:खादि को नहीं देखते हैं परन्तु स्वयं के ही भोगसुखादि का ही परिरक्षण करते हैं। इस प्रकार के आचरण से वे विपद्‌गामी विपथगामी होते हैं। इस पाठ में मन्त्री के उपदेश का प्रतिपादन है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप समक्ष होंगे :

- राजसभा में स्थित कुटिल जनों के मनोभावों को समझ पाने में;
- कुटिलता कैसे राजा को वशीभूत करती है, यह समझ पाने में;
- खलजनों के वाक्यों का अनुसरण से राजाओं की होने वाली हानियों को जान पाने में;
- विमूढ राजाओं का खलानुसार से गुरू की उपेशादि निन्दनीय कर्म को जान पाने में और;
- पाठस्थ पदों के अन्वयार्थ और समास को समझ पाने में।

टिप्पणी

18.1 मूलपाठ

एवंविधयापि चानया दुराचारया कथमपि दैववशेन परिगृहीता विक्लवा भवन्ति राजानः, सर्वाविनयाधिष्ठानताञ्च गच्छन्ति। तथाहि अभिषकसमय एष चैषां मंगलकलशजलैरिव प्रक्षाल्यते दाक्षिण्यम्, अग्रिकार्य्यधूमेनेव मलिनीक्रियते हृदयम्, पुरोहितकुशाग्रसम्मार्जनीभिरिव अपनीयते क्षान्तिः, उष्णीषपट्टबन्धेनेवावच्छाद्यते जरागमनस्मरणम्, आतपत्रमण्डलेनेवापसार्य्यते परलोकदर्शनम्, चामरपवनैरिवापह्रियते सत्यवादिता, वेत्रदण्डैरिवोत्सार्य्यन्ते गुणाः, जयशब्दकलकलरवैरिव तिरस्क्रियन्ते साधुवादाः ध्वजपटपल्लवैरिव परामृश्यते यशः।

व्याख्या- इस प्रकार पूर्वोक्त लक्षण से युक्त इस दुराचारिणी लक्ष्मी द्वारा किसी प्रकार महान कष्ट या भाग्यवश स्वीकृत राजा लोग व्याकुल हो जाते हैं और अदृष्टवश सभी प्रकार की ढीठताओं के पात्र बन जाते हैं। वे सभी अविनयों के अधिष्ठाता या आश्रयता को प्राप्त होते हैं।

अभिषेक के समय ही उनकी दया-दाक्षिण्य आदि मानो मांगलिक कलशों के जल से धुल जाती है। अभिषेक के समय हवन के धुएं से मानो उसके हदय मलिन हो जाते हैं। पुरोहितों की कुशाग्ररूपी मार्जनी से मानो क्षमा गुण दूर कर दिये जाते हैं। रेशमी कपड़े की पगड़ी के बाँधने से मानो मैं वृद्ध होऊँगा, इस प्रकार की चिन्ता को ढ़क देती है। आतपत्र मण्डल या प्रसारित छत्र से ही मानो जन्मान्तर के प्रति दृष्टिपात रोक दी जाती है। चामर की वायु से सत्यवादिता को उड़ा देती है। बेंत की छड़ी के समान दया दाक्षिण्यादि सब गुणों को बाहर निकाल दिये जाते है। जय ध्वनि के कोलाहल के साथ उनकी सज्जनता की प्रशंसा को तिरस्कृत किया जाता है। वैजयन्ती वस्त्र, पल्लव रूप, पताका से उनकी कीर्ति व यश को मिटा दिया जाता है।

सरलार्थ- यह दुराचारिणी लक्ष्मी यदि राजाओं द्वारा कभी देव या भाग्यवश स्वीकृत कर ली गयी तो सभी दुर्गति उनका आश्रम स्थल हो जाती है। जैसा कि अभिषेक के समय में मंगल कलश के जल से इन राजाओं की उदारता धुल जाती है। हवन के धूम से चित को मलिन किया जाता है, पुरोहित के कुशाग्रभागरूप मार्जनी से दया-दाक्षिण्य, क्षमा, सन्तोष आदि गुण दूर किये जाते है, मस्तक पर पट्टबन्धन अर्थात पगड़ी से राजाओं के वार्धक्यगति की स्मृति को ढक दिया जाता है। चामर, छत्र से सत्यकथन को रोक दिया जाता है, जय शब्दों की ध्वनि से हितकारी वचनों को नहीं सुनने दिया जाता है। जिस यश के नाम से राजाओं की स्तुति होती है। उस स्तुति या यश को ध्वजा के वस्त्ररूप पत्रों से उसी प्रकार दूर किया जाता है जैसे पत्रों से मल को साफ किया जाता है। इस प्रकार लक्ष्मी राजाओं को पीड़ित करती है।

व्याकरणविमर्श-

समास-

- **उष्णीषपट्टबन्धेन**-उष्णीषस्य पट्टबन्धः उष्णीषपट्टबन्धः इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः, तेन उष्णीषपट्टबन्धेन इति।
- **चामरपवनैः** - चामरस्य पवनैः चामरपवनैः इति षष्ठीतत्पुरुषः।

- **जयशब्दकलकलरवैः** - जयशब्दस्य कलकलरवाः जयकलकलरवाः इति षष्ठीतत्पुरुषः, तैः जयशब्दकलकलरवैः इति।

सन्धि-

- **मंगलकलशजलैरिव** - मंगलकलसजलैः +इव।
- **सम्मार्जनीभिरिवापह्नियते** - सम्मार्जनीभिः+ इव +अपह्नियते।
- **उष्णीषपट्टबन्धेनेवावच्छाद्यते** - उष्णीषपट्टबन्धेन+ अवच्छाद्यतें।

अलंकार विमर्श-

- **एवंविधया**- इस वाक्य में कार्य द्वारा लक्ष्मी में पिशाचीत्व आदिका समावेश होने से समासोक्ति अलकार है।
- **अभिषेक समये**- यहां से परामृश्यते इव इस वाक्य में प्रक्षालन आदि क्रियाओं का उत्पेक्षा होने से क्रिया उत्प्रेक्षा अलंकार है।
- 'पुरोहित कुशाग्र सम्मार्जनीभिः' इस वाक्य में कुशाग्र आदि का सम्मार्जनी आदि से अभेद प्रतिपादन के कारण रूपक अलंकार है।

कोश-

- ''हैमं छत्रं त्वातपत्रम्'' इत्यमरवचनात् हैमम्, छत्रम्, आतपत्रम् इत्येते समार्थकाः शब्दाः।
- ''पताका वैजयन्ती स्यात्केतनं ध्वजमस्त्रियाम्'' इत्यमरवचनात् पताका, वैजयन्ती, केतनम्, ध्वजम् इत्येते समार्थकाः शब्दाः।
- ''कलशस्तु त्रिषु द्वयोः। घटः कुटनिपावस्त्री'' इत्यमरवचनात् कलशः, घटः, कुटः, निपः इत्येते समार्थकाः।

पाठगतप्रश्न 18.1

1. दुराचारी लक्ष्मी से परिग्रहीत राजा कैसे होते है?
2. अभिषेक के समय किसके समान राजाओं का दाक्षिण्य गुण धुल जाता है?
3. राजाओं का हदय किससे मलिन होता है?
4. राजाओं का क्षमागुण किससे दूर होता है?
5. अभिषेक के समय राजाओं का वार्धक्य वृद्धि किससे दूर होती है?
6. राजाओं का यश अभिषेक काल में किससे साफ किया जाता है?

टिप्पणी

18.2 मूलपाठ

केचिच्छ्रमवश-शिथिलशकुनिगल-पुट-चपलाभि: खद्योतोन्मेष-मुहूर्त-मनोहराभिर्मनस्विजनगर्हिताभि: सम्पद्भि: प्रलोभ्यमाना: धन-लवलाभावलेपविस्मृतजन्मानोऽलेकदोषोपचितेन दुष्टासृजेव रागावेशेन बाध्यमाना:, विविधविषय-ग्रास-लालसै: पच्ञभिरप्यनेकसहस्रसंख्यैरिवेन्द्रियैरायास्यमाना:, प्रकृतिचच्ञलतया लब्धप्रसरेणैकेनापि सहस्रतामिवोपगतेन मनसा आकुलीक्रियमाणा विह्वलतामुपयान्ति। ग्रहैरिव गृह्यान्ते, भूतैरिवाभिभूयन्ते, मन्त्रैरिवावेश्यन्ते, सत्त्वैरिवावष्टभ्यन्ते, वायुनेव विडम्ब्यन्ते, पिशाचैरिव ग्रस्यन्ते। मदनशरैर्मर्म्माहता इव मुखभङ्सहस्त्राणि कुर्वते, धनोष्मणा पच्यमाना इव विचेष्टन्तें, गाढप्रहाराहता इवाङ्गानि न धारयन्ति, कुलीरा इव तिर्य्यक् परिभ्रमन्ति, अधर्म्मभग्रगतय: पग्डव इव परेण सञ्चार्य्यन्ते, मृषावाद-विष-विपाक-सञ्जाज-मुखरोगा इवातिकृच्छ्रेण जल्पन्ति, सप्तच्छद-तरव इव कुसुमरजोविकारै: पार्श्ववर्तिनां शिर:शूलमुत्पादयन्ति, आसून्नमृत्यव इव बन्धुजनम् अपि नाभिजानन्ति, उत्कुपित-लोचना इव तेजस्विनों नेक्षन्ते, कालदष्टा इव महामन्त्रैरपि न प्रतिबुध्यन्ते, जातुषाभरणानीव सोष्माणं न सहन्ते, दुष्टवारणा इव महामानस्तम्भनिश्चलीकृता ना ग्रहवून्त्युप्रदेशम्, तृष्णाविषमूर्च्छिता: कनकमयमिव सर्वं पश्यन्ति, इष वइव पानवर्द्धिततैक्ष्ण्या: परप्रेरिता विनाशयन्ति, दूरस्थितान्यपि फलानीव दण्डविक्षेपैर्महाकुलानि शातयन्ति, अकालकुसुमप्रसवा इव मनोहरकृतयोऽपि लोकविनाशहेतव:, श्मशानाग्रय इवातिरौद्रभूतय:, तैमिरिका इवादूरदर्शिन: उपसृष्टा इव क्षुद्राधिष्ठितभवना:, श्रूयमाणा अपि प्रेतपटहा इवोद्वेजयन्ति, चिन्त्यमाना अपि महापातकाध्यवसाया इवोपद्रवमुपजलयन्ति, अनुदिवसमापूर्य्यमाणा: पापेनेवाध्मातमूर्त्तयो भवन्ति, तदवस्थाश्च व्यसनशतशरव्यतामुपगता वल्मीकतृणाग्रावस्थिता: जलबिन्दव इव पतितमप्यात्मानं नावगच्दन्ति।

व्याख्या-

केचिद् शब्द का विह्वलतामुपयन्ति इस भाग के साथ सम्बन्ध है। अत: केचिद् का अर्थ कुछ व्याकुल राजाओं के साथ है। कुछ राजा श्रमवश शिथिल हुए मयूरादि पक्षियों के गलपुर(गर्दन) उसी के समान चंचल से, जुगनू (खद्योत) के प्रकाश के समान क्षण भर लिए मनोहारी होने से ज्ञानी जनों द्वारा निन्दित धनसम्पति से प्रलोभ्यमान राजा लोग विकलता को प्राप्त होते हैं।

वे सामान्य धन-लाभ के अहंकार से अपने-अपने जन्म समय के वृतान्त को भूल जाते है, वे वात, पित्त, कफ से दूषित रक्त के समान क्रोधादि दोषों से वृद्धि प्राप्त विषयासक्ति में यातना भोग करते रहते हैं। शब्द स्पर्शादि अनेक प्रकार के विषयों के रस का आस्वादन करने के अभिलाषी एवं पंचसंख्यक होने पर भी विषय बाहुल्य से मानो अनेक सहस्र संख्या को प्राप्त किये हुए इन्द्रियों से दुखभोग करते रहते हैं और मन स्वभावत चंचल होने के कारण अवकाश मिलने पर अनके विषयों में दौड़ता रहता है। अतएव एक होने पर भी मानो सहस्र संख्या के प्राप्त हुए उस मन से राजा लोग आकुल हो कर एक ही वार से व्याकुल हो जाते है।

उस समय पूतना राक्षसी आदि कोई ग्रह आकर मानो उन लोगो को घेर लेती हैं। भूत-पिशाच उन पर प्रभाव डालते है। किसी मन्त्र वैदिक या तान्त्रिक शक्ति से मानो उन लोगों को वश में कर लेते हैं। हिंसक जन्तु सिंहादि एव विकराल प्राणी मानों हठ से उनको पकड़ लेते हैं। वायु

टिप्पणी

रोग से ही मानो वे विचलित किये जाते हैं। पिशाच मानो उनका ग्रास करते हैं कामदेव के बाणों से मर्म आहत होकर ही मानो वे हजारों मुख विकार करते रहते हैं। धन की अहंकाररूपी अग्नि में पच्यमान होकर ही वे अनेक प्रकार की भावभंगी प्रकट करते हैं। कर्क या केकड़ें के समान सभी के साथ कुटिल रूप से चलते रहते हैं। अधर्म के कारण कर्तव्यपथ में चलने की शक्ति नष्ट हो जाती है। अतएव पंगु के समान वे अन्य पुरुष के सहारे से चलते हैं। सत्यवादिता रुपी विष के विकार से मुखरोग उत्पन्न होता है। जिस कारण वे अत्यन्त कष्ट से बोलते हैं। जिस प्रकार सप्तपर्ण का वृक्ष अपने पुष्प के पराग से समीपवर्ती लोगों के सिर में पीडा उत्पन्न करता है उसी प्रकार वे राजा लोग भी रजोगुण से उत्पन्न अवज्ञा सूचक नेत्र भंगी, नेत्र दोष द्वारा अपने पास में बैठने वाले लोगों में दु:ख उत्पन्न करते हैं। मुमुर्षु अर्थात् मरणासन्न व्यक्ति के समान वे लोग अपने बन्धु जनों को भी नहीं पहचानते हैं। जिस नेत्रदोष या नेत्र रोग होने पर लोग किसी चमकीले पदार्थ के प्रति दृष्टिपात करने में समर्थ नहीं देखते हैं। जिस प्रकार लोग भयंकर सर्प के काटे जाने पर विष-वैध अर्थात् ओझा या गरुड मन्त्र कर्ता के उत्कष्ट मन्त्रों से भी चेतनता प्राप्त नहीं करते है उसी प्रकार वे लोग भी उत्कृष्ट मन्त्रणाओं अर्थात् योग्य मन्त्रीजनों की सलाह से भी अपने कर्तव्य को समझने में समर्थ नहीं होते हैं। लाक्षनिर्मित आभूषण के समान वे दूसरे के प्रताप (अग्नि की ऊष्णता) को सहन करने में समर्थ नहीं होते हैं। जिस प्रकार दुष्ट हाथी बड़े परिमाण के बन्धस्तम्भ से बांधकर निश्चल किये जाने पर भी महावत की शिक्षा को ग्रहण नहीं करता है उसी प्रकार के राजा लोग भी अत्यन्त अहंकार से स्तब्धतावश निस्पन्द रहकर किसी का उपदेश ग्रहण नहीं करते हैं। वे राजा लोग धन लालसा रूप विषवेग से विभ्रान्त होकर संसार की सब वस्तुओं को ही मानो धनमय देखते हैं। जिस प्रकार शाण चढ़ाने वाले प्रस्तर के घर्षण से तीखे तीव्र बने बाण धनुष द्वारा छोड़े जाने पर लक्ष्यपदार्थ को विनष्ट करता है। उसी प्रकार वे लोग भी मद्यपान से उग्र स्वरुप बढ़ जाने के कारण तथा दूसरों को खुश करने के लिए प्रजाओं को विनष्ट करते हैं।

मनुष्य जिस प्रकार डंडे को फेंक कर दूर रहने पर भी बड़े-बड़े फलों को तोड़ लेता है। वे राजा लोग भी उसी प्रकार दण्ड का प्रयोग कर दूर स्थित होने पर भी सत्कुलोत्पन्न लोगों को विनष्ट करते हैं। जिस प्रकार असामयिक पुष्प का विकास सुन्दर होने पर भी लोगों के विनाश का सूचक होता है उसी प्रकार वे राजा लोग मनोहर आकार वाले होने पर भी लोगों के विनाश के कारण बने रहते है। जिस प्रकार शमशान में स्थित अग्नि की भस्म अत्यन्त भयंकर होती है उसी प्रकार उन लोगों की सम्पत्ति भी अत्यन्त भयंकर होती है।

नेत्ररोग उत्पन्न होने पर जिस प्रकार लोग दूर की वस्तु को नहीं देख सकते हैं। उसी प्रकार वे राजा भी दूरदृष्टि के अभाव के कारण परिणाम को नहीं देख पाते हैं। जिस प्रकार वैश्याओं के गृह कामुक लोगों से युक्त होते हैं उसी प्रकार उन राजाओं के महल भी नीच जनों से युक्त होते हैं। मृत व्यक्ति के दाहकालीन ढक्का (प्रेतपटहा) शब्द सुन जाने वाला वाद्य विशेष को प्रेतपटहा कहते हैं।

ब्रह्म हत्या आदि महापातकों का अनुष्ठान करने के उद्योग के समान उनका ध्यान करने से भी मन में अशान्ति उत्पन्न होती है। वे प्रतिदिन महापातक रुपी पाप से परिपूर्ण होकर भी स्फीतदेह हो जाते हैं इस प्रकार वे राजा लोग काम क्रोध जनित अनेक विध दोषों का आश्रय होकर

वाल्मीक (बांबी) के ऊपर विद्यमान तृण के अग्रभाग के अग्रभाग पर पडी हुई जल की बुंदों के समान पतित (भूमिच्युत) होने पर भी अपने को पतित (स्वधर्मच्युत) नहीं समझ पाते हैं।

सरलार्थ- यह सम्पत्ति परिश्रमवंश शिथिल हुए पक्षी के गलदेश के समान, खद्योत (जुगनू) के प्रकाश के समान जो क्षणिक सुन्दर होता है। अतएव ज्ञानियों द्वारा निन्दित यह लक्ष्मी प्रलोभित हुए कुछ राजा लोग तो ज्ञानी जनों की निंदा के पात्र होते है। ये किंचित् धनलाभ के लिए अहंकार से अपने-अपने जन्म के वृतान्त को भूल जाते हैं। वात, पित्त, कफ दूषित रुधिर ही अनेक दोषों से बढ़ता हुआ विषयासक्ति यन्त्रणाओं का भोग करते हैं।

शब्दस्पर्शादि विषयों के ग्रहण में लोलुप होने से विषयों के बाहुल्यता से हजारों की संख्या से इन्द्रियों से कष्ट का अनुभव करते हैं। स्वभाव से मन विविध विषयों में दौड़ता है। अत: एक ही मन हजारों सा प्रतीत होता है। उस मन से राजा लोग चंचलता को प्राप्त होते हैं और वे राजा जन पुन:दुष्ट ग्रहों से आविष्ट के समान, भूत प्रेतों से गृहीत के समान, मन्त्र शक्ति से वशीभूत के समान, वन्यपशुओं से आक्रान्त के समान, पिशाचों से ग्रस्त के समान दिखाई देते हैं। वे मुख को वक्र करते हैं, कामदेव के पुष्पबाणों से घायल के समान, आचरण करते हैं। धन के अहंकाररूपी अग्नि से पके हुए के समान, कर्कवत् अर्थात् केकड़े के समान कुटिल व्यवहार करते हैं। पाप से कर्तव्य मार्ग का अनुसरण करने से राजाओं की शक्ति नष्ट होती हैं। इस कारण वे राजा पंगू के समान अन्य लोगों द्वारा संचालित होते हैं।

असत्य कथन रूप अभ्यास के विष से विकृत मुखवाले वे कष्ट से बोलते हैं। सप्तपर्ण पुष्पों के पराग के स्पर्श से जैसी शिरोवेदना उत्पन्न होती है। उसी प्रकार उन राजाओं के रजोगुण सम्भूत रक्त नेत्र युगल प्रजा को दु:ख का सम्पादन करते हैं। वे राजा लोग मरणासन्न जन के समान बान्धवों को नहीं पहचानते हैं नेत्ररोग से आक्रान्त के समान वे प्रतापी जनों को नहीं देखते हैं। कालसर्प से दंशित जन विष वैध के महामन्त्रों से भी चैतन्य को प्राप्त नहीं होते हैं। उसी प्रकार वे राजा उत्कृष्ट मन्त्रियों की मन्त्रणा से भी अपने कर्त्तव्य को नहीं जानते है। स्तम्भ से बन्धे हाथी के समान हितकारी उक्ति को नहीं सुनते हैं।

धन के लालसारूपी विष से मूर्च्छित वे सब कुछ ही धनमय देखते हैं। पत्थर से शोणित बाण जैसे धनु से छोड़े जाने पर निर्दिष्ट लक्ष्य को भेदता हैं उसी प्रकार सुरा के सेवन से वर्धित उग्र स्वभाव वाले राजा अन्यों द्वारा प्रेरित होते हुए प्रजा को पीड़ित करते हैं। यथा छड़ी के फेंकने से दूरस्थित फल का ग्रहण होता है उसी प्रकार वे सद्वंश उत्पन्न लोगों का विनाश करते हैं। उस समय विकसित पुष्प के समान सुन्दर होते हुए भी लोगों के विनाश के सूचक हैं उसी प्रकार मनोरम आकृति वाले राजा लोगों के विनाश के कारण होते हैं। श्मशान भूमि में स्थिति अग्नि की भस्म अत्यन्त भयंकर होती है उसी प्रकार राजा की सम्पति भयंकर होती है। नेत्ररोग से आक्रान्त जैसे दूरस्थ वस्तु को नहीं देख सकता उसी प्रकार राजा कृत परिणाम को देखने में असमर्थ है। राजभवन उसी प्रकार होता है जैसे कामुक वनिता (वैश्या) के द्वार के समान नीचस्व-नीचस्वभाव वालों का सदन। मृत व्यक्ति के दाहकानीन के ढक्का की ध्वनि के समान राजग्रह का नाम सुनकर उद्वेग पैदा होता है। ब्रह्महत्यादिरुप पापानुष्ठानों का उद्योग के समान उसके ध्यान मात्र से ही मन में अशान्ति उत्पन्न होती हैं लेकिन ये पाप से प्रतिदिन पवित्र होते हुए राजा स्फीतशरीर होते हैं। उस अवस्था में कामादि दोषों से दुष्ट वे वाल्मीक (बांबी) की

मृतिका से उत्पन्न तृणों के आगे पवित्र जल बिन्दु के समान अपने पतन को भी जानने में भी समर्थ नहीं होते हैं।

व्याकरणविमर्श

समास

- **धनलवलाभावलेपविस्मृतजन्मानः** - धनस्य लवः धनलवः इति षष्ठीतत्पुरुषः। धनलवस्य लाभः धनलवलाभः इति षष्ठीतत्पुरुषः। धनलवलाभेन अवलेपः धनलवलाभावलेपः इति तृतीयातत्पुरुषः। तेन विस्मृतं धनलवलाभावलेपविस्मृतम् इति तृतीयातत्पुरुषः। धनलवलाभावलेपविस्मृतं जन्म येषां ते धनलवलाभावलेपविस्मृतजन्मानः इति बहुव्रीहिसमासः।
- **उत्कुपितलोचनाः** - उत्कुपिते लोचने येषां ते उत्कुपितलोचनाः इति बहुव्रीहिसमासः।
- **मृषावादविषविपाकसज्ञातकुरखरोगाः** - मृषावाद एव विषम् मृषावादविषम् इति कर्मधारयसमासः। तस्य विपाकः मृषावादविषविपाकः इति तृतीयातत्पुरुषः। मृषावादविषविपाकेन सज्ञातः मृषावादविषविपाकसज्ञातः इति तृतीयातत्पुरुषः। मृषावादविषविपाकसज्ञातः मुखरोगः येषां ते मृषावादविषविपाकसज्ञातकुरखरोगाः इति बहुव्रीहिसमासः।
- **महामानस्तम्भनिश्चलीकृताः** - महत् मानं यस्य स महामानः इति बहुव्रीहिः। महामान एव स्तम्भः महामानस्तम्भः इति कर्मधारयः। महामानस्तम्भेन निश्चलीकृताः महामानस्तम्भनिश्चलीकृताः इति तृतीयातत्पुरुषः।

सन्धि

- **पंचभिरप्यनेकैः** - पंचभिः+ अपि+ अनेकैः।
- **भूतैरिवाभिभूयन्ते** - भूतैः+ इव+ अभिभूयन्ते।
- **मन्त्रैरिवावेश्यन्ते** - मन्त्रैः+ इव +आवेश्यन्ते।
- **यहस्रसंख्यैरिवेन्द्रियैरायास्यमानाः** - सहस्रसंख्यैः+ इव +इन्द्रियैः +आयास्यमानाः।

अलंकार विमर्श

- धनलाभ इस से बाध्यमान तक के अंश मे दूषितरैतेन उपमान के साथ रागावेश का अवैधर्म्य का साम्य का कथन होने से उपमालंकार। यहां उपमान, उपमेय, उपमावचक शब्द और साधारण धर्म इन अशंचतुष्टय के होने से पूर्णोपमा है उसका लक्षण साहित्यदर्पण में-

  सा पूर्णा सामान्यधर्म औपम्यवाचि च।
  उपमेयं चोपमानं भवेद्वाच्यम्॥

- **विविधेत से आयास्यमाताः** तक वाक्य में गुण की संभावना होने से ग्रणोत्प्रेणालंकार है।
- एवमेव प्रकृति इति इस वाक्य में, मन्त्रैरिव्यास्मिन्, मदनशरैः इस वाक्य में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

टिप्पणी

- **कुलीरा:** इस वाक्य में, अधर्ममग्रगतय: इस वाक्य में उपमानोपमेय का अवैधर्म्य का साम्य कथन से पूर्णोपमा अलंकार है।
- **मृषावादविषविपाक** -यहाँ मृषावाद ही विष है अत: यहाँ निरंग रुपक है।
- उत्कुपितलोचना वाक्य में उपमालंकार है।
- **कालदष्य:** वाक्य में संसृष्टि अलंकार है।
- तृष्णा विषमूच्छिता: वाक्य में रुपक, उत्प्रेक्षा का अंग अगि भाव से संकर अलंकार है।
- **इषव:**, दूरस्थितान्, अकालेत, श्मशानाग्रय:, इन वाक्यों में उपमा अलंकार, तैमिरिका, उपसृष्टा, श्रूयमाणाचिन्त्यमाना, अनंदितसम वाक्यों में उपमालंकार है।

कोश

- **कुसुमं स्त्रीरजोनेत्ररोगयो:** फलपुष्पयो:'' इति मेदिन्युक्ते: कुसुमशब्दस्य स्त्रीरज:, नेत्ररोग:, फलम्, पुष्पम् इत्येतेषु अर्थेषु व्यवहारो भवति।
- **भूतिर्भस्मनि सम्पत्तिहस्तिश्रृङ्ग्रयो:** स्त्रियाम्'' इति मेदिनीकोशाद् भूतिशब्दस्य सम्पत्ति: हस्तिश्रृङ्ग्रम् इत्यनयो: अर्थयो: प्रयोग:।

पाठगत प्रश्न 18.2

7. क्षणस्थायी सम्पदा प्राप्त राजा किनकी निन्दा के पात्र होते हैं?
8. राजाओं की उन इन्द्रियों की आधिक्य के कारण क्या हैं?
9. मन कैसे विविध विषयों में दौड़ता है?
10. मदन के वाणों से घायल राजा क्या करते है?
11. राजा किसके समान वक्रगति से जाते है?
12. मुमूर्पूवत् वे राजा किसके परिचय में असमर्थ होते है?
13. राजसम्पत्ति कैसी होती है?
14. वे राजा किसके समान प्रजा को शिरोवेदना पैदा करते है?

18.3 मूलपाठ 12

अपरे तु स्वार्थनिष्पादनपरैर्धन-पिशित-ग्रास-गृध्रैरास्थाननलिनीबकै:, द्युतं विनोद इति, परादाराभिगमनं वैदग्ध्यमिति, मृगया श्रम इति, पानं विलास इति, प्रमत्तता शौर्यमिति, स्वदारपरित्यागोऽव्यसनितेति, गुरुवचनावधीरणम् अपरप्रणेयत्वमिति, अजितभृत्यता सुखोपसेव्यत्वमिति नृत्य-ग्रीत-वाद्य-वेश्याभिसक्ती

टिप्पणी

रसिकतेति, महापराधाकर्णनं महानुभावतेति, पराभवसहत्वं क्षमेति, स्वच्छन्दता प्रभुत्वमिति, देवावमाननं महासत्त्वतेति, वन्दितजनख्यातिर्यश इति, तरलता उत्साह इति, अविशेषज्ञता अपक्षपातित्वमिति दोषानपि गुणपक्षमध्यारोपयदिभ्रन्तः स्वयमति विहसदिभ्:। प्रतारणकुशलैर्धूर्त्तरमानुषोचिताभिः स्तुतिभिः प्रतार्य्यमाणा वित्तमदमत्तचिन्ता निश्चेतनतया तथैवेत्यन्यारोपितालीकाभिमाना मर्त्यधर्म्माणोऽपि दिव्यांशावतीर्णमिव सदैवतमिवातिमानुषमात्मानमुत्प्रेक्षमाणाः प्रारब्धदिव्योचितचेष्टानुभावाः सर्वजनस्य उपहास्यतामुपयान्ति।

व्याख्या-

दूसरे अनेक ऐसे राजा हैं जिनकी सभा में स्वार्थ सम्पादन में रत एवं धनरूपी मांस का ग्रास करने से गृध स्वरुप और सभा मण्डप रूपी कमलिनी में बगुला पक्षी स्वरुप तथा ठगने में कितने ही धूर्त गण रहते हैं। जो राजाओं को इस प्रकार समझाया करते हैं कि जुआ खेलना विनोद है, परस्त्री से दुराचार चतुरता है, शिकार खेलना व्यायाम हैं मद्यपान करना विलासिता है, किसी विषय में सावधानी न रखना वीरता है अपनी पत्नी को छोड़ देना अनासक्ति है, गुरु के उपदेश को ग्रहण नहीं करना स्वाधीनता है। स्वाधीन रुप या मनमाने ढंग से चलने वाले सेवक जनों को दण्ड न देना सुखपूर्वक शुश्रूषा या सेवा है, नाचना गाना और बजाना व वैश्याओं में आसक्ति रखना रसिकता है, बड़े-बड़े अपराधों को नहीं सुनना अर्थात् उन पर ध्यान नहीं देना महानुभावता का परिचय हैं, दूसरे का अपमान सहन करना क्षमा है, स्वेच्छाचारिता प्रभुत्व है, देवताओं का तिरस्कार करना या उनको कुछ न गिनना महाबलशालिता का परिचय है, बन्दीजनों से की गई प्रशंसा ही यश है, मन की चंचलता ही उत्साह है एवं सूक्ष्म रुप से कार्यो की पर्यालोचना न करना अर्थात् भले-बुरे का भेद न जानना निष्पक्षता है इस प्रकार धोखा देने में निपुण धूर्त लोग दोषों को भी गुण की श्रेणी में आरोप करते हैं किन्तु मन में अपने से भी उपहास करते हैं और देवता के उपयुक्त स्तुति या मनुष्यों के अयोग्य खुशामद करके राजाओं को ठगते रहते हैं। एक ही धन के अहंकार से उत्पन्न होकर उन लोगों की इस प्रकार की स्तुति से चैतन्यविहीन हो जाते है अतएव ये लोग जैसे बोलते हैं ठीक उसी प्रकार का हूँ। इस तरह वे इन सभी को यथार्थ समझकर मिथ्या अभिमान का आरोप करते हैं। मनुष्य होने पर भी मानों अपने को देवता के अंश से अवतीर्ण अथवा किसी देवता द्वारा अधिष्ठित अतएव देवता मान कर दिव्य पुरुषों के उपयुक्त काम करके अपना माहात्म्य दिखाते हैं।

सरलार्थ-

इस प्रकार अनेक राजा हैं जिनके सभा में धूर्त स्वार्थसम्पादन में रत रहते हैं वे धनरूप मांस संग्रह में गृध के समान हैं, सभामण्डप रूप कमलवन में स्थित बक पक्षी स्वरुप प्रवञ्चन (ठगने) में कुशल कुछ धूर्त रहते हैं और ये राजाओं को ही संबोधन करते है कि द्यूत क्रीडा विनोद होती है। परस्त्री गमन चातुर्य है, शिकार करना व्यायाम है। मद्यपान को विलासिता, किसी विषय में असावधानी ही वीरता है, और स्वयं की पत्नी का परित्याग ही अनासक्ति है, गुरुपदेश की अवज्ञा ही स्वाधीनता है, स्वेच्छानुसार विद्यमान सेवकों के लिए दण्ड का अभाव ही सुख सेविका है।, नृत्य गीत वाद्यादि में और गणिकाओं में आसक्ति ही रसिकता है, महान् अपराध में ध्यान न देना अपनी महानुभवता का परिचय है दूसरों द्वारा किये अपमान को सहन करना

टिप्पणी

ही क्षमा है। सूक्ष्मरुप से कार्यों का समालोचन नहीं करना निष्पक्षता है। इस प्रकार से प्रतारण निपुण धूर्त गुणों में दोषों का आरोप करते है। किन्तु वे मन में स्वयं ही उपहास करते हुए देवताओं की यथा योग्य स्तुति से राजाओं की प्रतारणा करते हैं। अन्यपक्ष में तो राजा धन अहंकारवश उन्मत होते हुए लोगों की इस प्रकार स्तुति से चैतन्य विहीन होते हैं। अतएव ये जैसे कहते हैं मैं वैसा ही हूँ। ऐसा चिन्तन करते हैं इन सब को यथार्थ मानकर झूठा अभिमान करते हैं। मनुष्य होते हुए भी वे राजा अपने को देवता के अंश का अवतार या देवताओं द्वारा अधिष्ठित मानते हैं। अपने कार्य को राजा देवानुग्रह मानते हैं। इस प्रकार राजा समस्तलोक के उपहास की योग्यता प्राप्त करते हैं। शुकनास के कहने का आशय है कि हे चन्द्रापीड तुम इन राजाओं के समान न होना।

व्याकरणविमर्श

समास

आस्थाननलिनीबकैः - आस्थानम् एव नलिनी आस्थाननलिनी इति कर्मधारयसमासः। आस्थाननलिन्यां बकः आस्थाननलिनीबकः, तैः इति सप्तमीतत्पुरुषसमासः।

प्रारब्धदिव्योचितचेष्टानुभावाः - दिव्याचिताः चेष्टानिभावाः दिव्योचितचेष्टानुभवाः इति कर्मधारयसमासः। प्रारब्धाः दिव्योचितचेष्टानुभवा यैः ते प्रारब्धदिव्योचितचेष्टानुभावाः इति बहुव्रीहिसमासः।

सन्धि

प्रतारणकुशलैर्धूर्त्तैरमानुषोपचिताभिः - प्रतारणकुशलैः+ धूर्तैः+ अमानुषोपचिताभिः।

देवाधिष्ठितोऽहम् - देवाधिष्ठितः+ अहम्।

अलंकार विमर्श

अपर - इस वाक्य में पारम्परिक रुपक अलंकार है।

इति इस वाक्य में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

सदैवतम्- वाक्य में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

कोश- ''सत्त्वं गुणे पिशाचादौ बले द्रव्यस्वभावयोः'' इति मेदिनी।

पाठगत प्रश्न 18.3

15. राजसभा में स्थित स्वार्थ निष्पादनरत धूर्त कैसे होते हैं?
16. धूर्तो के मत में द्यूतक्रीडा क्या है?
17. राजसभा में स्थित धूर्तो का नय में प्रभुत्व क्या है?

18. लोग कैसे निश्चेतन होते हैं?

19. वे राजा लोग किस कारण से हास्यपद होते हैं?

पाठसार

यौवन, धनसम्पति, प्रभुत्व एवं अविवेकता इन में एक भी महान अनर्थ को पैदा कर सकती है। जहाँ पर ये चारों होती हैं वहाँ तो कुछ भी नहीं कह सकते हैं। यह दुराचारणी लक्ष्मी जिस राजा का आश्रय करती हैं वह अज्ञान से ही दुराचारपरायण हो जाता है। इस पाठ में महाकवि वाणभट्ट ने शुकनास के मुख से चन्द्रापीडोपदेशव्याज से उस लक्ष्मी के कुप्रभावों को कारण सहित वर्णित किया है। जैसा कि वह लक्ष्मी ही राज्याभिषेक के समय में ही मंगलकलश के जल से राजाओं को दुर्गुणों को हटाये बिना उदारता को धो देती है। हवन की अग्नि से चित को मलिन करती है।, पुरोहितों के कुशाग्र भागरुपी मार्जनी से दया-दाक्षिण्य क्षमा सन्तोष आदि गुणों को दूर करती है। मुकुट के पट्टबन्धन (पगड़ी) से बर्धिक्यगत स्मृति को आच्छादित कर देती है। छत्र मण्डल से अनेक परलोक ज्ञान को दूर करती है। चामरों से सत्यकथन को छिपा देती है। बेंतदण्ड से सद्गुणों को दूर संस्थापित करती है, जय शब्दादि कलरव से हितकारी वचनों का नहीं सुनते हैं। जिस यश में नाम की राजस्तुति होती हैं, जैसे राजा को यह कार्य करना चाहिए। इस प्रकार बैठना चाहिए, इस प्रकार आचरण करना चाहिए, ऐसा उत्तम राजचरित वर्णन रूप स्तुति जैसे पत्र से पल दूर किया जाता है। उसी प्रकार राजा की ध्वजा के वस्त्र रूप मंत्र से उन सब को दूर करती यह लक्ष्मी।

परिश्रम से थके पक्षियों के शिथिलभूत गलदेश जैसा क्षणभर के लिए चञ्चलता को प्राप्त होता है। खद्योत (जुगनू) के प्रकाश जैसे क्षणभर के लिए सुन्दर होता है। उसी प्रकार यह सम्पत्ति सुन्दर प्रतीत होती है। इस सम्पत्ति के चंचल होने से ज्ञानियों द्वारा सम्पत्ति के लोभी होते हुए कुछ राजा ज्ञानियों के निंदा के पात्र होते हैं। वे कुछ धनलाभ के अहंकार से अपने जन्म के वृतान्त को भूल जाते है और वात, पित्त, कफ द्वारा दूषित रक्त वाले अनेक दोषों से विषय आसक्ति यन्त्रणा को भोगते हैं। शब्द स्पर्श आदि विषयों के ग्रहण में लालसा से विषयों की बाहुलाय से पंचाधिक या पञ्चाधिक होने पर भी हजारों की संख्या से इन्द्रियों से कष्ट का अनुभव होता है। स्वभाव से ही मन विविध विषयों में दौड़ता है इस कारण से एक होने पर भी मन हजार प्रतीत होता है। उस मन से ही राजा चंचलता को प्राप्त होता है। उससे ये राजा पुनः दुष्टों से ग्रहीत के समान, प्रेतों से गृहीत के समान, पिशाचग्रस्त ही दिखाई देते हैं। वे मुख को वक्र करते हैं। जैसे कामदेव के कुसुम बाणों से घायल प्राणियों के समान प्रकट करते हैं। धन की अहंकार रुपी अग्नि से दग्ध जैसा ही आचरण करते हैं। केकड़े के समान कुटिल व्यवहार करते हैं। वे राजा कर्तव्य पक्ष में चलने के लिए राजाओं की शक्ति नष्ट होती है। उसी कारण से पंगु के समान दूसरे लोगों द्वारा चलाये जाते हैं। झूठ बोलने के अभ्यास के कारण कष्ट से ही कुछ बोल पाते हैं, जैसे विष से विकृत मुख वाले बोलते हैं। सप्तपर्ण के पुष्पों के कण के स्पर्श से जैसे शिरोवदेना उत्पन्न होती है, वैसे ही लक्ष्मी के मद से रजोगुण सम्भूत रक्तनेत्र युगल प्रजा में दुःख उत्पन्न करता है। वे राजा लोग मरणासन्न के समान बान्धवों को नहीं

टिप्पणी

पहचाते हैं। नेत्र रोग से आक्रान्त के समान वे प्रतापी लोगों को नहीं देखते हैं। कालसर्प द्वारा दंशित जन जैसे विष वैध के उत्कृष्ट महामन्त्रों से भी चैतन्य को प्राप्त नहीं होते हैं, वैसे ही राजा उत्कृष्ट महामन्त्रों से भी चैतन्य को प्राप्त नहीं होते हैं। अर्थात् राजा उत्कृष्ट महामन्त्रियों की मन्त्रणा से भी अपने कर्तव्यों को नहीं जानते हैं। लाख निर्मित आभूषण जैसे अग्नि को सहन नहीं करते उसी प्रकार राजा लोग भी अन्य के प्रताप को सहन नहीं करते हैं। खम्बे (स्तम्भ) से बन्धे हाथी के समान हितकारी उपदेशों को नहीं सुनते है। धनलोभ रूपी विष से मूर्च्छित वे सभी वस्तुओं को धनमय देखते हैं। पत्थर से तीव्र किये गये बाण जैसे धनुष से छूटने के बाद निर्दिष्ट लक्ष्य को भेदते हैं। उसी प्रकार वे सुरा सेवन वर्धित दर्प वाले राजा दुष्टों से प्रेरित होकर प्रजा को पीड़ित करने वाले होते हैं। दूर स्थित सद्वंशों को भी बैंत या दण्ड को फेंक कर फलों का आहरण के समान नाशक है। अकाल विकसित मनोहारी पुष्प रम्य होकर भी जन सन्ताप के कारण होते हैं। उसी प्रकार राजा रम्य होकर भी विनाश कारक ही है। उन राजाओं के भवन कामुक जनों से भरे वैश्यालय के समान नीचस्वभाव लोगों का आश्रय स्थल होते हैं। वे राजा पाप परिपूर्ण होते हुए भी प्रतिदिन स्फूर्तिकाय होते हैं। उस अवस्था में कामादि दोषों से दुष्ट वे वांबी की मिट्टी से उत्पन्न तिनके के अग्रभाग पर गिरे जल बिन्दु के समान स्वयं के पतन को जानने में समर्थ नहीं होते हैं।

इसी प्रकार अनेक राजा है जिनकी सभामण्डल रूप मद्यवन में स्थित स्वार्थसम्पादन में रत गृधों के समान ठगने में कुशल कुछ धूर्त होते हैं। वे दोषों को भी गुण मानते है। जैसे धूतक्रीडा विनोद होता है। अभिमान चातुर्य, शिकार करना व्यायाम, मद्यपान विलासिता, असावधानी वीरता, अपनी धर्म पत्नी का परित्याग अनासक्ति होती है। इस प्रकार से वे प्रतारण निपुण धूर्त जानकर राजाओं को ठगते हैं। वे राजा धनोन्मत्त होकर जनस्तुति से विवेकहीन हो जाते हैं। वे अपने को देवताओं का अशं मानते हैं। इस प्रकार वे सभी उपहास के पात्र होते हैं।

पाठान्तप्रश्न

1. दुराचारी लक्ष्मी के वशीभूत राजाओं की दशा कैसी होती है वर्णन करो।
2. अभिषेक के समय राजाओं के सद्गुण किससे कैसे धुल जाते है।
3. राजा इन्द्रियों से किस प्रकार का कष्ट भोग करते है।
4. राजा अपने कर्तव्य व अपने पतन को जानने में असमर्थ होते है, सोदाहरण व कारण स्पष्ट करो।
5. राजाओं की सभा में कैसे धूर्त रहते है स्पष्ट करो।
6. स्वार्थनिष्पादन रत धूर्त किस प्रकार से दोषों में गुणों का आरोप करते है?
7. अहंकार से उन्मत राजा किस प्रकार प्रजा के उपहास के पात्र होते हैं?

पाठगतप्रश्नों के उत्तर

18.1

1. व्याकुल और दुमति होते हैं।
2. मंगलकलश के जल से।
3. हवन की अग्नि की धूम से।
4. पुरोहितों के कुशाग्र सम्मार्जनी से।
5. मुकुट के बन्धन से।
6. ध्वजपत्र में संलग्न पल्लव से।

18.2

7. मनस्वी जनों द्वारा।
8. विविध विषयों की ग्रास की लालसा।
9. मन स्वभावतः चंचल होने से।
10. मुखभंग सहस्राधिक।
11. कर्कट/केकड़े के समान।
12. बान्धवों के परिचय।
13. श्मशान की अग्नि की भस्म के समान।
14. सप्तपर्ण के वृक्ष के समान।

18.3

15. प्रतारणकुशल, दोषों में गुणों का आरोप करते हुए स्वयं ही हँसने वाले होते हैं।
16. विनोद।
17. स्वेच्छाचारी।
18. वित्तमदमत्तचित जन ही निश्चेता होती है।
19. राजा लोग दिव्यों चितचेष्टादर्शन से।

19

शुकनासोपदेश-लक्ष्मी के दुष्प्रभाव-1

प्रस्तावना

इस पाठ में शुकनासोपदेश के 'आत्मविडम्बनञ्च' से लेकर स्वभवनमाजगाम' तक के अंश का वर्णन हैं। विद्या विनोद के लिए, धन मद के लिए, दुष्ट का धन दूसरों को पीड़ा के लिए होता है। श्री अर्थात् लक्ष्मी के प्रभाव से राजा अपने को ईश्वररूप में मानते हैं। वे सोचते है कि वे साक्षात् शिवस्वरूप हैं। वे गुरू, ज्येष्ठ व शिष्ट जनों के उपदेश को स्वीकार नहीं करते हैं। जो उनके गुणकीर्तन को करते हैं, सम्पत्ति को लूटने से राजा ठगे जाते है। उनको ही राजा धनादि से पोषित करते हैं और सभी प्रकार के प्रयोजन को पूरा करते हैं। इससे राजा कभी भी स्वयं की उन्नति, और राज्य की उन्नति को धारण करने में समर्थ नहीं होते है। इस कारण से प्रधानामात्य शुकनास चन्द्रापीड को सचेत करता है कि इस मार्ग पर प्रवृत नहीं होना चाहिए। अपने राज्य एवं पिता की उन्नति के लिए चिन्तन करना चाहिए। जो राज्य जीते उनको फिर से जीतना चाहिए और नवीन राज्यों को स्वायत्तता प्रदान करनी चाहिए। राज्य, राज्यस्थ और राजाश्रितों के मंगल के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

यहाँ महाकवि वस्तुतः उपदेश प्रदान करने के बाद प्रजा के प्रति कैसे आचरण करना चाहिए, कैसे प्रजा पर शासन करना चाहिए और कैसे सेवकादि के साथ व्यवहार करना चाहिए इत्यादि का शुकनास के मुख से वर्णन करते हैं।

उद्देश्य-

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- उपदेशों के पालन से कैसे राज व्यवस्था सम्यक् रूप से चलती है इसे समझ पाने में;
- राजाओं द्वारा कैसे प्रजा के प्रति आचरण करना चाहिए इसे जान पाने में;

टिप्पणी

- राजाओं के सदाचरण से प्रजा राजाज्ञों का पालन करती है इसे समझ पाने में और;
- पाठस्थ पदों का अन्वयार्थ व समास को समझ पाने में।

19.1 मूलपाठ

आत्मविडम्बनाञ्चानुजीविना जनेन क्रियमाशामभिनन्दन्ति। मनसा देवताध्यारोपणविप्रतारणा सम्भूतसम्भावनोपहताश्चान्तः प्रविष्टापरभुजश्यमिव आत्म-बाहुयुगलं सम्भावयन्ति। त्वगन्तरिततृतीयलोचनं स्वललाटमाशंकन्ते। दर्शनप्रदानमपि अनुग्रहं गणयन्ति, दृष्टिपातमप्युपकारपक्षे स्थापयन्ति, सम्भाषणमपि संविभागमध्ये कुर्वन्ति, आज्ञामपि वरप्रदानं मन्यन्ते, स्पर्शमपि पावनमाकलयन्ति। मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराश्च न प्रणमन्ति देवताभ्यः, न पूजयन्ति द्विजातीन्, न मानयन्ति मान्यान्, नार्च्चयन्त्यर्च्चनीयान्, नाभिवादयन्त्यभिवादनार्हान्, नाभ्युत्तिष्ठन्ति गुरून्। अनर्थकायासान्तरितविषयोपभोगसुखमित्युपहसन्ति विद्वज्जनम्, जरावैक्लव्यप्रलपितमिति पश्यन्ति वृद्धजनोपदेशम्, आत्मप्रज्ञापरिभव इत्यसूयन्ति सचिवोपदेशाय, कुप्यन्ति हितवादिने।

व्याख्या

अनुचर या सेवकों द्वारा की गई विडम्बना अर्थात् अविद्यमान गुण के आरोपरूप वञ्चना करें तो वे राजा उनका भी अभिनन्दन करते हैं।

अपने मन में देवतात्व संस्थापन रूप मिथ्या विचार से उगाये जाने के कारण जो धारणा उत्पन्न होती है उसी से ही धन राजाओं की बुद्धि विनष्ट हो जाती है। अतएव मेरी दो भुजाओं के भीतर दो भुजाएं और छिप कर छुपी हुई हैं। ऐसा समझकर वे राजा लोग मानो अपने को विष्णु के समान मानते रहते हैं।

अपने ललाट में एक तीसरा नेत्र त्वचा से ढका हुआ है ऐसी आंशका करके अपने को शिव अर्थात् महेश्वर के समान समझते हैं।

वे अपना दर्शन देना भी मानो बड़ा अनुग्रह करने में गणना करते हैं। दूसरों की ओर देखना मानो उपकार कर रहे हैं ऐसी स्थापना करते हैं। वार्तालाप करना भी विभाग पूर्वक दातव्य पदार्थ या द्रव्य को दान के मध्य में मानते हैं। अर्थात् देने के स्थान पर बातचीत करने से ही पूर्ण कर देते हैं। आज्ञा को ही मानो वर प्रदान कर दिया ऐसा समझते हैं। स्पर्श करना भी मानो पवित्रता का कारण समझते हैं। अर्थात् किसी को स्पर्श कर दिया तो उसे पवित्र कर दिया ऐसा विचार करते है।

मिथ्या या झूठे माहात्म्य के अहंकार से भरे हुए वे राजा लोग देवताओं को प्रणाम नहीं करते हैं, ब्राह्मणों का पूजन नहीं करते हैं, मान्य जनों का सम्मान नहीं करते हैं, पूजनीय लोगों की पूजा नहीं करते हैं, नमस्कार करने के योग्य जनों को नमस्कार नहीं करते हैं, एवं गुरुजनों को देखकर भी उठ खड़े नहीं होते हैं। अर्थात् अभिवादन योग्य आचार्य, गुरुजन, पुरोहित आदि पदग्रहण नहीं करवाते हुए सत्कार नहीं करते हैं।

टिप्पणी

ये विद्योपार्जनादि निरर्थक परिश्रम कर विषय संभोग अर्थात् कामिनी आदि भोग जनित सुख को दूर किये हैं ऐसा समझकर विद्वानों का उपहास करते रहते हैं। ये वृद्धावस्था के कारण बुद्धि की अस्थिरता द्वारा कितने प्रलाप करते है ऐसी भावना समझकर वृद्धों के उपदेशों को असार समझते है। 'इससे मेरी बुद्धि तिरस्कृत हो रही है।'' ऐसा मन में समझकर मंत्रियों के उपदेश से द्वेष प्रकट करते हैं, जो हितकारी वचनों को बोलते है उन पर क्रोध करते हैं।

सरलार्थ-

अनुचरों द्वारा की गई विडम्बना में वे राजा उनका ही सादर अभिनन्दन करते हैं। अपने मन में देवत्वसंस्थापन से विवेक हीन होने से उन राजाओं में धारणा उत्पन्न होती है। उससे उनकी बुद्धि नष्ट हो जाती है। मेरी दो भुजाओं के मध्य में इनसे भी अलग दो भुजाएँ गुप्त रूप में है। ऐसी भावना करके अपने आपको विष्णु के समान मानते है और भी अपने मस्तक पर एक तीसरा नेत्र त्वचा से ढका हुआ है। ऐसी आशंका करते हुए अपने को शिव अर्थात् महेश्वर के समान मानते हैं। वे अपने दर्शन को उनके प्रति अनुग्रह मानते हैं। अपनी दृष्टिपात को उपकार में गिनते हैं, किसी के साथ वार्तालाप को दान रूप मानते हैं, उनके आदेश वर प्रदान के तुल्य हैं ऐसा सोचते हैं, उनका स्पर्श पवित्रता सम्पादक है ऐसा समझते हैं। मिथ्या माहात्म्य के गर्व से गर्वित राजा देवों को नमस्कार नहीं करते हैं, ब्राह्मणों का पूजन नहीं करते हैं। सम्मानीय जनों का सम्मान नहीं करते हैं, पूजनीय जनों की पूजा नहीं करते, नमस्कार योग्य को नमस्कार नहीं करते हैं, गुरुओं को देखकर खड़े नहीं होते है, वे विद्योपार्जनादि को निरर्थक परिश्रम मानकर पण्डितों का उपहास करते हैं। वृद्धजन वार्धक्य के कारण बुद्धि की अस्थिरतावश अधिक बोलते हैं। ऐसा स्वीकार करते हुए राजा 'वृद्धजनों के उपदेश को निष्प्रयोजक मानते हैं। अपनी बुद्धि का तिरस्कार होता है ऐसा मानते हुए वे राजा मन्त्रियों के उपदेश में दोषों को खोजते हैं और हित वाक्य बोलने वालो पर क्रोध प्रकट करते हैं।

व्याकरण विमर्श

(क) समास

1. **देवताध्यारोपणविप्रतारणासम्भुतसम्भावनोपहताः**- देवता-ध्यारोपणं एवं विप्रतारणा देवताध्यारोपणप्रतारणा इति कर्मधारयः। तया सम्भूता देवताध्यारोपणप्रातारणासम्भूता इति तृतीयातत्पुरुष। तया उपहताः देवताध्यारोपणप्रतारणासम्भूतोपहताः इति तृतीयातत्पुरुषसमासः।

2. **अन्तःप्रविष्टपर भुजद्वयम्** -अन्तः प्रविष्टम् अन्तः प्रविष्टम् इति कर्मधारयः। अपरं भुजद्वयम् अपरभुजद्वयं इति कर्मधारयसमासः अन्त् प्रविष्टम् अपरभुजद्वयम् अन्तः प्रविष्टापरभुजद्वयमिति कर्मधारयसमासः।

3. **मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराः**- मिथ्या एव माहात्म्यं मिथ्यामाहात्म्यम् इति कर्मधारयः। तेन गर्वः मिथ्यामाहात्म्यगर्वः इति तृतीयात्पुरूषः। तेन निर्भराः मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराः इति तृतीयातत्पुरुषसमासः।

4. **त्वगन्तरिततृतीयलोचनम्** - त्वचा अन्तरितं त्वगन्तरितम् इति तृतीयातत्पुरूषः। त्वगन्तरितं तृतीयलोचनं यस्मिन् स त्वगन्तरिततृतीय लोचनः, तमिति बहुव्रीहिसमासः।

5. **अनर्थकायासान्तरितविषयोपभोगसुखम्** - अनर्थकः आयासः अनर्थकायासः इति कर्मधारयः। तेन अन्तरितम् अनर्थकायासान्तरितम् इति तृतीयातत्पुरुषः। अनर्थकायासान्तरितं विषयोपभोगसुखं येन स, तम् इति बहुव्रीहिसमासः।

6. **जरावैक्लब्यप्रलपितम्** - जरया वैक्लब्यं जरावैक्लब्यम् इति तृतीयातत्पुरुषः। तेन प्रलपितः जरावैक्लब्यप्रलपितः, तम् इति तृतीयातत्पुरुषसमासः।

(ख) संधि- विच्छेद

1. **अप्युपकारपक्षे** - अपि +उपकारपक्षे ।

2. **इत्युपहसन्ति** - इति +उपहसन्ति।

अलंकार

1. मनसा-इस वाक्य में बाहुयुगल का अन्तः प्रवेश क्रिया से उत्प्रेक्षा अलंकार है।

2. आज्ञाम्- इस वाक्य में इवाद्यभावात् से क्रियोत्प्रेक्षा अलंकार है।

पाठगत प्रश्न 19.1

1. राजा किनका अभिनन्दन करते हैं?

2. किनसे राजाओं की बुद्धि नष्ट होती है?

3. वे राजा अपनी आज्ञा को क्या मानते हैं?

4. अविवेकी राजा किनका अभिवादन नहीं करते हैं?

5. राजा किन पर क्रोध करते हैं?

19.2 मूलपाठ

सर्वथा तमभिनन्दन्ति, तमालपन्ति, तं पार्श्वे कुर्वन्ति, तं संवर्द्धयन्ति, तेन सह सुखमवतिष्ठन्ते, तस्मै ददति, तं मित्रतामुपनयन्ति, तस्य वचनं श्रृण्वन्ति, तत्र वर्षन्ति, तं बहु मन्यते, तमाप्तातामापादयन्ति, योऽहर्निशमनवरतम् उपरचिताञ्जलिरधिदैवतमिव विगतान्यकर्त्तव्यः स्तौति, यो वा माहात्म्यमुद्भावयति। किंवा तेषां सामप्रतम्, येषामतिनृशंसप्रायोपदेशनिर्घृणं कौटिल्यशास्त्रं प्रमाणम्, अभिचारक्रियाक्रूरैकप्रकृतयः पुरोधसो गुरवः, पराभिसन्धानपरा मन्त्रिण उपदेष्टारः, नरपतिसहस्रभुक्तोज्झितायां लक्ष्म्यामासक्तिः, मारणात्मकेषु शास्त्रेष्वभियोगः, सहजप्रेमार्द्रहृदयानुरक्ता भ्रातरः उच्छेद्याः।

व्याख्या

वे राजा लोग सभी प्रकार से उनकी ही प्रशंसा करते हैं, उनके साथ ही बातचीत करते हैं, उसको ही पास में रखते हैं, सहायता करके उनकी ही उन्नति करते हैं, उनका ही वचन सुनते हैं, उनको

ही सर्वदा धन वितरण करते हैं, उनका ही बहुत आदर करते हैं, और उसी को ही सब प्रकार से विश्वास पात्र बना लेते हैं। जो व्यक्ति दिन-रात अन्य सब काम छोड़ हाथ जोड़ कर उपस्थ देवताओं के समान उनकी स्तुति करता है अथवा जो व्यक्ति हरि हरादिकों का अवतार कह कर उनका माहात्म्य प्रकाश करता है अर्थात् चाटुकारी करता रहता है।

इस प्रकार ये जो नृपति होते हैं उनके सम्पूर्ण अनुचित व्यवहार कहते हैं कि जिनके समीप से अत्यन्त नृशंस उपदेश से परिपूर्ण एवं नितांन्त निर्दय चाणक्य प्रवीण नीतिशास्त्र ही प्रमाण मानने वाले, मारणप्रयोग आदि अभिचार क्रिया का अनुष्ठान से नितान्त क्रूर स्वभाव वाले पुरोहित गण जिनके शिक्षक हैं अर्थात् उन राजाओं के लिए क्या न्यायसंगत है जिनके श्येनयागादि क्रूर कर्म करने वाले पुरोहित गण हों, परप्रस्तारण परायण मंत्रिगण जिनके सलाहकार हैं, हजारों राजाओं ने जिसे भोग कर छोड़ दिया है उस लक्ष्मी के प्रति जिनकी आसक्ति है, मरणोपदोष से परिपूर्ण तंत्रशास्त्र में जिनका आग्रह है, एवं स्वाभाविक स्नेह के कारण सत् चित्त् और अनुराग करने वाले भ्रातृगण जिनकी जड़ काटते हैं, उन राजाओं के योग्य न्याय संगत कार्य क्या हो सकता है।

सरलार्थ

ये राजा सर्वथा उनको ही पास में बैठाते हैं, उनके साथ ही सुख से निवास करते हैं, उनको ही आदर देते हैं, उनके साथ ही मित्रता करते हैं, उनके ही वाक्यों को सुनते हैं, उनको ही सर्वदा धन वितरित करते हैं, उनका ही सम्मान करते हैं, उनको ही विश्वसनीय मानते हैं जो जन रात-दिन निरन्तर हाथ-जोड़े हुए कर्तव्य कर्मों को अन्यत्र स्थापित करके देववत् राजाओं की स्तुति करते हैं अथवा उनके माहात्म्य का कीर्तन करते हैं।

इस प्रकार के राजाओं का न्याय-संगत कार्य क्या हो सकता है अर्थात् कुछ नहीं। जिनके समीप में अत्यन्त नृशंस उपदेशों से परिपूर्ण तथा नितान्त निर्दय चाणक्यप्रणीत नीतिशास्त्र ही प्रमाण होता है। अभिचार क्रिया के अनुष्ठान के लिए नितान्त क्रूरस्वभाव विशिष्ट पुरोहित जिनके शिक्षक हैं, दूसरों को पीड़ित करने में निपुण मंत्रिगण जिनके उपदेशक हैं हजारों राजा जिस लक्ष्मी को अपनी इच्छानुसार भोग करके छोड़ चुके हैं। उस लक्ष्मी के प्रति जिनकी आसक्ति है। मरणोपदेश परिपूर्ण तन्त्रशास्त्र में जिनका आग्रह है। प्रकृति से स्नेहवश सत् चित्त और अनुरक्त भ्रातृगण जिनके भेदक होते हैं।

व्याकरण विमर्श

(क) समास-

1. **उपचिताञ्जलिः** - उपचिता अञ्चलिः येन सः उपचिताञ्जलिः इति बहुव्रीहिसमासः।
2. **विगतान्यकर्तव्यः** - विगतम् अन्यत् कर्तव्यं यस्य सः विगतान्यकर्तव्यः इति बहुव्रीहिसमासः।
3. **कौटिल्यशास्त्रम्** - कौटिलस्य शास्त्रं कौटिल्यशास्त्रम् इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः।

(ख) संधि- विच्छेदः -

1. शास्त्रेष्वभियोगः शास्त्रेषु + अभियोगः।

अलंकार विमर्श

सर्वथा इत्यादि वाक्य में दुष्ट राजाओं का सर्वकार्या-यौक्तिकत्वनिरुपण कार्य के प्रति अनेक हेतुपन्यास होने से समुच्चय अलंकार है, जिसका लक्षण साहित्यदर्पण में-

समुच्चयोऽयमेकस्मिन् सति कार्यस्थ साधके।
खले कपोतिकान्यायात् तत्करः स्यात् परोऽपि चेत्॥

कोश-''यक्तं द्वे साम्प्रतं स्थाने'' इत्यमरवचनात् साम्प्रतमित्यस्य युक्तम् इत्यर्थः।'' इति विश्वः।

पाठगत प्रश्न 19.2

6. मोहग्रस्त राजा सर्वथा किसको पास में रखते है?
7. वे राजा किसके साथ बैठते है?
8. अन्यायकारी राजा के उपदेशक कौन है?

19.3 मूलपाठ

तदेवं प्रायातिकुटिल-कष्ट-चेष्टा-सहस्रदारुणे राज्यतन्त्रे, अस्मिन् महामोहकारिणि च यौवने, कुमार! तथा प्रयतेथाः यथा नोपहस्यसे जनैः, न निन्द्यसे साधुभिः, न धिक्क्रियसे गुरुभिः, नोपालभ्यसे सुहृद्भिः, न शोच्यसे विद्वद्भिः। यथा च न प्रकाश्यसे विटैः, न प्रहस्यसे कुशलैः, नास्वाद्यते भुजङ्गैः, नावलुप्यसे सेवकवृकैः न वञ्च्यसे धूर्तैः, न प्रलोभ्यसे वनिताभिः न विडम्ब्यसे लक्ष्म्या, न नर्त्यसे मदेन, नोन्मत्तीक्रियसे मदनेन, नाक्षिप्यसे विषयैः, नावकृष्यसे रागेण, नापह्रियसे सुखेन। कामं भवान् प्रकृत्यैव धीरः, पित्रा च महता प्रयत्नेन समारोपितसंस्कारः, तरलहृदयमप्रतिबुदञ्च मदयन्ति धनानि, तथापि भवद्गुणसन्तोषों मामेवं मुखरीकृतवान्। इदमेव च पुनः पुनरभिधीयसे, विद्वांसमपि सचेनमपि महासत्त्वमप्यीाजातमपि धीरमपि प्रयत्नवन्तमपि पुरुषमियं दुर्विनीता खलीकरोति लक्ष्मीरिति।

व्याख्या

इसलिए हे राजकुमार चन्द्रापीड़ ऐसी हजारों अत्यन्त जटिल और कष्टपद कार्य बाहुल्य से भयंकर राज्यशासन के व्यवहार में एवं ऐसे महामोहवश विवेक शून्यकारी इस यौवन काल में तुम ऐसा कार्य करने का प्रयत्न करो कि जिसमें मनुष्य तुम्हारी हँसी न करें, साधुगण निन्दा न करें। गुरुजन धिक्कार न दे, मित्रगण उलाहना न दे एवं विद्वानगण शोक न करें, कामीजन तुम्हारी बुराई न करें, कार्यदक्ष लोग तुम्हारा उपहास न करें, लंपटलोग तुम्हारी सम्पत्ति का भोग न करें, भृत्यरूपी भेड़िये तुम्हार सम्पत्ति को लूट न ले जाये, धूर्तगण धोखा न दें, स्त्रियां लालच में न आवे। लक्ष्मी तुम्हें विडम्बित न करें, अहंकार तुम्हें न नचावे, कामदेव तुम्हें उन्मत व पागल न करें, विषय बुरे मार्ग पर न ले जा सकें, किसी विषय की उत्कृष्ट अभिलाषा न हो, और अपने अधीन न कर ले।, माना कि तुम स्वभाव से अत्यन्त धैर्यवान् हो और पिताजी ने बड़े-बड़े

टिप्पणी

उद्योग करके तुमको सभी विषयों का ज्ञान कराया है एवं धन सम्पत्ति भी चंचल चित्त वाले और अभुक्त भोगी जनों को स्वभाव से ही उन दुरुह कार्यों में प्रवृत्त कराती है तथापि तुम्हारी विद्या विनय और गुण जनित संतोष ने ही मुझे इस रुप में कहने के लिए प्रेरित किया है और यह मैं तुमको बार-बार कहता हूँ कि मनुष्य चाहे जैसा विद्वान् विवेचक, बलवान, कुलीन, धीरप्रकृति एवं उद्योगी हो उसे भी यह दुराचारिणी लक्ष्मी दुर्जन बना देती है।

सरलार्थः

इस कारण से हे राजकुमार चन्द्रापीड़, अत्यन्त जटिल कष्टप्रद कार्यबहुल भीषण राज्यशासन कर्तव्य में वैसे विवेकशून्यकारी यौवन के समय उस प्रकार से कर्म करना चाहिए। जिससे लोग उपहास न करें, सन्त निंदा न करें, आचार्य धिक्कार न करें, मित्र तिरस्कार न करें, पण्डित शोक न करें, कामीजन काम प्रकट न करें, निपुण उपहास न करें, लम्पट सम्पत्ति को न भोगें, सेवक धन न हरें, धूर्त न ठगें, स्त्री विलास से मुग्ध न हो, श्री न त्यागें, अभिमान न ग्रसें, कन्दर्पबाण से न मारें, विषय आसक्त न करें, किसी वस्तु भोग से इच्छा न हो, आनन्द न छोड़ें इस प्रकार व्यवहार करना चाहिए।

स्वभाव से तुम धीर प्रकृति हो, पिता तारापीड़ ने तुममें संस्कार स्थापित किये है। सम्पत्ति ही तारुण्य चंचलचित को राज्य शास्त्ररिपुविजयादि में अनभिज्ञ को उन्मत्त करती है फिर भी तुम्हारा विद्या विनय शौर्य आदि गुणों से उत्पन्न तुष्टि मुझे सन्तुष्ट करती है। अतः बार-बार करता हूँ कि गुणवान को, सावधान को, शक्तिवान को, सद्वंशज को, धीरस्वभाव को, उद्योग युक्त जन को भी यह दुष्ट लक्ष्मी दुर्जन करती है।

व्याकरण विमर्श

(क) समास :-

1. **सेवकवृकैः** - सेवकाः वृकाः सेवकवृकाः इति कर्मधारयसमासः, तैः सेवकवृकैः इति तृतीयातत्पुरुषसमासः।
2. **प्रायातिकुटिल-कष्ट-चेष्टा-सहस्रदारुणे- प्रायाः** अतिकुटिलाः प्रायातिकुटिलाः इति कर्मधारयः। प्रायातिकुटिलाः कष्टचेष्टाः प्रायोतिकुटिलकष्टचेष्टाः इति कर्मधारयः। तासां सहस्रं प्रायातिकुटिलकष्टचेष्टासहस्रम् इति षष्ठीतत्पुरुषः। ततः दारुणं प्रायोतिकुटिलकष्टचेष्टा सहस्रदारुणम्, तस्मिन् इति पञ्चमीतत्पुरुषः।
3. **महासत्त्वम्** - महत् सत्त्वं यस्य स महासत्त्वः, तम् इति बहुव्रीहिः।

(ख) संधि-विच्छेद -

1. **नास्वाद्यते**- न +आस्वाद्यते।
2. **नोन्मत्तीक्रियसे** - न+ उन्मत्तीक्रियसे।
3. **नावकृष्यसे** - न+ अवकृष्यसे।
4. **पुनरभिधीयसे**- पुनः+ अभिधीयसे।

अलंकार विमर्श-तदेवम् इस वाक्य में रूपक अलंकार है।

पाठगत प्रश्न 19.3

9. किस राज्यतंत्र में राजा लोभी न हो?
10. शुकनास की नीति में चन्द्रापीड कैसा है?
11. शुकनास की नीति में किस के द्वारा राजकुमार निन्दित न हो?
12. चन्द्रापीड पर किसने संस्कार आरोपित किये?
13. राजकुमार के गुणों को किसने मुखर किया?
14. कैसे सज्जन दुर्जन होता है?

19.4 मूलपाठ

सर्वथा कल्याणैः पित्रा क्रियमाणमनुभवतु भवान् नवयौवराज्याभिषेकमंगलम्, कुलक्रमागतामुद्वह पूर्वपुरुषैरूढ़ा धुरम् अवनमय द्विषतां शिरांसि, उन्नमय स्वबन्धुवर्गम्। अभिषेकानन्तरञ्च प्रारब्ध दिग्विजयः परिभ्रमन् विजितामपि तव पित्रा सप्तद्वीपभूषणां पुनर्विजयस्व वसुन्धराम्। अयञ्च ते कालः प्रतापमारोपयितुम्। आरूढप्रतापो हि राजा त्रैलोक्यदर्शीव सिद्धादेशों भवति इतयेतावदभिधायोपशशाम।

व्याख्या

पिता द्वारा किये गये मांगलिक नवयौवराज्याभिषेक का तुम सब कल्याणों के साथ सर्वथा सुख का अनुभव करो। तुम्हारे पूर्व पुरुषों से जो भार वहन किया गया है, तुम भी इस कुल क्रमागत पृथ्वी के शासन के भार को वहन करो। शत्रुओं का मस्तक नीचा करो एवं बन्धुवर्ग को उन्नत करो एवं सप्तद्वीप रूपी भूषण वाली पृथ्वी को तुम्हारे पिता द्वारा जीत कर रखी रहने पर भी इसे अभिषेक हो जाने के बाद दिग्विजय आरम्भ कर सर्वत्र भ्रमण करते हुए तुम भी फिर से जीतो। यह तुम्हारे प्रताप विस्तार करने का समय है क्योंकि राजा का प्रताप उत्पन्न होने पर सर्वत्र महायोगी के समान उसका आदेश सर्वत्र ही सफल होकर रहता है। इतना कह कर शुकनास चुप हो गया।

सरलार्थ

आप मंगलों के साथ पिता द्वारा विद्यीयमान युवराजपदाभिषेक के सुख का अनुभव करो, परम्परा से प्राप्त पूर्व पुरुषों द्वारा धारित राज्यशासन के भार को वहन करो, शत्रुओं का सिर नीचे करो, अपने समुदाय की उन्नति करो, अभिषेकोपरान्त आपके पिता द्वारा जीते जम्बु आदि सप्तद्वीपों से भूषित पृथ्वी के दिग्विजय के लिए बाहर जाते हुए आप पुन अधीन करो यह शत्रुओं में पराक्रम दिखाने का समय है, शत्रुओं में राजा के उन्नत प्रताप के होने पर उसके आदेश सर्वज्ञ

टिप्पणी

के समान पालित होते हैं। इस प्रकार इतना कह कर शुकनास रुक गया।

व्याकरण विमर्श

(क) समास-

1. **नवयौवराज्याभिषेकमंगलम्** - नवं यौवराज्यं कर्मधारयसमासः, तस्मिन् अभिषेकः नवयौवराज्याभिषेकः इति सप्तमीतत्पुरुषसमासः, तस्य मंगलम् नवयौवराजयाभिषेकमंगलम् इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः।
2. **स्वबन्धुवर्गम्** - स्वस्य बन्धुः स्वबन्धुः इति षष्ठीतत्पुरुषसमासः, स्वबन्धुगर्वः इति षष्ठीतत्पुरुसमासः तं स्वबन्धुवर्गम्।
3. **सप्तद्वीभूषणाम्** - सप्त द्वीपानि सप्तद्वीपानि इति कर्मधारयसमासः, सप्तद्वीपानि एवं भूषणं यस्याः सा सप्तद्वीपभूषणा इति बहुव्रीहिसमासः, तां सप्तद्वीभूषणाम्।
4. **आरुढ़प्रतापः** - आरूढ़ः प्रताप येन सः आरूढ़प्रतापः इति बहुव्रीहिसमासः।

(ख) संधि-विच्छेद -

1. **इत्येतावत्** - इति +एतावत्।
2. **अभिधायोपशशाम**- अभिधाय+ उपशशाम।

कोश-1 ''स प्रतापः प्रभावश्च यत्तेजः कोषदण्डजम्।'' इत्यमरवचनात् प्रतापः, प्रभावः, कोषदण्डजं तेजः इत्येते पर्यायाः।

पाठगत प्रश्न 19.4

15. मन्त्रिमत में राजकुमार क्या अनुभव करें?
16. राजकुमार मंत्रीच्छा के अनुसार क्या झुकायें।?
17. राजकुमार किसकी पुनः विजय करे?
18. किस राजा का आदेश देववत् सिद्ध होता है?

19.5 मूलपाठ

उपशान्तवचसि शुकनासे चन्द्रापीडस्ताभिरुपदेशवाग्भिः प्रक्षालित इव, उन्मीलित इव, स्वच्छीकृत इव, निर्मृष्ट इव, अभिलिप्त इव, अलङ्कृत इव, पवित्रीकृत इव, उद्भासित इव, प्रीतहृदयो मुहूर्त्त स्थित्वा स्वभवनमाजगाम।

व्याख्या

शुकनाश के उपदेश वचन समाप्ति के उपरान्त चन्द्रापीड की स्थिति का वर्णन है - शुकनास के मौन हो जाने पर उन निर्मल शिक्षा वचनों से धुला सा, स्नान किये हुए के समान, चन्दन आदि के लेप किये हुए के समान, आभूषित किये गये के समान पवित्र किये के समान और उज्ज्वल किये के समान प्रीतहृदय प्रसन्नचित होकर चन्द्रापीड़ कुछ समय के लिए ठहरकर अपने भवन में लौट आया।

सरलार्थ

शुकनास के उपदेशानंतर चन्द्रापीड उपदेश के निर्मल वचनों से धुला सा, प्रबुद्ध, स्वच्छ, अभिषिक्त, अभिलिप्त, भूषित पवित्र उज्ज्वल के समान अनुभव करके प्रसन्नचित होता हुआ कुछ क्षण ठहर कर अपने भवन में आ गया।

व्याकरण विमर्श

(क) समासः -

1. **उपशान्तवचसि** - उपशान्तं वचः यस्य स उपशानतवचाः, तस्मिन् इति बहुव्रीहिसमासः।
2. **प्रीतहृदयः** - प्रीतं हृदयःयस्य स इति बहुव्रीहिसमासः।
3. **स्वभवनम्** - स्वस्य भवनं स्वभवनम् इति षष्ठीतत्पुम्षसमासः।

(ख) संधिविच्छेदः -

1. **चन्द्रापीडस्ताभिरुपदेशवाग्भिः**- चन्द्रापीडः+ ताभिः+ उपदेशवाग्भिः।

अलंकार विमर्श

1. उपशान्त इस वाक्य में नवीन उत्प्रेक्षा की अनपेक्षा से संसृष्टि अलंकार है। उसका लक्षण विद्यानाथ ने कहा-

तिलतण्डुलसंश्लेषन्यायाद् य= परस्परम्।
संश्लिष्येयुरलंकाराः सा संसृष्टिर्निगद्यते॥

पाठगत प्रश्न 19.5

19. राजकुमार चन्द्रापीड कब भवन लौट आया?
20. राजकुमार किससे पवित्रकृत के समान भवन आया?
21. चन्द्रापीड कैसे भवन आया?
22. राजकुमार क्या करके भवन लौट आया?

पाठसार

टिप्पणी

झूठे स्तुति वचनों से विह्वल राजा सेवकों द्वारा की गई विडम्बना में उन धूर्तो का अन्धे के समान सादर अभिनन्दन करते हैं। अत: उनके मन में ऐसी धारणा होने से उनकी बुद्धि नष्ट हो जाती है। मेरी दो भुजाओं में इनसे भी अधिक दो अन्य भुजा, गुप्त रूप से है। ऐसी भावना करके स्वयं को विष्णु के समान मानते हैं। अपने ललाट में तीसरा एक नेत्र त्वचा से ढका हुआ है। ऐसी आशंका करते हुए वे स्वयं को शिव अर्थात् महेश्वर के समान मानते हैं। उनका दर्शन देना लोगों पर अनुग्रह है। ऐसी भावना करते हैं। अपनी दृष्टि को उपकार के रूप में गिनते है, किसी के साथ वार्तालाप करने को दान के समान, अपने आदेश को वरदान के समान, सोचते है, अपने स्पर्श को पवित्रता सम्पादक के समान समझते है, मिथ्या माहात्म्य के गर्व से गर्वित राजा देवताओं को नमस्कार नहीं करते हैं, ब्राह्मणों की पूजा नहीं करते, सम्मानीय के लिए सम्मान प्रदर्शन नहीं करते है, पूजनीयों की पूजा नहीं करते हैं, नमस्कार योग्य को नमस्कार नहीं करते है, और भी गुरुओं को देखकर भी नहीं उठते हैं, विद्योपार्जन आदि को निरर्थक परिश्रम मानकर पण्डितों का उपहास करते हैं, वृद्ध वार्धक्य के कारण से बुद्धि की अस्थिरतावश अधिक बोलते है ऐसा स्वीकार करते हुए उन वृद्धों के उपदेश को निष्प्रयोजन करते हैं। अपनी बुद्धि का तिरस्कार होता है ऐसा मानते हुए वे राजा मन्त्रियों के उपदेशों में दोष खोजते हैं और हितवाक्य बोलने वालों पर क्रोध प्रकट करते हैं।

ये राजा सर्वथा उन्ही के पास स्थापित होते है, उनके साथ ही सुख से निवास करते है, उनको ही आदर देते हैं, उनके साथ ही मित्रता करते हैं, उनको ही धन वितरित करते है, उनका ही सम्मान करते हैं, उनको ही विश्वसनीय मानते हैं- जो लोग रात-दिन निरन्तर हाथ जोड़ते हुए, कर्त्तव्य कर्मो को अन्यत्र स्थापित करके देवता के समान राजाओं की स्तुति करते हैं अथवा उनके माहात्म्य को कीर्तन करते है, जिनके समीप में अत्यन्त नृशंस उपदेशों से परिपूर्ण तथा नितान्त निर्दय चाणक्य प्रणीत नीतिशास्त्र को प्रमाण मानते है। ऐसे अभिचार किया से अनुष्ठान के लिए नितान्त क्रूर स्वभाव विशिष्ट पुरोहित इनके शिक्षक हैं। दूसरों को दु:ख देने में परायण मंत्री इनके उपदेष्टा होते हैं।

हजारों राजा जिस लक्ष्मी का परित्याग कर चुके हैं उस लक्ष्मी में आसक्ति है। मारणोपदेश से परिपूर्ण तन्त्र शास्त्र में जिनका आग्रह है प्रकृति से स्नेहवश सत् चित्त और अनुरक्त भातृगण जिनके भेदक पत्र है। उस प्रकार के राजाओं का कौन सा कार्य न्याय-संगत हो सकता है। अर्थात् न्याय-संगत नहीं हो सकता।

इस कारण से शुकनास चन्द्रापीड को कहते हैं कि इस प्रकार कष्टप्रद भयंकर राजशासन कर्तव्य में विवेकनाशी यौवन समय में उस प्रकार के कर्म तुम्हारे द्वारा किये जाने चाहिए जिससे लोग तुम्हारा उपहास न करें, सन्त निंदा न करें, आचार्य धिक्कार न करें, मित्र तिरस्कार न करें, पण्डित न सोचे, कामीजन अपनी समानता से प्रकट न करे, कार्यनिपुण उपहास न करें, लम्पट सम्पति का भोग न करें, सेवक धन को न हरें, धूर्त न ठगें, स्त्री अपने विश्वास से मुग्ध न करें, श्री तुम्हारा परित्याग न करें, अभिमान तुम्हें ग्रसित न करे, कामदेव अपने वाणी से न मारे,

विषय आसक्त न करें, किसी भी वस्तु के उत्कट भोगच्छा से तुम प्रवर्तित न हो, आनन्द तुम्हारा परित्याग न करे, ऐसा ही व्यवहार करना चाहिए।

शुकनास के अनुसार मंगल के साथ पिता तारापीड़ द्वारा किये गये अभिषेक के सुख का अनुभव करो, कुल क्रमागत राज्यशासन के भार को वहन करो, शत्रुओं के सिर को नीचा करो, स्वजनों की उन्नति करो, अभिषेकानन्तर पिता द्वारा विजित प्रदेशों को पुनः जीत कर अपने अधीन करो, शत्रुओं में पराक्रम दिखाओ आपके आदेश की पालना सर्वज्ञ के समान हो इस प्रकार कहकर शुकनास चुप हो गया।

शुकनासोपदेशानंतर चन्द्रापीड़ उन निर्मल उपदेशों से परिष्कृत, प्रबोधित, अभिषिक्त, भूषित पवित्र, उज्जवल सा हो गया और प्रीतहृदय होकर भवन को लौट आया।

आपने क्या सीखा

- उपदेशों का महत्त्व।
- राजाओं द्वारा प्रजा के प्रति आचरण कैसे करना चाहिए जाना।

पाठन्त प्रश्न

1. किस कारण से राजा प्रवञ्चकों का सादर अभिनन्दन करते है? वर्णन कीजिए।
2. विवेकहीन होकर राजा क्या-क्या करते है? वर्णन कीजिए।
3. मिथ्यामोहग्रस्त राजा किसको पास बैठाते हैं?
4. कैसे राजा के कार्य न्यायसंगत नहीं होते हैं?
5. शुकनासानुसार राजकुमार कैसा आचरण करे?
6. कब राजा का आदेश सर्वज्ञ के समान होता है?

पाठगत प्रश्नो के उत्तर

19.1

1. राजा आत्मविडम्बना करने वालों का अभिनन्दन करते हैं।
2. अपने में देवताओं का आरोपधारणा से दुष्ट राजाओं की बुद्धि नष्ट होती है।
3. अविवेकी राजा अपनी आज्ञा को वर प्रदान मानते हैं।
4. अविवेकी राजा अभिवादन योग्य का अभिवादन नहीं करते है।

टिप्पणी

5. अविवेकी राजा हितकारी मानने वालो पर क्रोध प्रकट करते हैं।

19.2

6. मोहग्रस्त राजा रात-दिन हाथ जोड़ स्तुति करने वालों को अपने पास में रखते हैं।
7. वे राजा जो उसके माहात्म्य को कहते है, उसके साथ सुख से बैठते हैं।
8. पराभिसन्धानपरा मन्त्री अन्यायकारी राजा के उपदेशक हैं।

19.3

9. अत्यन्त भयंकर कष्टप्रद कुटिल राजतन्त्र में राजा प्रलोभी न हों।
10. शुकनास की नीति में चन्द्रापीड़ स्वभाव से ही धीर है।
11. शुकनास की नीति में साधुओं द्वारा राजकुमार निन्दित न हों।
12. राजकुमार पर पिता तारापीड़ ने संस्कार आरोपित किये।
13. राजकुमार के गुण मंत्री शुकनास ने मुखर किये।
14. दुर्विनीत लक्ष्मी से सज्जन दुर्जन होता है।

19.4

15. मन्त्री के मत में राजकुमार मंगल का अनुभव करे।
16. राजकुमार मंत्रीच्छानुसार शत्रुओं के सिर नीचे झुकाये।
17. राजकुमार सप्तद्वीपभूषित वसुमती पर पुनः विजय करें।
18. आरुढ़प्रताप राजा के आदेश देववत् सिद्ध होते है।
19. राजकुमार शुकनास के उपदेश के बाद भवन लौट आया।

19.5

20. राजकुमार निर्मल उपदेश वाणी से पवित्रकृत के समान भवन लौट आया।
21. चन्द्रापीड़ प्रसन्नचित होकर भवन लौट आया।
22. राजकुमार क्षणभर स्थित होकर भवन लौट आया।

योग्यता विस्तार

कवि परिचय

भूमिका

महाकवि बाणभट्ट गद्य काव्य जगत के चक्रवर्ती सम्राट है। ''पद्यं वद्यं गद्यं हृद्यम् यह उक्ति बाण के गद्यकाव्य के रचना के बाद में भणितिपदती को प्राप्त हुए। कविराज नाम का एक गद्य कवि कहता है कि सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रय: ''इस श्लेषार्थ चमत्कार में हम तीन गद्य कवि मानते हैं। बाणभट्ट के कविता सामर्थ्य विचार पर गोवर्धनाचार्य का प्रशंसावचन इस प्रकार है- जाता शिखण्डिनी प्राक् यथा शिखण्डी तथाऽवगच्छामि।

प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणे बभूवे॥
महाकवि जयदेव कहते है कि
-हर्षो हर्षो हृदयवसति: पंचबाणस्तु बाण:॥

देशकाल

महाकवि द्वारा अपने इतिवृत का स्वविरचित हर्षचरित में विस्तार से प्रतिपादित किया गया। हिरण्यबाह्वपरनामिका शोणनदी के पश्चिम तट पर स्थित प्रीतिकूट ग्राम बाण की जन्मभूमि थी।

इस समय यह स्थान बिहार राजा के आरा मण्डल के अन्तर्गत है। बाणभट्ट का वंश विद्याभ्यास और धर्माचरण में अतीव प्रसिद्ध था। वात्स्यायनवंशज चित्रभानु बाणभट्ट के पिता और राज्यदेवी माता थी। एक उक्ति भी प्राप्त होती है - 'अलभत च चित्रभानुस्तेषां मध्ये राज्यदेव्यभिधनायां ब्राह्मण्यां बाणमात्मजम्' अत: इससे निश्चय होता है कि ये ब्राह्मण थे। बाण के जन्म स्थान के पास ही यष्टिगृह नाम का ग्राम था उससे थोडी दूर पर श्री हर्षवर्धन के द्वितीय शिलादित्य का राज्य श्रीकण्ठदेश था। हर्षवर्धनशिलादित्य का समय 606 से 647 ईसवी हर्षचरित में उल्लेखित है। अत: बाणभट्ट का भी समय सातवी शताब्दी है यह स्पष्ट है।

जीवन चरित - शिशु अवस्था में ही बाण का मातृवियोग हो गया। उसके बाद पिता ने ही बालक का रक्षण भरण पोषण का भार वहन किया। उसके बाद समुचित अवस्था में उसके विधिवत उपनयादि संस्कार सम्पन्न हुए। उसने पिता से सम्पूर्ण विद्या प्राप्त की। बाण की चौदह वर्ष की आयु में पिता का देहावसान हो गया। उसके बाद खिन्न बाण मित्रों के साथ ग्राम से ग्राम घूमता हुआ अन्त में प्रीतिकूट पहुँचा। वहाँ पर ही उसका कवित्व विकास प्रकट हुआ। उसके दो भाई चन्द्रसेन और मातृसेन प्रसिद्ध हैं। उसके बाद उसकी कवित्व प्रतिभा कानों की कानों बहुत प्रसिद्ध हुई। एक बार उसकी कवित्व प्रतिभा को सुनकर चक्रवर्ती हर्षवर्धन के मामा चित्रभानु के मित्र कृष्णराज मुग्ध हो गये। उसकी कृपा से उसने हर्षवर्धन की आस्थान पण्डित मण्डली में स्थान प्राप्त किया। उसके कुछ समय बाद बाणभट्ट हर्षवर्धन के अतीव प्रियमित्र हो गये। तब बाण ने हर्षवर्धन के जीवनचरित पर आश्रित हर्षचरित नामक ग्रन्थ की रचना की। भूषणभट्ट बाणभट्ट का पुत्र था।

टिप्पणी

कृति

महाकवि बाणभट्ट ने दो गद्य काव्यों के निर्माण से सहृदयों के हृदय में अमर स्थान प्राप्त किया। अतएव काव्य रसिकों का यह उद्घोष है- ''बाणोच्छिष्टम् जगत् सर्वम्'' है। उसके दो गद्य काव्य है- 1. हर्षचरितम्-2 और कादम्बरी।

उनमें से हर्षचरिम् आख्यायिका ग्रन्थ है। वास्तविक इतिहास पर आश्रित यह ग्रन्थ बाणभट्ट ने विरचित किया। इस ग्रन्थ की आख्यायिकात्व के विषय में स्वयं बाण यह कहते है- ''करोम्याख्यायिकाम्भोधौ विह्राप्लवनचापलम्''। यह न ही साधारण चरित पुस्तक है, अपितु सरस काव्य है। गद्य के विषय में आलंकारिको में कहा है- ''ओजः समासभूयस्त्वम् एतद् गद्यस्य जीवितम्''। इन आलकांरिको के मत में ओज समास बहुल गद्य काव्य संरचना में बाणभट्ट मूर्धन्य हैं। हर्षचरित ओज समास बहुल गद्य काव्य है। इस ग्रन्थ में आठ उच्छ्वास हैं। उनमें से प्रथम तीन उच्छवासों में बाण ने अपनी कथा लिखी है। चौथे उच्छवास से अन्तिम उच्छवास तक राजा हर्षवर्धन के चरित का उपन्यास किया है।

बाणभट्ट का द्वितीय प्रसिद्ध गद्यकाव्य कादम्बरी है। अपनी कल्पना से रचित कादम्बरी कथाग्रन्थ है। बाण ने अपनी कृति में कहा - धिया निबद्धेयमतिद्वयी कथा''। कादम्बरी की कथा गुणाढ्य विरचित बृहत्कथा से संग्रहीत है। महाकवि बाण ने बृहत्कथा से कथा लेकर अपनी कवित्व प्रतिभा से काव्य कला निपुणता से कथा में विशिष्टता उत्पन्न करके कादम्बरी की रचना की। अतएव रसिक जन कहते हैं– ''कादम्बरीरसज्ञानाम् आहारोखपि न रोचते'' कादम्बरी अपने वैभव से अन्वर्थनाम से कादम्बरी सम्पन्न हुई। कादम्बरी मदिरा का भी नाम है। जैसे मदिरा मद को उत्पादन करती है। उसी प्रकार यह कथा भी काव्यास्वादनरूप मद को उत्पन्न करती है। विद्वानों एवं आलंकारिको द्वारा बाण की कादम्बरी की महती प्रशंसा की गई हैं। उनमें से राजशेखर कहते है -सहर्षचरितारब्धाद्भुत कादम्बरीकथा।

बाणस्य वाण्यनार्येव स्वच्छन्दा भ्रमतिक्षितौ॥

उसी प्रकार कीर्तिकौमुदीकार कहते हैं -युक्तं कादम्बरी श्रुत्वा कवयो मौनमाश्रिताः।

बाणध्वनावनध्यायो भवतीति स्मृतिर्यतः॥

इस प्रकार संक्षेप से कविपरिचय प्रस्तुत किया।

विशेषज्ञान के लिए अध्येतव्य ग्रन्थ

बाणभट्ट प्रणीत यह कादम्बरी कथा ग्रन्थ भारतीय संस्कृत साहित्य में अत्युत्कृष्ट पद को अलंकृत करती है। यह ग्रन्थ बहुत से लोगों द्वारा परम आदर से श्लाघ्य है। यहां शुकनासोपदेश अंश हमने पढ़ा। वहाँ अध्येता यदि इससे भी अधिक ज्ञान चाहता है तो अधोलिखित ग्रन्थों को देख सकता है।

कादम्बरी- चन्द्रकला संस्कृत हिन्दी व्याख्योपेता

व्याख्याकार- आचार्य शेषराजशर्मा रेग्मी:

प्रकाशक चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, उ-प्र-।

कादम्बरी- चन्द्रकलाविद्योतिनीव्याख्याश्योपेता

व्याख्याकार- पण्डित कृष्ण मोहनशास्त्री

प्रकाशक -चौखम्बा संस्कृत संस्थान - वाराणसी

कादम्बरी- (बंगभाषायाम्)

सम्पादक- श्रीनीरदवरणभट्टाचार्य:

प्रकाशक- संस्कृत पुस्तक भण्डार कोलकाता

भाषा विस्तार

शुकनासोपदेश इस अंश को पढने से निश्चित ही संस्कृत भाषा का ज्ञानवर्धन होगा। अध्येयाशं के अध्ययन से ज्ञानवर्धन के कुछ उपायों का सामान्य निर्देश दिया गया है-

शुकनासापदेश इस पाठ्यांश के अध्ययन से आप-

1. संस्कृत में गद्य साहित्य रचना कौशल को जान सकते हैं।
2. नवीन पदों की तालिका निर्माण कर सकते हैं।
3. समासों के नाम उनके प्रयोग कौशल को जान सकते हैं।
4. नवीन धातुओं, प्रकृति और प्रत्ययों का प्रयोग कर सकते हैं।
5. नवीन पदों और अर्थों के ज्ञान से भाषा समृद्धि कर सकते हैं।

भाव विस्तार

1. इस कथा को गद्य रूप से पढ़ने और पढ़ाने के लिए समर्थ होते हैं।
2. नाटक रूप में इस कथा को प्रस्तुत कर सकते हैं।
3. धनपिपासा मरने का बीज है इस उपदेश को मन में स्थापित करके जीवन में प्रवृत करो।
4. गुरुओं की आज्ञा विचारणीय होती है।
5. गुरुजनों एवं सज्जनों का सदैव सम्मान करना चाहिए।
6. गुरु की आज्ञा और उपदेश को स्वीकार करके कार्य करने चाहिए।
7. शुकनास के उपदेश को मन में रखकर जीवन परिपालन सरल होता है।
8. कभी भी धनयौवनादि के आधार पर अहंकार नहीं करना चाहिए।